

श्री ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला का
एकादशम पुष्प

स्व० कविवर प० बनारसीदाम रचित

छन्दोबद्ध—

समयसार-नाटक ।

(हिन्दीभाषा वचनित्वा महित)

टीकाकार—

स्व० प० रूपचन्द जी पांडे

प्रकाशक—

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला
भिएड—ग्वालियर

प्रथम संस्करण

१९००

आश्विन वीर सं० १४७६

वि० सं० २००७ ।

मूल्य पाच रु०

५)



नमः समयमाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
 चित्स्वभावाय भाषाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥
 भूयात् प्रस्तावना रम्या शुद्ध-बुद्ध-स्वभावजा ।
 चिदानन्दमयी मूर्ति स्तस्या गुणप्रकाशिका ॥२॥

यह नाटक समयसार भारतीय हिन्दी भाषा पद्यमय
 सुन्दर शब्दावली और निजानन्दरस से पुरित अर्थ मन्दोह
 (अर्थावली अभिधेयावली) समन्वित है। यद्यपि वर्तमान में
 इस अध्यात्मरस के वेत्ता चिद् विलास में रमण करने वाले
 बहुत कम होंगे तथापि अपनी वस्तु को कौन नहीं चाहता ? इस
 को सुनकर सुप्त प्राणी भी सजग हो जाते हैं। यह अपूर्व आनन्द
 की चाह है कभी सुनी नहीं, देखी नहीं, अनुभवी नहीं ऐसा
 चित् चमत्कार व्योति की कथा जिस समय प्राणियों के कर्मा
 गोचर होती है उस समय उन्हें अग्रय सचेत करती है और वे
 सुख शांतिमय भावना से स्तब्ध हो जाते हैं। सुन्दर भक्ति से
 मुनाने वाले होने चाहिये।

यद्यपि इस ग्रन्थ की भाषाटीकायें कई हो चुकी हैं एक
 तो नाना साहय ने की है, एक पं० बुद्धलाल जी धावक ने छपी
 थी परन्तु वे अतिरिक्त हो चुकीं मिलती नहीं, अलभ्य हैं। तीसरे
 वे टीकायें आधुनिक समय की हैं यह टीका जो छपी है वह
 प्राचीन विद्वान् श्रीमान् रूपचन्द्र जी पाठे की है, जिन्होंने पं०

मङ्गल पाठ बनाया है जो कि मार जैन समाज में प्रचलित है अर्थगुम्फन दिव्यार शब्दगुम्फन न अभिधेय को विशद किया है व्यवहार और निश्चयनयका विषय स्पष्ट रीति से दिनाया है।

यद्यपि श्रीमान् पं० रूपचन्द्र जा पाड पं० धारमी नाम का क गुरुथ इहान श्री गोष्मटसार आदि का अध्ययन कराकर निश्चयनय का एका त इटाकर वह स्याद्वाद पधपर लाये थ। तथापि आत्मा के विकाश में गुरु शिष्य का सुप्र विचार नही ज्ञान की कोइ छटा एमी होती है कि एक बालक भी अनूना अपूर्व एक एसी बात कह दता है जो बड़े ० शास्त्र पाठी विद्वानों में नही मिलती सा आत्मा अनन्त ज्ञान का धर्म है। गुरु शिष्यपना निमित्त नेमित्तक सम्बन्ध है। पाटे ज न कवि के अभिप्राय को स्याद्वाद मार्ग से विशद किया। जिससे लोग एका त प्रणय कर दूषे नही स्याद्वादनयस अ कि जिनवाणी, व्यवहार नय और निश्चय नय इन दोनों न भीत में जो विरोध मालूम होन लगता है उस विरोध को मेटव वस्तु थ असली स्वरूप न प्रकट करती है। आत्मा जर अप आत्म स्वरूप का बि तवन करता है और अन्तर-दृष्टि त्यता है ज्ञान में अनुभय करना है, कर्मोपाधि की न को गण करता है तथ अपन को सिद्ध समान पाता शुद्ध दरता है आत्मा को तत्र तदात्म्य सम्बन्ध में देखा न तथ कर्मजनित आत्मा क साथ जिनन कौपाधिक भाव व स्वय सयोग सम्बन्ध स भय विकारीभाव विभावभाव उनके साथ आत्मा का तदात्मपना कहा है। तदात्मपना क के साथ होता है जो तानों काल सदा सत्स्वरूप पाये न सां नही है विभावभाव का नाचित्व है, परनिमित्त जनि

वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। स्वपरोपादानाऽपोहन-व्यवस्थामात्र
हि सलु वस्तुनो वस्तुत्वम् ।

याना वस्तु का वस्तुपना यही है जो स्व-निष्का
पपादान-ग्रहण और परका अपोहन-त्याग तिसमें होय। तब
वस्तु अपनी चीज छोड़ती नहीं और परकी ग्रहण नहीं करती तो
शुद्ध निरचय नय म त्रिकालवर्ती शुद्ध, अशुद्ध पर्यायों का
समुदाय द्रव्य में रहो तो भा तादात्म्य सम्बन्धस-स्वरूप
दृष्टि से उन पर्यायों में भी चिदाकार क आकार परिणमन के
साथ ही तादात्म्य रहता है, न कि नरकाकादिपर्यायों
क साथ। इसी प्रकार लब्धपर्याप्तकसूक्ष्मनिगोदिया जीव के
जहा एक रवास में १८ बार जन्म मरण होता है वही इतना
अचन्य ज्ञान रह गया है कि उसमे कम ज्ञान फिर नहीं होता
पम पर्यायज्ञान को आचार्य श्रीकुन्दकुन्द स्वामी ने नियमसार
में "परम पारिणामिक भाव टङ्कोत्तीर्ण कारण समयसार
स्वभाष ज्ञान, बिना घडाहुभा सुषटवाय और वही ज्ञान
बढ़ता २ केवलज्ञान होकर कार्य समयसार होता है ऐसा
दिखाया है। वस्तु की स्वरूपदृष्टिसे तो शुद्धनिरचयनय ने
आत्मा सिद्धममान शुद्ध है ही।

सो ही श्री आलाप पद्धति मे श्रीदेवसनाचार्य जी ने कहा
है "कर्मोपाधिनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सर्व जीवा सिद्धममा "

यानी—कर्म की उपाधि की अपेक्षा को न करके शुद्ध
द्रव्यार्थिकनयसे देखा जाय तो सब ही जोव सिद्धसमान शुद्ध ही
है ता भी इसका ऐसा एकान्त न कर लेना 'जो हम तो मदा
कान शुद्ध हा हैं। अत हम कुछ करना ही नहीं चाहिए।
यह तो वेदान्त की तरद, भाइकानूस की तरह ऊपर शरार का

तोनी चढ़ो है हमार अंदर कुछ विकार ही नहीं" तो फिर धर्मापदेश मोक्ष के लिये जब तब संयम धर्म व्यवहार मध्य भूटा 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' यानी एक ब्रह्म ही सत्य है और सब भूटा व्यवहार है।

यद्यपि तादात्म्य से कर्मापाधि आत्मा की नहीं तथापि संयोग सम्बन्ध से अनादि-कालीन पुद्गल सम्बन्ध से आत्मा के गुणों में विकार हो रहा है। उसी विकार में ही प्राणी दुःखी है और उसी विकार को दूर करना ही मोक्ष है और उस विकार दूर करने का उपदेश देना ही धर्मापदेश विधि है। यह जो शरीर का सम्बन्ध अनादि काल से हो ही रहा है माना हुआ फालतू नहीं है। इन कर्मों का सम्बन्ध आत्मा के अस्वरुपात प्रदेशों को आच्छादित कर चारों तरफ से वेदकर घेरकर के आत्मा के प्रदेशों पर अस्थित है जिससे कि आत्मा के गुणों में विकार संयोगजनित है। यह संयोग सम्बन्ध ऐसा नहीं है जैसा इस जीव के साथ काल, आकाश, धम, अधमादिक का है, इस संयोग सम्बन्ध से संसार में मध्य बन्धन भाव होकर आत्मा दुःखी होता है। उस दुःख को दूर करने का उपाय ही यह मध्य है। जैसे जल स्वच्छ सफेद है पर मिट्टीस मिश्रित होने से जल में गदलापन हो गया है वह एकदम अलीक भूटा नहीं है, उसी मिट्टी का संयोग दूर होने से ही स्वच्छ शुद्ध होगा। उसी प्रकार आत्मा के गुणों में मलिनता कम पनित है, जब कर्मों को दूर कर देता है तब ही स्वच्छ शुद्ध हो सकता है, वह मलिनपना जल में भूटा नहीं है यद्यपि जल का असलीयत से स्वरूप दूर तो जल में मलिनता का तादात्म्य नहीं, मिट्टी जनित मलिनता है, इसी प्रकार आत्मा स्वभावतः शुद्ध ही है, पर शरीर-संयोग जनित कम

की अपेक्षा से मलिन है, दुखी है ही। उसी 'दुःख' को 'मैटने' का धर्मोपदेश तथा धर्माचरण व नियमादि हैं। तब नय विभाग की अपेक्षा नष्टि से विरोध दूर हो जाता है। यह नय विभाग ही स्याद्वाद है, इसी बात को दिखाने हुए श्री अमृतचन्द्राचार्य जी पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में लिखते हैं—

एतेनारुर्णन्ता श्लथयन्तीं प्रस्तुतत्प्रमितेण ।

अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननप्रमिर गोपी ॥

जैसे गोपी—गालिन मथानी जो रई है उसको दही में ढालकर एक हाथ से मथानी को खींचती है और दूसरे हाथ में ढोली करती है तो थोड़े से ही परिश्रम से मक्खन को निकाल लेती है। इसी प्रकार जैनी नीति—स्याद्वाद अनकार्तमिद्धा त वस्तु स्वरूप को प्रकट करता है, आत्मा थोड़े ही परिश्रमसे अपने निज स्वरूप को तथा पर पदार्थों की इयत्ता को जान लेता है, अनुभव करलेता है। ऐसी स्याद्वादनीति जैन न्याय है। वह जयको प्राप्त होता है, यह स्याद्वाद ही व्यवहार और निश्चय नय है, विरोध को दूर करता है।

पदाथ अनन्तधर्मा है एक धर्म कहते और धर्मा वा अभाव जाना जाय इससे 'स्यात् कथञ्चित् ऐसा है और स्यात् कथञ्चित् ऐसा भी है' जैसे एक मनुष्य मामा भानजे, पिता पुत्र, भाइ जमाइ स्वसुर अनेक धर्म जिये है। पर एक ही धर्म मानते अन्य धर्मा का लोप हो जावे सो होता नहीं। इसलिये अपेक्षा न सब धर्म सिद्ध होते हैं। जैसे मामा की अपेक्षा भानजा और भानजे की अपेक्षा मामा, पुत्र की अपेक्षा पिता और पिता की अपेक्षा पुत्र है। एक को गौण, एक को मुख्य कर सब धर्म सिद्ध होत हैं, और वस्तुका स्वरूप समझ में आ जाता है, और यदि

अपला (दृष्टि) छोड़ दे, एक तरफ देग तो वस्तु की स्थिति को कदापि नहीं समझ सकते ।

इसी तरह इस ग्रंथ में श्री कविवर बनारसोदास जी का कविता के अभिप्राय को निरूपण और व्यवहार की दृष्टि को प्रथम विशद करते हुये श्रीमान् पं० रूपचन्द्रजी पांडे विद्वान् विशद करके टीका में दिखाया है । आप प्राचीन प्रामाणिक विद्वान् थे, इसी से हमने जनता के लिये विशेष उपयोगी समझ इस टीका सहित मुद्रित कराकर अपूर्ण लाभ कराने का अभिप्रायसे आप पाठक लोगों के समक्ष इस ग्रंथ को रक्खा है । उपयोगी समझ लाभ उठायेंगे और कोई ख्याति लाभ पूजादि लौकिक स्वाध की आकांक्षासे नहीं, परमाध लाभका ही प्रयाजन है । एसा समझ विद्वद्गण तथा हमारे सर्वमाधारण भाई पढ़कर हमारे प्रयास को सफल करेंगे । इत्यर्थं पल्लवितेन ।

शम्भुलाल, तर्क तीर्थ भिण्ड

निम्न लिखित मञ्जनों ने इस ग्रन्थ माला को जो उदारता
 पूजक, द्रव्य-दान देकर अपना धर्म प्रेम दिव्याया है, उन महा
 शयो को शतश धन्यवान् है। अथ भाई भी इनका अनुकरण
 करके अथ ग्रन्थों के प्रकाशन म द्रव्य दान देकर अपने धर्मको
 सफल करेंगे।

- १३००) श्रीमान् बा० काशारामजी जैन, एम० ए० एल एल० बी०
 सुपुत्र मठ जगन्नाथजी जन, फीराजपुर
 (पूर्वो पंजाब) हा० मु० कलकत्ता।
- २०१) मनीपुर-पंचान (आसाम)
 २००) पलास वाड़ी पंचान (आसाम)
 १०८) गोहाटी, बहीम, छीमापुर, मलवाडा पंचान (आसाम)
 ११७) द्विवरुगढ पंचान (आसाम)
 १०१) श्रीमान मठ गंभारमल जा पाड्या (कलकत्ता)
 १०१) श्रीमान सठ मदनचन्द्र नेमिचन्द्र जो पाड्या (कलकत्ता)
 १०१) श्रीमान मेठ महेन्द्रकुमार जी सठो (बंबई)
 १०१) श्रीमान बा० निर्मलकुमार जा जैन, (कलकत्ता)
 १००) श्रीमान बा० नाराचन्द्र जी जैन स्वर्वा (कलकत्ता)

प्रनुभाष्टक

—१०—

(दाहा-छन्द)

१

अनुभव रस निज वीजिव,
अनुभव का जो सार ।
अनुभव ज्ञान सभारिय,
अनुभव का धृष्टार ॥

२

अनुभव शुद्ध मुहायना,
अनुभव स्वाद अपार ।
अनुभव भव धिति को दरे,
अनुभव निज आधार ॥

३

अनुभव का अनुभव नहीं,
अनुभव आदि न अन्त ।
अनुभव ज्ञान सुधार लो,
अनुभव सरस अहत् ॥

४

अनुभव आत्म स्वप्न है,
अनुभव शुद्ध अशाच ।
अनुभव सुख अन्त है,
अनुभव रस ही साध्य ॥

५

अनुभव निज रस मंथरे
अनुभव शिव करनार १
अनुभव सम नहि और है,
अनुभव ज्ञान अपार ॥

६

अनुभव का नहि मरण है,
अनुभव में नहि व्याध ।
अनुभव रसत उद्योग है,
अनुभव सहजी साध्य ॥

७

अनुभव में वैराग्यता,
अनुभव पास हो पास ।
अनुभव पन्थम गति गहै,
अनुभव महिमा साम्य ॥

८

अनुभव अथ निज ऐसखा,
अनुभव निज विलासत ।
अनुभव नाम अनाम है
अनुभव नन्द-मत्त ॥

विषय-सूची ।



पृष्ठांक

पृष्ठांक

हिंदी टीकाकारों मंगलाचरण १	पुण्य तत्त्व	२८
ग्रथकार का मंगलाचरण	पाप तत्त्व	२९
श्री पार्वनाथ स्तुति २	आत्मव तत्त्व	२९
श्री सिद्ध स्तुति ७	संवर तत्त्व	२९
श्री साधु स्तुति ८	निर्जरा तत्त्व	३०
सम्यग्दृष्टि स्तुति ९	धर्म तत्त्व	३०
उत्थानिका	मोक्ष तत्त्व	३१
मिथ्यादृष्टि वर्णन १३	समुच्चय वस्तु के नाम	३१
कवि स्वरूप वर्णन १५	शुद्ध जीव द्रव्य के नाम	३१
कवि लघुता वर्णन १७	संसारी जीवद्रव्य के नाम	३३
नाटक वर्णन २१	आकाश के नाम	३४
अनुभव वर्णन २२	काल के नाम	३४
जीवद्रव्य स्वरूप २५	पुण्य के नाम	३४
पुद्गल द्रव्य २५	पाप के नाम	३५
धर्म द्रव्य २६	मोक्ष के नाम	३५
अधर्म द्रव्य २६	बुद्धि के नाम	३६
आकाश द्रव्य २७	त्रिचक्षण पुरुष के नाम	३६
काल द्रव्य २७	सुनीश्वर के नाम	३७
नव तत्त्व वर्णन २७	दर्शन के नाम	३७
	ज्ञान के नाम	३८

	पत्रांक		पृष्ठांक
मूठ के नाम	३६	परमार्थ शिक्षा	६८
द्वादश द्वारका वर्णन	३६	तीथ करस्तुति धातुरूप	६६
१ जीव द्वार		निन स्तुति व्यवहार रूप	७०
चिदानन्दभगवान की स्तुति	४१	यथार्थ कथन	७०
जिनवाणी की स्तुति	४०	चङ्चेतनभिनतापरदृष्टात्	७०
कवि व्यवस्था कथन	४४	ताथङ्कुर स्तुति स्वरूप कथन	७४
आगम व्यवस्था वर्णन	४२	निश्चय व्यवहार कथन	७४
निश्चय व्यवहार कथन	४७	घस्तु स्वरूप कथन	७६
सम्यग्दर्शन व्यवस्था	५८	भेदज्ञानपर धोषीका दृष्टात्	७७
अग्नि का दृष्टात्	५०	निश्चयस्वरूप कथन	७६
वनवारी का दृष्टात्	५१	ज्ञान व्यवस्था	७६
सूय का दृष्टात्	५३	घस्तु स्वरूप पात्रके दृष्टात्	८१
जीव व्यवस्था	५४	२ अजीव द्वार	
हितोपदेश	५५	अजीव द्वार वर्णन	८३
ज्ञाता का विलास	५६	ज्ञान की व्यवस्था	८३
गुणगुणी अभेद कथन	५७	परमार्थ शिक्षा कथन	८५
ज्ञाता का चिन्तन स्वरूप	५६	घस्तु व्यवस्था वर्णन	८६
द्रव्य पर्याय अभेद कथन	६०	अनुभव प्रशसा	८७
द्रव्यगुणपर्यायभेद व्यवस्था	६१	घस्तु विचार	८८
व्यवहार कथन	६२	निश्चय व्यवहार रूप घस्तु	८६
निश्चय स्वरूप	६३	घट का दृष्टात्	८६
शुद्ध कथन	६३	चेतन का साक्षात् स्वरूप	९०
अनुभव प्रशसा	६४	अनुभव विधान	९०
ज्ञाताकी व्यवस्थाका वर्णन	६५	मूर्ति वर्णन	९२
भेदज्ञान प्रशसा	६६	ज्ञाता का विलास	९३

	पृष्ठांक		पृष्ठांक
ज्ञान कथन	६४	समरसी भाव प्रशंसा	१२३
३ कर्ता कर्म क्रिया द्वार		सम्यक्स्वरूप लक्षण	१२४
प्रतिज्ञा	६६	शुद्धानुभव चितवनविलास	१२५
भेद माहात्म्य वर्णन	६६	अनुभव प्रशंसा	१२७
ज्ञान सामान्य वर्णन	८६	अनुभव का दृष्टान्त	१२८
भेद ज्ञान का समर्थपना	१०१	मिथ्यादृष्टि कर्तृत्व कथन	१२६
जीव पुद्गल लक्षण भेद	१०२	मूढ कर्म का कर्ता	१३०
कर्ता कर्म क्रिया स्वरूप	१०३	ज्ञाता अज्ञाता कथन	१३०
कर्ता कर्म क्रिया एस्त्व	१०४	जीव द्रव्य कर्मका अकर्ता	१३१
कर्ता कर्म क्रिया विवरण	१०५	सम्यक्त्व स्वभाव कथन	१३२
सम्यक्त्वमिथ्यात्वव्यवस्था	१०६	४ पापपुण्यएकत्र द्वार	
यथाकर्म तथाकर्ता एकरूप	१०७	प्रतिज्ञा	१३४
मिथ्यादृष्टि हस्तोका दृ०	१०६	ज्ञान चन्द्रकला वर्णन	१३४
ध्रमस्वरूप कथन	११०	शुभाशुभ एककत्वी कथन	१३५
सम्यग्दृष्टीका स्वभाव	१११	शिष्य प्रश्न	१३६
कर्तृत्वपर तप्तोदक दृष्टान्त	११३	गुरु उत्तर वचन	१३८
कर्तृत्वविवरण	११४	मोक्ष पद्धति कथन	१४०
व्यग्रहार कर्तृत्व कथन	११५	शिष्य प्रश्न, गुरु उत्तर	१४१
शिष्य प्रश्न कर्तृत्व कथन	११५	बध मोक्ष स्वरूप कथन	१४२
गुरु उत्तर कथन	११६	मोक्ष मार्ग निरूपण	१४५
शिष्य प्रश्न	११७	शिष्य प्रश्न, गुरु उत्तर	१४५
गुरु उत्तर	११८	ज्ञान मोक्ष मार्ग कथन	१४६
मूढ कर्तृत्व कथन	११८	ज्ञान तथा कर्म विवरण	१४७
शुद्धानुभव माहात्म्य	१२०	स्याद्वाद प्रशंसा	१४८
नश्चयव्यवहानयप्रमाण	१२१	मूढ विचक्षण वर्णन	१४६

५ आसन द्वार

प्रतिज्ञा	१५१
ज्ञानबल वचन	१५१
द्विविध आसन्न लक्षण	१५२
ज्ञाता लक्षण	१५४
ज्ञान का समर्थपना	१५४
शिष्य प्रश्न	१५६
गुरु उत्तर कथन	१५७
रागद्वेष तथा मोह लक्षण	१५८
रागद्वेष कथन	१५८
ज्ञाता निरासन्न कथन	१५९
ज्ञान विलास कथन	१५९
उपशमीक्ष्योपशमीव्यवस्था	१६०
शुद्ध नय प्रशंसा	१६०
जीव विलास वर्णन	१६०
सम्यक्त्व प्रशंसा	१६३

६ सगर द्वार

प्रतिज्ञा	१६६
ज्ञान वर्णन	१६६
भेदज्ञान महिमा कथन	१६६
सम्यक्त्वसमर्थता वर्णन	१६७
सम्यग्दृष्टि महिमा कथन	१७०
भेदज्ञान महिमा वर्णन	१७१
कथन	१७०

पृष्ठांक

पृष्ठांक

भेदज्ञान महिमा वर्णन	१७०
भेदज्ञान कर्तव्यमाहात्म्य	१७३
भेदज्ञान कर्तव्य कथन	१७३
भेदज्ञानमोक्षका मूलकथन	१७४

७ निर्जरा द्वार

प्रतिज्ञा	१७६
निजरा स्वरूप कथन	१७६
सम्यक्त्व महिमा	१७७
ज्ञान यैराग्य शक्ति वर्णन	१८०
ज्ञाता की व्यवस्था	१८१
मिथ्यादृष्टि व्यवस्था	१८२
मूढ क्रिया वर्णन	१८३
महामूढ व्यवस्था कथन	१८६
जीव की शयन और जाग्रत दशा	१८७
शयन दशा वर्णन	१८७
जाग्रत दशा वर्णन	१८९
सुगुरु शिक्षा कथन	१९०
आत्म द्रव्य स्तुति	१९०
संसार वर्णन	१९१
ज्ञाता क्रिया कथन	१९२
ज्ञान समुद्र वर्णन	१९३
मोक्षमागो अप्राप्ति	१९४
मूढ़ व्यवस्था	१९६
पर्यायार्थ निरूपण	१९७

पृष्ठांक		पृष्ठांक
ज्ञानमहिमाधारक व्यवस्था १६८	परलोक भय निवारण	२२१
मोक्ष प्राप्ति व्यवस्था १६६	मरण भय निवारण	२२३
अनुभव प्रशंसा २००	वेदना भय निवारण	२२४
ज्ञानदृष्टि सामर्थ्य कथन २०१	अनरक्षा भय निवारण	२२५
परवस्तुत्यागविशेष कथन २०२	क्षीर भय निवारण	२२६
सामान्य विशेष कथन २०३	अकस्मात् भय निवारण	२२७
ज्ञाता अलिप्त कथन २०४	ज्ञानीकी व्यवस्था	२२६
ज्ञानी अवाञ्छक २०५	अष्ट अ ग के नाम	२३०
ज्ञाता अलिप्त दृष्टान्त २०६	अङ्ग लक्षण	२३०
ज्ञाता अनुद्वेग कथन २०७	चेतन्य नाटक कथन	२३२
ज्ञाता अघ कथन २०८	उध द्वार	
ज्ञान दीपक वर्णन २०९	प्रतिज्ञा	२३४
ज्ञान स्वभावअस्वटित २११	वध विदारक सम्यक्त्व	२३४
स्याद्वाद कथन २११	कर्म चेतना ज्ञानचेतना	२३५
ज्ञान वैराग्य युगपत् २१३	बन्ध निदान कथन	२३७
ज्ञान वैराग्य की एकता २१३	बन्ध निदान हठीकरण	२३८
मूढ कर्ता कर्म कथन २१४	उद्दिम प्रशंसा	२३६
ज्ञानीके अघ और अज्ञानी	उदय व्यवस्था वर्णन	२४१
के बन्ध पर दृष्टान्त २१४	उदय बल वर्णन	२४१
ज्ञाताका अकर्तृत्व कथन २१५	यथा व्यवस्था	२४३
ज्ञाता का वर्णन २१६	यथाव्यवस्था क्रिया	२४३
सम्यक्वर्त का सादृश २१७	क्रिया तथा फल	२४५
सप्तभय का नाम २१८	ज्ञान वैराग्य सहकारण	२४५
सप्तभय लक्षण २१९	पदार्थ चतुष्क कथन	२४६
यह भय भय २२०	पदार्थ व्यवस्था कथन	२४७

	पृष्ठांक		पृष्ठांक
पुरुषार्थ चतुष्टय-अध्यात्मरूप	२४८	उपदेश व्यवस्था	२८२
शुद्धनय वस्तु स्वरूप कथन	२५०	पिएडग्रहाड घणन	२८३
मूढताका कथन	२५१	गुरु उपदेश कथन	२८४
चार प्रकार जीव व्यवस्था	२५२	ज्ञान माहात्म्य कथन	२८५
उत्तम पुरुष	२५३	मन स्वरूप कथन	२८७
मध्यम पुरुष	२५५	मनकी चंचलता कथन	२८८
अधम पुरुष	२५६	मनकी चंचलताका विशेष	
अधमाधम पुरुष	२५७	लक्षण	२८९
मिथ्यादृष्टि वर्णन	२५९	विचार शिक्षा	२९०
मूढ व्यवस्था कथन	२६०	शुद्ध अनुभव शिक्षा	२९१
मिथ्यात्वो जीवन	२६२	ज्ञाताजीव कथन	२९३
मूढ़ त्रिपयी	२६३	ज्ञाताकी क्रिया	२९३
संसारी तथा मुक्त अवस्था	२६७	सम्यक्त्वधारी वैभववर्णन	२९५
मिथ्यात्म भाव व्यवहार	२६८		
शिष्य प्रश्न	२६९	६ मोक्षद्वार	
गुरु वचन	२७०	प्रतिज्ञा	२९७
सयोगिक स्वभाव	२७१	ज्ञान त्रिलास वर्णन	२९७
आत्मा शरीर भिन्न कथन	२७२	सुसुद्धि विलास	२९८
आत्माकरि शुद्ध परिणति	२७३	ज्ञाता का विलास	३०२
देह व्यवस्था कथन	२७४	नौधा भक्ति	३०५
देह वर्णन	२७६	अनुभव वचन	३०५
कोल्हूकाबैल और संसारी		चेतना कथन	३०७
जीव	२७८	चेतना अभिनाशा कथन	३११
जगत्प्रवासी जीव व्यवस्था	२८०	नटका दृष्टाव	३११
जगत व्यवस्था कथन	२८१	चेतना उपादेय	३१३

	प्रष्ठाक		प्रष्ठाक
म्यगृष्टि मोक्षमार्गिका		१० सर्वनिशुद्धि द्वार	
साधक	३१३	प्रतिज्ञा	३४१
चक्षुणदशा	३१४	शुद्धात्म दर्शन	३४१
गीर तथा साहू वर्णन	३१६	जीव अकर्ता	३४३
सत्ता	३१६	स्वभाव विभाव वर्णन	३४४
सत्ताव्यवस्था	३१७	जीव अभोक्ता	३४५
वेतन सत्ता वर्णन	३१८	भोगतापनो अभोगतापनो	
एक जीवद्रव्यसत्ता वर्णन	३२०	लक्षण	३४६
समाधि वर्णन	३२१	जीव अभोक्ता कथन	३४७
मेध्यागृष्टि अपराधी	३२२	अह बुद्धि	३४८
मेध्यामति वर्णन,	३२३	कर्ता कथन	३५१
मृठी करनी	३२३	मूढ कर्ता कथन	३५३
मूढ व्यवस्था	३२४	शिष्य का प्रश्न	३५४
सम्यग्गृष्टि व्यवस्था	३२५	गुरू उत्तर	३५५
ज्ञानी की व्यवस्था	३२६	एकाती चादी	३५८
समाधि वर्णन	३२८	स्याद्वाद कथन	३५९
शुभ क्रिया वर्णन	३२९	स्याद्वाद उपदेश	३५९
कम मार्गसे मोक्ष नहीं	३२९	बौद्धमती	३६१
अभिमानी तथा ज्ञानी		मत खंडन उपदेश	३६१
व्यवस्था	३३४	दृष्टांत कथन	३६२
शुद्धात्म अनुभव प्रशंसा	३३५	बौद्ध मत का श्रद्धान	३६३
मोक्ष उत्पत्ति वर्णन	३३८	दुर्बुद्धि तथा दुर्गति लक्षण	३६४
अष्ट कम के नाश से		दुर्बुद्धि लक्षण	३६५
अष्ट गुण प्रकाश	३३९	अनेकांत लक्षण	३६८

	प्रश्नक	प्रश्नक
पंच नय वर्णन	३६६	ज्ञानक्रिया का स्वरूपकथन ४०३
मत व्यवस्था कथन	३६६	ज्ञान क्रियाका प्रभाव
मत स्थापना कथन	३७१	भिन्न ० कथन ४०४
मतस्थापना एकस्वीकरण	३७२	ज्ञाता पूर्वकृत आलोचना ४०५
स्याद्वाद स्वरूप कथन	३७३	ज्ञाता ज्ञान प्रभाव कथन ४०६
अनुभव व्यवस्था	३७५	मिथ्या परिणाम ४०८
अनुभव दृष्टांत	३७५	क्रिया की तिन्दा ४०६
कर्त्ता कथन	३७६	ज्ञाता कथन ४११
विपरीत बुद्धि	३७७	ज्ञान स्वरूप कथन ४१०
व्यापक कथन	३७८	ज्ञानी पुरुष की महिमा ४१५
व्यवहार निश्चय कथा	३७९	शुद्ध आत्मद्रव्य वर्णन ४१६
विपरीत बुद्धि वर्णन	३७९	एकांत द्रव्यलिङ्गकी तिन्दा ४१०
मिथ्यामति कथन	३८१	ज्ञान अभान स्थान ४२०
सम्बन्धकी स्तुति	३८२	भेदादिकधारक मूढ कथन ४०३
अव्यापक द्रव्य कथन	३८३	अनुभव योग्यता ४२४
यथा स्वरूप कथन	३८४	अनुभव महिमा ४२५
अनुभवस्वरूपप्रदर्शमानता	३८५	अनुभव शिक्षा ४०६
प्रश्नोत्तर कथन	३८७	द्रव्यलिङ्गी ४२७
व्यापकता कथन	३९०	महामूढ ४२९
मूढ स्वभाव कथन	३९०	मोक्ष का उपदेश ४३२
शुद्धि कथन	३९३	शुद्ध जीव द्रव्य ४३३
सुबुद्धि वर्णन	३९५	प्रेम व्यवस्था ४३४
कर्म धर्म	३९७	नव रस के नाम ४३७
विवेक धर्म	३९९	नव रस अवस्था ४३८
ज्ञान क्रिया सहकार कथन ४००		नवरसज्ञानगर्भित एकीभूत ४३९

	पृष्ठा		पृष्ठा
प्रत्यक्षज्ञान	४१०	द्वान्द्वयप्रमाण	४६८
		प्रयोगशाला ज्ञान	४६९
स्याद्वाद द्वार		चतुर्दशम अनायन ज्ञान	४७०
अमृतचंद्र मुनिजी स्तुति	४१	स्याद्वाद प्रशंसा	४७०
प्रश्नोत्तर कथन	४४६	१२ माध्यमानुक्रम	
द्रव्य क्षेत्रकालभाव अस्ति		प्रतिज्ञा	४७४
नास्ति	४८८	माध्य मानक स्वरूप	४७४
स्याद्वाद क सात भग	४४६	साधक व्यवस्था	४७६
चतुर्दशमय पश्चात् पक्ष	४५०	गुरु प्रशंसा	४७८
ज्ञान का कारण ज्ञय	४५५	उपदेश कथन	४७८
द्वितीयनय आत्मा-त्रिलोक		उपदेश कवि	४८४
प्रमाण	४५३	पक्ष प्रकार जीव	४८७
तृतीय ज्ञेयसौ अनेक ज्ञान	४५४	द्विधा जीव	४८७
चतुर्थ-मेत ज्ञेय द्वाया	४५५	त्रिधा जीव	४८८
पंचम नय जौलौ ज्ञेय		सूधा जीव	४८८
तौला ज्ञान	४५७	ऊघा "	४८९
पष्ठ सर्वद्रव्यमय आत्मा	४५९	घूघा "	४८९
समम नय क्षेत्रप्रमाण	४६०	द्विधा "	४९०
अष्टम-नास्तिक वानी		त्रिधा कथा	४९०
वस्तु नहीं	४६०	साधक लक्षण	४९१
नवम देह के नाश से		सम्बन्धजन नाम	४९१
जीवन का नाश	४६३	भावित व्यवस्था कथन	४९०
दशम देह उपपन्न जीव		साधक व्यवस्था	४९३
रूपने	४६५	पौदह रत्न का वर्णन	४९४
एकादशम आत्मा अचेतन	४६६	आठरत्न हेतु पट उपादेय	
		कथन	४९६

	प्रश्नक		पृष्ठां
सा प्रत्ययवस्था कथा	१८७	अनादि मिथ्यात्व	४२०
सम्यक्त्वव्यवस्था	४१८	सामान्य गुणस्थान	४३१
अनुभवो विज्ञान	४१६	मिथ्य गुणस्थान	४३३
ज्ञान क्रिया कथना कथन	४०	बौद्धा सम्यक्त्वगुणस्थान	४३७
ज्ञान द्रव्य व्यवस्थापना	४०१	कर्मण प्रथ	४६
ज्ञान फल उरण	४००	सम्यक्त्व क अष्ट गुण क	
अनुभव व्यवस्था कथन	४४		ताम ४ ३
सम्यक्त्वकाल भाग्य कथन	४०५	सम्यक्त्व	४०५
ज्ञान शेषा विशेष कथन	४ ३	प्रवृत्ति	४ ८
म्यादृवादि रूप वर्णन	४ ६	सत्त्व	४३८
कवल शशा वर्णन	४१३	गुण	४ ६
अमृतत्व द्रव्यत्वान्नान्नअथे	४१४	पंच भूषण	४०६
कवि-श्रालोचना	४१७	पञ्चीम दोष	४१०
		अप्रमत्त	४१०
चतुर्दश गुणस्थान			
प्रतिमा माहात्म्य	४१६	दृढत्वनायता	४४१
प्रतिमा माने ताको उरण	४०१	मदप्रथ	४४१
वनारसी कथन	४ -	सम्यक्त्व नारायण पथक	४४
गुणस्थानस्वरूप कथन	४ ३	असीचार पथ	४४२
चतुर्दशगुणस्थान के नाम	४ ४	मत्त प्रकृति	४४५
पथ मिथ्यात्व के नाम	४ ५	सम्यक्त्व क अष्ट कथन	४४५
त्रिपरीत कथा	४००	नव विधि सम्यक्त्व	४४६
विनय मिथ्यात्व	४०८	छायिक वेदक	४४८
भ्रशय मिथ्यात्व	४०८	भेद वर्णन	४४८
ज्ञान वर्णन	४२६	निश्चय व्यवहार कथन	४४६
नादि मिथ्यात्व	४०६	पथम गुणस्थान	४२५

	प्रकार	प्रकार	पृष्ठांक
आयु के इन्डैस गुण	५५०	पंच सामति	५७०
षाडीम अमल	५५३	पट अ, नशर	५७१
एकादश प्रतिमा का नाम	५५४	स्थावरकल्प निनकल्प	५७१
प्रतिमा कथन	५५६	वाक्मि परीसह	५७०
द्वितीय प्रतिमा	५५७	वाक्मि परीसह का नाम	५७२
तृतीय प्रतिमा	५५८	स्थविरकल्प का तारतम्य	५७८
चतुर्थ प्रतिमा	५६६	सप्तम गुणस्थान	५७६
पंचमी प्रतिमा	५६०	अष्टम गुणस्थान	५८०
षष्ठा प्रतिमा	५६०	नवम-गुणस्थान	५८१
सप्तम प्रतिमा	५६१	दशम गुणस्थान	५८२
नव वाङ्	५६१	एकादश गुणस्थान	५८३
अष्टम प्रतिमा	५६३	द्वादश गुणस्थान	५८४
नवम प्रतिमा	५६३	सप्तम गुणस्थान की स्थिति	५८४
दशम प्रतिमा	५६४	तेरहवा गुणस्थान	५८५
ग्यारमी प्रतिमा	५६४	केवलज्ञान की स्थिति	५८७
जय य मध्यम उत्कृष्ट		अठारह दीप	५८८
कथन	५६५	चतुर्दशम गुणस्थान	५६१
पंचम गुणस्थानकी स्थिति		आत्मन संवर व्यवस्था	५६२
	५६६	सवर को नमस्कार	५६३
पूव समा कथन	५६६	नमस्कार	५८४
अंतर सुदूर्त का प्रमाण	५६७	ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम	
प्रमत्त गुणस्थान	५६८	प्रशस्ति	
पंच प्रमाद	५६८		
अठारम मूल गुण	५६६	ग्रन्थ महिमा	५६७
महाप्रत	५७०	जीवन की महिमा	५६७

	प्रष्ठांक		पृष्ठांक
कत्रिया के नाम	६००	मृषा गुणगान	६५
कत्रि व्यवस्था	६०१	समयसार ताटक का	
सुसत्रि	६०	-व्यवस्था	६०७
कुर्कवि	६००	विंग कथा	६१०
वाणी व्यवस्था	६०३	पत्रों की मर्यादा	६११
वाणी व्यवस्था दृष्टांत	६०४	प्रशस्ति	६१२

नाटक समयसार—



श्रीमान बा० काशीनाथ जी जैन

M.A LL.B

सुपुत्र श्रीमान से० जगन्नाथ जी जैन
फीरोजपुर [वर्तमान] कलकत्ता ।

ॐ

नमः समयमाराय ।

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ-मालाया एकादश पुण्य ।

स्व० विद्वन्मणि कृपिण प० बनारसीदासनिरचित

छन्दोवद्ध

समयसार नाटक

म० प० रूपचन्दजी पीण्डे कृत

हिन्दी भाषाटीस मात



मङ्गलाचरण

दोशक वृत्त ।

श्रोजिन-वचन-समुद्रको, कौलम होय बखान ।

“रूपचन्द” तोहू लिखें, अपनी मति अनुमान

अथ श्री पार्श्वनाथजाका स्तुति ॥ शशरा को चाल ॥

मैया ३१ मा

करम भरम जग तिमिर हरन खग,

उरग लखन पग शिव-मग दरसी ।

निरखत नयन भविक जल वरपत,

हरपत अमित भविक जन सरसी ॥

मदन कदन जित परम धरम हित,

सुमिरत भगत भगत सब डर-सी ।

सजल जलद तनु मुकट सपत फनु,

कमठ दलन जिन नमत “वनरसी” ॥

टोका—अब ग्रथके जादि मगलाचरणरूप श्रीपार्श्वनाथ-
स्वामीजीकी स्तुति आगराको जासी श्रीमालवसी
त्रिहोलिया गोत्री बनारमोदाम करतु है । श्रीपार्श्वनाथ
स्वामी कैसे हैं ? करम भरम कहते करम मो आठौ ही
करम, भरम सो मिध्यात, सोई जगतमै तिमिर कहता
अघकार तारै हरनसौ खग सूर्य है । अरु जावै पगमै उरग
लखन कहतै सर्पको लाठन है अरु मोक्ष मारगके दिखा-

वन हार हैं। अरु जाको नयन कर निरखते, भविक कहता कल्याणरूपी जल है सो उपै ताते अमित कहता परिमान विना, भविक जन सरसी कहता भव्यलोक सरोवर है सो हरपत है, चित कहते जिहि कारण, मदन कदन कहता कदर्पके शयकारक है अरु जाको उत्कृष्ट सहज सुखरूपो धर्मके हेतु भगत लोग है सो सुमिरत कहते सुमिरन करै हैं ताते सत्र डर-मो कहते साते भयरूपी मोत है सो भगत कहते भाग जाई है। सजल कहते जल सहित, जरुद कहते मेघ ताके समान तनु कहता जाको सरोर है नील र्ण, जाके मुकुट विपै मात पण हैं ऐसे कमठ जसुरके दलन कहता मान भजन हार, जिन कहता श्रीपार्शनाथ तोर्थकर ताको प्रारमोदास नमस्कार करत ।

सर्व लघु एक स्वर चित्र । छप्पय छद् ॥

पुन श्री पार्शनाथजीकी स्तुति ॥

सकल कर्म खल दलन,

कमठसठ पवन कनकनग ।

धवल परम पद रमन,

जगतजगत्प्रसाद -

परमत जलधर पवन,

सजलघन सम तन शमकर ।

पर अघ रजहर जलद,

सकलजन नत भवभयहर ॥

यमदलन नरकपट छय करन,

अगमअतट भव जल तरन ।

वर सबल मदन वन हर दहन,

जय जय परम अभय करन ॥ २ ॥

टीका—अन सरं लघु अक्षराकृति एक अक्षर लियै सर्व अक्षरतै चिन्नाकार लिये छप्पयउद कहै है और श्रीपादर्शनाथजीको स्तुति करै हैं, ये मनमुख स्तुति ।

समस्तजो करम खल कहतै कर्मरूप बैरी ताकै दलन हार हौ । सठ कहता डोठौ जो कमठ अगुर ताहूतै उपाए जो पवन ताकै आँग आँडग, कनकनग कहतै मेरु पर्वत समान हौ, धवल परम पद कहतै निर्मल जो मिद्ध स्थान ताकै त्रिपै रमनहार हौ, जगत'जन कहतै जगत्पयासी लोक सोई, अमल कमल

कहता उज्जल-रुमल ताके भिकाशयैकौ राग कहता घष ।
 एकांत नय वादोरूप जो पराये मत सोई जलधर कहतै मेघ
 ताकू भेटन पयन समान है । सनलघन कहता सजलमेघ घटा
 ताके मम कहता समान तनु कहता सरोर जाकौ । रुमकर कहता
 उपशमके करनहार हौ, पर कहता शत्रुरूप जो, अघ कहता पाप
 मोई रज ता हरनकौ जलद कहता मेघ समान हैं । नरुल
 लोगनि नव कहता नए हँ एतै त्रिभुवन पूज्य हौ, ममभयके
 हरनहार हौ । यम कहता मृत्यु ताके दलनहार हौ । भव्यलो-
 गनके नररूपके क्षय करनहार हौ । अगम कहता अथाह
 अतट कहता जवार जैमोजु भयनल कहता—भमार समुद्र ताके
 तरनहार हौ । वर कहता सर्वदोषमै प्रधान अरु सजल कहत
 बलवान ऐसी जो मदनन कहता कदर्पन ताकी दाह करनकौ,
 हर-दहन कहता रद्रेके नेत्रकी अगनि, अँसे भगवान तुम जन्वत
 होऊ । परम अमयके करनहार हौ । एतै मयके मजन द्वार
 हौ ॥२॥ पुन, पार्श्वनाथनकी स्तुति —

सर्पया ३१ सा

जिन्हिके वचन उर धारत जुगल नाग,

भये धरनिंद पद्मभावती पलकमें ।

की नाम महिमा सौ कुयातु कनक करे

पारस पापाण नामो भयो है खलकमे ॥

न्हको जनमपुरी नामके प्रभाव हम,

आपनों स्वरूप लरयो भानसो भलकमें ॥

हे प्रभु पारस महारसके दाता अत्र,

दीजे मोहि साता दृग लीलाकी ललकमें ॥३॥

अर्थ—कुमार अत्रथा माहि “ओ ज मि आ उ सा नम ”

से जिहिक वचन हिये मैं धारत ही जुगल नाग कहतैं

गनिर्म जलत नाग नागिनी मो एक पलकमें धरनिद

हमावती भए । ये दिगम्बर सम्प्रदायतैं है । श्वेताम्बर

म्प्रदायम एक नाग है । अरु पारस पापाण खलकमे नामोकहै ।

ये कुयातु कहतैं लाह ताको कनकरूप करे है सो या

पापानमें ऐसी महिमा कहातैं उपनो । याको ए उत्तर ।

पारस असो श्रीपारशनाथजीकी नाम याहन पायो । ता नाम

महिमामो असो भयो । अरु जाकी जनमपुरी बनारसी सौऊ

नाम हमहो पायो । ता नामके प्रभावत हम ही अपनी

जात्मस्वरूप लरयो । वैमो एक लरयो सौ दृष्टान्त करि कहै

एक कहता परमात भान सौ कहता सूर्य सौ, सौई प्रभु

पारमनाथनी तुम महारसके दाता कहतै महाशातिरसके दातार
हौ । अत्र मोहि दृगन्नीलानी ललकमें सो, आसिमृद उचारियो
एत कालको सत्तागिमें मोहि माता दीजै ॥३॥

अथ सिद्धकी स्तुति । छट अडिछ

अविनासी अत्रिकार परमरस धाम हे ।

समाधानसरवग सहज अभिराम हे ॥

सुद्ध बुद्ध अत्रिरुद्ध अनादि अनन्त है ।

जगत-सिरोमनि सिद्ध सदा जयवत्त है ॥४॥

अर्थ—अत्र अडिछ छट करके श्री सिद्धभगवानकी स्तुति
करत है । जाके विनाश नहीं, जाके विकार नहीं असो जो
परमरस कहतै—कोऊ केवलीगम्य महज सातिरस, ताकी धाम
कहत घर है, तात सरय जगतिमें महजकी जो समाधि अनन्त
सुखपनी, ताकरके अभिराम कहतै वस्तुत मनोक है । सर्व
दोषत रहित तात शुद्ध, सर्वज्ञपनी पायो तात बुद्ध, सर्वके
ईश्वर तात अत्रिरुद्ध ऐसी अव्यामौ अनादि अनन्त, चौदहराज
लोकके उपरि विराजमान तातै जगत सिरोमनि कहिये ।
ऐसे सिद्ध भगवान सदा सर्वदा जयवत्त होउ ॥४॥

अथ साधुकी स्तुति । मवैया ३१ सा

ग्यानकौ उजागर सहज सुखसागर,

सुगुन रतनागर विरागरस भरयो है ।

सरनकी रीति हरे मरनकी भैन करै,

करनसौ पीठ दे चरन अनुसख्यो है ।

धरमकौ मडन भरमकौ विहडन व्है,

परम नरम व्हैकै करमसो लर्यो है ।

ऐसो मुनिराज भुअलोकमें विराजमान,

निरखि "धनारसी" नमस्कार कर्यो है ॥५॥

अर्थ—गुनिराज कैसे हैं—ग्यानकौ उजागर कहतें उद्योत करनहार, आत्मद्रव्यकौ जो सहज सुख ताकौ सागर कहतें-समुद्र है और हू सुगुन कहतें ज्ञान, दर्शन, चारित्र ताकी खानि । पचेद्री विषय परि जो वैराग्यरस ताकरि भरयो है । परीसह उपजै गृहस्थकोसी नाइ सरनकी रीति न रागै । आत्माको शास्वत द्रव्य जानकर मरनको भयछाडै । करन कहतें इन्द्रिय ताकौ पीठि दैनी सो ताकै विषयसो निमुख है, तौ यो करिकें चरन कहता चारित्र सोई जिन अनुमर्यो है—

आदर्यो है । जाकी आश्रयलिये धर्म पदार्थ विराजै तातें
 धरम । भरम सो मिथ्यामति ताकी विशेष खण्डनहार है ।
 परम नर्म वहै कै कहतां परम दयावन्त वहै कै कर्म सो युद्ध
 करै है । दयावन्तकी युद्ध नाही उनै है ये विरोधालकार ।
 ऐसी विशेषता लिये जो मुनिराज कहतै ऋषीश्वर भुवलोकेमें
 ४५ लाख मनुष्य क्षेत्रपिपयहो विराजमान हैं ताकी हृदय में
 नैनतें निहारके वनारनोडापनमस्कार करै है । ५।

अथ सम्यक् दृष्टिकी स्तुति । सर्षया ३१ सा ।

अथ पच अणुत्रत लिये जो समकृती ताकी स्तुति करै है—

भेद विज्ञान जग्यो जिन्हके घट,

सीतलचित्त भयो जिम चन्दन ।

केलि करै शिव मारगमें,

जगमाहि जिनेश्वरके लघुनन्दन ॥

सत्य स्वरूप सदा जिन्हके,

प्रगट्यो अवदातमिथ्यात निकटन ॥

संत दशा तिनकी पहिचानि,

करै कर जोरि वनारसो वंदन ॥६॥

टीका—मन्द बुद्धि हैं सौ जीव सरीरको एक ही जाने हैं
 पै भद्र नहीं जानता । जहूँ निनि ममकित पायो है ताँके
 हिएनै जड चेतनको भिन्न भिन्न ज्ञान भयो सौ भेदज्ञान
 जाग्यो यातँ चित्त चदन ज्यो सीतल भयो, मित्र मारगमें
 सो मुक्तिमारगमें केलि करे सो खेल कर रहे हैं । यातँ
 जगतनिपै श्रीजिनेश्वरके लघु-नदन है छोटे पुत्र है, साधु
 हैं, सो सर्वज्ञपुत्र कहारि सौ बडे हैं । निश्चै तौ आत्मा सदा
 सत्यस्वरूपम ही है पै मिथ्यातमों मलिन हुई गयो है सो फिरि
 सत्यस्वरूप जिनके जगदात कहतै निर्मल प्रगट्यो अह
 मिथ्यातको निरुदन भयो, चार अनतानुबधो जड दूटी, ऐसी
 तिनरी सत दसा कहता गुद्व दसा पहिचानिकें बनारसीदाम
 कर नोरिने वदना करै है ॥६॥

पुन सम्यग्दृष्टि वर्णन ॥ सवोया ३१सा

स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त,—

साचे साचे वैन कहे साचे जैनमती हे

काहूके तिरुद्धो नाही परजाय बुद्धी नाही,

आत्म गवेषा न गृहस्थ हे न यती हे

रिद्धि सिद्धि वृद्धि दीसै घटमै प्रगट सदा,
 अंतरकी लक्षसौ अजाचे लक्षपती हैं ॥
 दास भगवतके उदास रहे जगत सौं,
 सुखिया सदीव औसे जीव समकृती है ॥

टीका—या ग्रथमें समकृत ही की वृद्धता है। तातें
 और पूर्ण समकृत ही की स्तुति करै है।

स्वार्थके साचें कहतें—आत्मपदार्थनिर्णय माची प्रतीति है।
 परमार्थ कहतें—मोक्ष पदार्थ ता विपै जिनकी माची प्रतीति
 है। चित्त साचे सौ निर्मल चित्त है। साचे वचनके कहनहार
 हैं। साचौ जिनमत लिये रहत है। पै मत कल्पना नाही
 करत है। सातौ नयकी मुरुष जानै तातें काहू दर्शनके
 निराधी है नाहीं। जैसे बोद्धके परजाय बुद्धि है, पै
 द्रव्य बुद्धि नाही तातें जीवकों छिन भगुर माने तैसे ए
 समकृती पर्यायबुद्धि नाही, आत्म द्रव्य ही की गवेणा
 है तातें याकी परस्तुमों मोह नाही, यातें ए गृहस्थ हू
 नाहो। महाव्रत न लिये तातें यति हू नाहीं। अपने
 घटमें शुद्ध आत्मद्रव्यकी सिद्ध समान हो देखै है। ताता
 घटमें ही प्रकट सिद्धि देखै है। अरु ज्ञान दर्शन चा

भूल्यो अभिमानमें न पाव धरै धरनीमें

हिरडैमें करनी विचारै उत्पातकी ॥

फिरे डावाडोलमों करम के कलोलनिमें

वहै रही अवस्था ज्यु बघलाकेसे पातकी ।

जाकी टाती तानी कारी कुटिल कुवाती भारी,

ऐसौ ब्रह्मघाती हे मिथ्याती महापातकी ॥६॥

टीका—ज जिन समकित न पायौ, मिथ्यातहीमें रहे
है ताको बरनन करै है —

धर्म कहत वस्तुको स्वभाव मा जानै नहो, भरमरूप
मिथ्यात जानो ताको खानै अरु ठौर ठौर आप सौ आपनी
मन म्थापन मोई पशपात कहानै ताका लडाई ठानत कहते
ठहरावै । अरु अपने अभिमानम भूल्यो यमौ धरती पर पाउ वरै
नहीं । आपहीको तत्त्ववेत्ता जान । याके अधर पाँउ कहे मो
उत्प्रेक्षालकार है । अरु हियमें ऐसी ही करनी विचारै जातै
उत्पात उपजै । अरु या भर- समुद्रमें करम किलोलनि घकायौ
मन्ती चारो गतिम डावाडोल करतौ फिरै । याकी अवस्था
वैमो है जैसे बघलाकी पात आकाशमे उड्यो ही फिरै, ठहराव कही

न पावै तैसी याकी हू अस्था है रही है । जाकी छातो राग
 द्वैपतं तातो व्है रहो है सो याही तापतं कारी माया राखनेकू
 वुटिल व्है रही, उरी वातकी चिन्तनहार तातें हुजाती पापमो
 भारी तातं भारी । असी जाकी छाती है सो ब्रह्मचाती
 कहतं जीववातको करनहार मिथ्याती महापातक युक्त है ॥६॥

दोहा

घटो सिव अत्रगाहना, अरु वन्दौ शिवपथ ।
 जसु प्रसाद, भाषा करौ, नाटक नाम गिरथ ॥१०॥

टोका—मित्र अत्रगाहना कहतं जहा सिद्धको अत्र गाह
 हू रह्यो है ता क्षेत्रको उदौ । अरु ज्ञान दर्शनचरित्र ए मोक्ष
 मार्ग है ताको उदौ । ए मङ्गलाचरण कर अत्र अपनी प्रयोजन
 कहै हैं । जाकै प्रमादतें ममयमार नाटक नाम ग्रथ प्राकृत
 संस्कृतम है सो भाषारूप करौ हौं ॥१०॥

अथ कवि वर्णन ॥ सगैया ३१ सा ॥

चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध
 समान सदा पद मेरौ
 मोह महातम आतम अग,
 कियौ परसग महातम घेरौ

माचौ चन्द्रमा जानि हाथ नीचौ करै तो बाके हाथ चन्द्रमा कैसे
 बनि आए । तैसे मैं जलप बुद्धि हौं अरु इस नाटक ग्रथ
 को आरम्भ कीनौ है सो यो मेरो आरभ सफल नहीं होइगी
 तब और गुनी जन मोहि हसेगे । यहु कहेंगे जू या ग्रथको
 ए आरम्भ करै है सु मारौ है ॥१२॥

पुन सप्रेया ३१ स ।

जैसे काहू रतनसों पीध्यों हे रतन कोऊ,
 तामै सूत रेशमकी डोरी पोई गई है ।
 तैसे बुध टीका करि नाटक सुगम कीन्हौ,
 तापरि अल्प बुद्धि सूधि परनई है ॥
 जैसे काहू देशके पुरुष जैसी भाषा कहें,
 तेसी तिनहूके बालिकनि सीखि लई है ॥
 तैसे ज्यो ग्रथको अरथ कियो गुरु,
 त्यों हमारी मति कहिवैको सावधान भई है ॥
 ज१—यहु कार्य करिवैको माहम करै है, जैसे कोहू
 हीराकी रनीमौ कोऊ मठिन रतन पहिलै ही पीधि राख्यौ है
 अरु पीठ पटुआ बत रेशमकी डोरीसों पीवै है । वा रतनमें वा

सूत रेणुमकी डोरा सुगम चली जाइ है तँस एहू कार्य होइगो ।
 जु अमृतचन्द्र मुनि अरु पांड रानमल्लस बुध कहत पण्डित भये
 तिनि पाटतनि या ग्रन्थकी टीका बालनाथ करिए नाटक ग्रन्थ
 सुगम कीन्हो । तापरि हमारी अल्प बुद्धि है तो हू या ग्रन्थमें
 सरो परिनभि गई है । अरु या कार्यविष्य अपनी समर्थाईकी
 दृष्टान्त दिखावै है जैमें काहू देशकी उमडया पुर्य अपने देशकी
 भाषामें गोले अरु राकी बालक हाइ मोऊ राकै दिंग बाहू भाषा
 साखि लेइ है, तँस योहू कार्य है । ज्यो हमारे गुस्ने या ग्रन्थकी
 अरथ हमको क्यो, त्योही या ग्रन्थकी अरथ कहियेको हमारी
 बुद्धि मानमान हाइ है । इतने पीछली पथात्ताप मेट्यो, १३॥

सत्रैया ३१ सा

कवहो सुमति ह्वै कुमति को विनाश करै,
 कवहो विमल ज्योत अन्तर जगति है ।
 कवहो दयाल ह्वै चित करति दयाल रूप,
 कवहो सुलालसा ह्वै लोचन लगति है ।
 कवहो कि आरनी ह्वै प्रभु सन्मुख आवै,
 कवहो सुभारती ह्वै बाहरि बगति है ॥
 धरै दत्ता जैसी तत्र करै रीति तेसो,

ऐसी हिरदे हमारे भगवतकी भगति है ॥१४॥

अर्थ—अब अपनी समझाई कर दिखाई है। हमारे हियेभ भगवतकी भगति रहै है सोई कन्हौं सुमति है कं सुमतिको विनाश करै है। कन्हौं राही भगति अन्तरात्रिपै निमल ज्योतिरूप हूँ कं जगति है। इतने सम्पकू चेतना सो भगवतकी भगति हो है। अरु बाही भगवतकी भगति हमारै हीयमें रहै है सो कन्हौं दयाल-रूपै परिणमे है। अरु दयारूपहै कं चित्तकां दयालरूप करै है। अरु बाही भगवतकी भगति रहै है सो कन्हौं अपना ईश्वर निहारनाकी लालसा कहतें लोचन लगति है। इतने लग लागनितें लोचन थिर हूँ है। अरु बाही भगवतकी भगति कन्हौं कि जास्तो कहतें अतिरग लिये प्रभुके ममुख हूँ रही है। दूजै अर्थै—आरती प्रभु सन्मुख करिये है। अरु बाही भगवतकी भगति कन्हौं कि सुभारती कहतें भलीभागीरूप हूँ कं बाहिर वगति है सो शब्द करि रही है। जमी जमी दमा धारै है तब तैसी रीति की कन्हनहार है। सोतौ ऐसी हमारै हियमें एक भगवत ही की भगति है। यातें नाटक ग्रथ रचनारूप कार्यमें एक भगवतकी भगति सोई कारण है। यहू तात्पर्याथ ॥१४॥

अथ नाटक वर्णन । सौम्या

मोक्ष चलिकों सौन करमको करै धोन,

जाके रस भोन बुध लोन ज्यों घुलत है ।

गुनको गरथ निरगुनको सुगमपथ,

जाको जस कहत सुरेश अकुलात है ॥

आहोके जु पच्छी ते उडत ज्ञानगगनमें,

याहोके विपच्छी जगजालमें रलत है ।

हाटकसौ विमल विराटकसौ विसतार,

नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है ॥१५॥

पर्व—अथ या ग्रथकी महिमा बखानै हैं । जैसे भले सौतेन (शुद्धनमों) कारजकी मिद्धि होइ तैसें यो ग्रथ मोख चलन-हारको कार्यसिद्धिकों करनहार है । अरु यो ग्रथ कर्म कफ-जाल निवारिकों बमनको ओपध है । अरु निन—ग्रन्थकी रस सोई भौन कहतें पानो तामे बुध कहतें-पडित लोन ज्यों घुलि रहै है । गुन कहिये ज्ञानदर्शन चारित्र ताको ग्रन्थ है-रचना है । पर-मतीकी अपेक्षातें निरगुन कैसा है सो कहै हैं । जाको जस अक्षय सुखपनको सुनत कहत सुरेश कहतें इन्द्र है सोऊ अकुलाति

। इतने वा पत्को इन्द्र अकुलावे है । अरु या ग्रथके
 पक्षी है या ग्रथको पक्ष लिये गै है सो तो ज्ञान जाकागमें
 डि रहै है । इतने पक्षी होइ सा अनाश उटै । अरु या गून्थके
 पिपक्षी है पक्ष न राखै ह सो जगत-जालमे रल्ल फिरै हैं ।
 क्षमल दृश्य जालम हो परै । तो या नाटक हाटक कहतै
 मो) सुवर्णमौ प्रिमल है । अरु गीता गून्थम कृष्णजु पिराट-
 प दिखायो मो घटा ही प्रित्सार दिखायो । तैसे याको बडो
 प्रसार है । ऐसो यह नाटक गून्थ सुनत हियेरे फाटक कहतै
 प्रसार सुलि गइ है ॥१५॥

दोहरा

कहौ सुद्ध निहचे कथा, कहौ सुद्ध विवहार ।

सुगति पथ कारण कहौ, अनुभौको अधिकार ॥१६॥

अथ— जो सुद्ध निश्चयरूप कथा है सो अत्र कहौ ।
 अरु सुद्ध व्यवहार है सोऊ कहौ । अरु सुगति पथको
 कारण अनुभौको अधिकार है सोह कहौ गौ ॥१६॥

अथ अनुभौ वर्णन, दोहरा

वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम ।

रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याको नाम ॥१७॥

अर्थ—अत्र अनुभव पदार्थको लक्षण कहै है । अज्ञानी वस्तु जानिवैको मनमे विचार-ध्यातै । ऐसै खोतत खोजत मनम ठीक ठहराउ पातै, तत्र माच पायाको रस स्वाद पावै तातै मुख ऊपजै । याको नाम अनुभव है ॥१७॥

अनुभौ चिन्तामनि रतन, अनुभौ है रस कूप ।
अनुभौ मारग मोख को, अनुभौ मोख सरूप ॥१७॥

अर्थ—अनुभौ कहतै जानिगो सोई चिन्तामनि रतन है । सोई अनुभौ रसायन की कुई है सोई अनुभौ मोखको मारग है । अरु अनुभौ मोक्षरूप ही है ॥१७॥

अथ सर्वा ३१ मा ॥

अनुभौके रसको रसायन कहत जग,
अनुभौ अभ्यास यहु तीरथकी ठौर है ।
अनुभौकी जो रसा कहावै सोइ पोरसा सु,
अनुभौ अधोरसा सु ऊधरकी दौर है ॥
अनुभौकी केलि इहे कामधेनु चित्रावेलि,
अनुभौ स्वाद पच अमृतको कौर है ।
अनुभौ ~~प~~ तोरै परमसौ प्रीति जोरै,

अनुभौ समान न धरम कोऊ और हे ॥१८॥

अर्थ—अनुभौको महिमा गतानै है ॥ जगत वासी लोक हैं सु अनुभौके रसकौ रसायन ही कहत हैं । जैसे रसायन लोहकौ मटि सोवन (सुर्ण) करै तैसे अनुभौ ही मिध्यात कौ मटि समकित करै । जैसे तीरथकी ठौर पायेंत अपावनतें पावन होइयै तैसे यह अनुभौकौ अभ्यास अज्ञानको जान करै है । अरु जो अनुभौकी रसा कहतें पृथ्वी सोई सोवन पोरमा है । इतने अनुभौकी उत्पत्ती है सो सोवन पुरस ज्यु बढ़ती है । अरु अधोरसा कहियै पाताल लोक सोई अनुभौ रूपमें है । अरु ऊर्ध्वलोकको दौर सोई अनुभौ रूपमें है । इतने अपने अनुभौ ही में सुरग नरक हैं । अरु अनुभौकी केलि कहियै रामति है सो कामधेनुरूप है । अपने ऋद्धिकी बढावन है । अरु या हो अनुभौकी केलि है सो अक्षयऋद्धि करिबे कौ चित्रावेलि है । अरु याही अनुभौ कौ स्वाद आवै है सो पचामृतके कवल है ग्रास है । अरु याही अनुभौ है सु करमकौ तौरै हैं । परम कहतें परमात्माओं प्रीति जोरै है । इतने अनुभौहोतें पौ(खो)जत परमात्मा पाइयै । तातै सन धर्म धरवै में अनुभौ समान औ कोऊ धम है नहीं । इतने जानिनै ही तैं मोक्ष है ॥१८॥

अथ पृथु द्रव्य कर्णानं

॥ दोहरा ॥ जीव द्रव्य यथा ।

चेतन वत अनन्त गुण, पर्यय सकृति अनन्त ।

अलख अखडित सर्वगत, जीव दरव विरतत ॥१६॥

अर्थ —जसे जीव द्रव्य हैं तैसौ दिपावै । जानिवो मात्र सो चेतना शक्ति सहित है जाके अनन्त गुण हैं । पयाय कहिये नामातर पाइवो जाम माहू शक्ति अनत इन्द्रिय अगोचर है तातै अलक्ष्य है । देहखड भएत ही अपडित है । सर्व लोके भरयो है, तातै सर्वगत है । ऐसौ जीव द्रव्य कौ वृत्तात कहतै सरूप है ॥१८॥

अथ पुद्गल द्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

फरस वर्ण रस गध मय, नरद पास सठान ॥

अनुरूपी पुद्गल दरव, नभ प्रदेश परवान ॥२०॥

अर्थ—अत्र पुद्गल द्रव्यकौ लक्षण कहै हैं । स्पर्शवर्ण रस गध गुणमई सदाई रहै । नरदरामतिके पासामें (१) वृत्त सूक्ष्म (२) त्र्यस्र (३) चतुर (४) आयत ए सस्थान है । तैसैं याकी सम्या जाय अपनी वर्गना योग्य रूप गूहै है तातै ए पुद्गल द्रव्य अनुरूपी अथवा परमाणुरूपी हैं । सर्व आकाश प्रदेश जैमै अनन्त है तैसे पिण अनन्त प्रमाण है । ॥२०॥

अथ धर्मद्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

जैसे सलिल समूह में, करे मीन गति कर्म ॥

तैसे पुद्गल जीव को, चलन सहार्द्र धर्म ॥२१॥

अथ—अत्र धर्म द्रव्यको लक्षण कहें हैं जैसे पानी के भराऊ मच्छ जीव हैं सो गति कर्म कहत गमन क्रिया करै है । तथा क्रियाको कता मच्छ है अरु सलिल समूह सो पाना को भराऊ वा क्रियासी साधक है । तैसे पुद्गल द्रव्य अरु जीव द्रव्यके चलन क्रिया को महाई कहतें साधक धर्मास्तिकाय द्रव्य ह ॥२१॥

अथ अधर्म द्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

ज्यो पथिक शीपम समै, बैठे छाया माहि ॥

त्या अधर्मकी भूमिमे, जड चेतन ठहराहि ॥ २२ ॥

अर्थ—अत्र अधर्मास्तिकाय द्रव्यको लक्षण कहें हैं ॥ जैसे कोऊ मटाऊ उन्हालिकाल छाया पाय बैठै, बैठक क्रिया को कता तो यत्राऊ है, वं वा क्रियासी साधक छाया है तैसे अधर्मास्तिकायकी भूमि कहता अरगाहना तामें जड सो पुद्गल चेतन सो जीव ए दोनो थिर होत हैं । यतें अधर्मास्तिकाय द्रव्य थिरताको कारन है ॥२२॥

अथ आकाश द्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

सतत जाके उदर में सकल पदार्थ वास ॥

जो भाजन सब जगतको सोइ द्रव्य अकास ॥ २३ ॥

अर्थ—अत्र आकाश द्रव्यको लक्षण कहै है ॥ सतत कहते निरतर जाके उदरमें समस्त पदार्थ बसि रहै है । अरु जो सब जगतको भाजन कहतें आधार भूत है सोई आकाश द्रव्य जानियै ॥२३॥

अथ काल द्रव्य यथा ॥ दोहरा ॥

जो नवकर जीरन करै, सकल वस्तु थिति ठान ॥

परावर्त्त वर्त्तन धरै, काल द्रव्य सो जानि ॥ २४ ॥

अर्थ—अत्र काल द्रव्यको लक्षण कहै है ॥ अत्र जोई द्रव्य सकल वस्तुको थिति माधै । पहिले सकल वस्तुको नवापनौ दिसायै, पीछे वाही वस्तुको जीरनपनौ करै । अरु उलटि पलटि वर्त्तिना यहू दमा धरै ॥ मौई काल द्रव्य जानियै ॥२४॥

अथ नव तत्त्ववर्णन ॥ दोहरा ॥

समता रमता ऊरधता, ज्ञायकता सुखभाव ॥

वेदकता चैतन्यना, ए मत्र जीव विलास ॥ २५ ॥

अथ—अप्र जाग्रतत्र समुद्राद्यतु है । सत्र जीव सम वरो-
 त्रि है ए समता ॥ घटघटमें रमि रहै है ए रमता ॥ ऊर्ध्वदिसि
 गमन करिषी ए ऊर्ध्वता ॥ सत्र ही कौ जाननहार ए ज्ञायकृता ।
 सुषमई भावै कहियै सुषदुष वैदै सो वेदकृता । चेतना गुनत
 चेतनता ए सत्र जीग्रतत्रको ही विलाम है ॥ २५ ॥

अथ जीवतत्र यथा ॥ दोहरा ॥

तनता मनता वचनता, जडता जड समेल ॥

लघु गुरुता गमनता, ए अजीवके खेल ॥ २६ ॥

अर्थ—अप्र अजीग्रतत्रकी पहिचान करावै है ॥ तनपनौ
 मनपनौ वचनपनौ जडपनौ । जड वस्तुमे एकमेरु होतौ । लघु-
 पनौ गुरुपनौ गमनपनौ ए सत्र अजीग्रतत्रके खेल हैं ॥ २६ ॥

अथ पुण्यतत्र यथा ॥ दोहरा ॥

जो विशुद्ध भाविनि वधै, अरु ऊरधमुख होय ॥

जो सुषदायक जगतमै, पुन्य पदारथ सोय ॥ २७ ॥

अर्थ—अप्र पुन्यतत्रकी पहिचान करावै है ॥ जोई पदा
 विसुद्ध परिनामही तैं वधै अरु जा कौ ऊरध मुख है । ऊरधग
 ही कौ दारै । जोई पदारथ जगतमें सुषदायक है सोई पुन्य
 पदारथ जानिय ॥ २७ ॥

अथ पापतत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

सकलेश भावनि वर्धे, सहज अधोमुख होइ ॥

दुखदायक सत्तार में, पाप पदारथ सोइ ॥ २८ ॥

अर्थ—अथ पापतत्त्वकी पहिचान करार्य है ॥ जोई पदारथ सकलेश भावकरि रूपाय तीव्रता करि वर्धे । सहज ही जाके अधोमुख है । नीची गति सामुहौ मुग्य है । अथ जगत में दुखदायक है सोई पाप पदारथ कहार्य है ॥ २८ ॥

अथ आश्रय तत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

जोई करम उदौत धरि, होइ क्रियारसरक्त ॥

करपे नूतन करम कौ, सोई आश्रय तत्त्व ॥ २९ ॥

अर्थ—अथ आश्रय तत्त्वकी पहिचान करार्य है ॥ जोई करम कौ उदौ धरके शुभ तथा अशुभ क्रिया के समे नूतन करम करपे कहता पैचें नूतन करम कौ सो नए करम कौ नई नए करम कौ सैचियो है सो आश्रय तत्त्व कहार्य है ॥ २९ ॥

अथ मयूर तत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

जो उपयोग सुरूप धरि, वर्धे ज्ञान दि

रोके करम कौ, सोई मयूर

अब सारतत्वकी पहिचान करारै है ॥ जो उपयोग सरूप
का परिक्त मनचन काययोग में निरक्त थकौ वरतै । अरु नए
नए आगत फरम रौ रोतै । सोई सार तत्व कहारै ॥ ३० ॥

अथ निर्जरात त्व यथा ॥ दोहरा ॥

जो पुरव सत्ता करम, करि थिति पूरन आउ ॥

खिरिबे कौ उदित भयो, सो निर्जरा लखाउ ॥३१॥

अर्थ—अब निर्जग तत्वकी पहिचान करारै है ॥ जा
पूरमाल विपै सात सत्तारूप फर्म थे । अरु जायु कर्म वर्तमान-
कालम सत्तारूप है ताही थिति पूरन करिणै पीठै नीरस कर्म
वैपिणै खिरिबे का जोउ उद्यमरत भयो मो निर्जराकौ लक्षण
जानियै ॥ ३१ ॥

अथ बधतत्व तथा ॥ दोहरा ॥

जो नव करम पुरान सौ, मिले गठि डिढ होय ॥

सकति बढारै बसको, बध पदारथ सोय ॥ ३२ ॥

अथ—बधतत्वका पहिचान करारै है ॥ जा नए कर्म
पुराने फर्म सौ आनि मिलै । अरु वाकी गाठ डिढ होई । अरु
आगूट वाही फर्मनै बमकी सगति बढती होई सोई बध पदा-
रथ कहारै ॥ ३२ ॥

अथ मोक्ष तत्त्व यथा ॥ दोहरा ॥

यित्ति पूरन करि जो करम, खिरे वधपद भानि ॥

हस अस उज्जल करे, मोख तत्त्व सौ जानि ॥३३॥

अर्थ—अथ मोक्षतत्त्वकी पहिचान करावै है ॥ फरमकी यित्ति कौ पूरन करिअै फरम को खेरै झारि डारे १७ वधपद सौ वध स्थान ताकौ भानि कहलै भाचवै हम कहतै परमात्मा ताकौ अन क्रमि २ उज्जल करै सोई मोक्ष तत्त्व जानि लीजै ॥३३॥

अथ नाममाला सूचनिका मात्र लिख्यते ।

अथ समुच्चय वस्तु के नाम ॥ दोहरा ॥

भाव पदारथ समय धन, तत्त्व वित्त वसु दर्ब ॥

द्रविण अर्थ इत्यादि बहु वस्तु नाम ए सर्व ॥ ३४ ॥

अर्थ—अथ कवित्त छंद में पदार्थ के नाम ल्याइवै कौ प्रयोजन वालै नाम तिनको नाममाला लिपियै है ॥ अथ सामान्य पद वस्तु के नाम कहै है ॥ भाव १ पदारथ २ समय ३ धन ४ तत्त्व ५ वित्त ६ वसु ७ द्रव्य ८ द्रविण ९ अर्थ इत्यादि घनेई ए मा वस्तु के नाम है ॥ ३४ ॥

शुद्धजीव द्रव्यके नाम ॥ मयैया ३१ सा ॥

परम पुस्प परमेशुर ज्योति परब्रह्म

पूरन परम परधान हे ।

अनादि अनन्त अविगत अविनासी

अज निरदुःख मुकुत मुकुन्द अमलान है ॥

निराबाध निगमनिरजन निरविकार

निराकार ससार सिरोमणि सुजानि है ।

सरव दरसी सरवज्ञ सिद्ध साई

शिवधनी नाथ ईश जगदीश भगवान है ॥ ३५ ॥

अर्थ—अज शुद्ध जीव पदार्थ नाम कहें हैं ॥ परम पुरुष कहिये परमेश्वर कहिये परम ज्योति कहिये परब्रह्म कहिये पूण कहिये परम प्रधान है अनादि अनन्त कहिये अविगत कहिये अविनासी कहिये अज कहिये निरदुःख कहिये मुकुत कहिये मुकुन्द कहिये अमलान कहिये निराबाध कहिये निगम कहिये निरजन कहिये निरविकार कहिये निराकार कहिये ससार शिरोमणि कहिये सुजान कहिये सरवदरसी कहिये सरवज्ञ कहिये सिद्ध कहिये स्वामी कहिये शिवधनी कहिये नाथ कहिये ईश कहिये जगदीश कहिये भगवान कहिये ॥३५ ॥

अथ ममारी जोषद्रव्यके नाम ॥ मर्या ३१ मा ॥

चिदानन्द चेतन अलख जीव समैसार,
बुद्धरूप अशुद्ध असुद्ध उपयोगी है ।

चिद्रूप स्वयम्भू चिन्मूरति धरमवत,
प्राणवत प्राणी जतु भूत भवभोगी है ॥

गुणधारी कलाधारी भेषधारी विद्याधारी,
अगधारी सगधारी जोगधारी जोगी है ।

चिन्मय अखड हस अक्षर आत्मराम,
करमकौ करतार परम वियोगी है ॥ ३६ ॥

अर्थ--अथ कर्म व्याप्त अशुद्ध जीव द्रव्यके नाम कहे हैं

चिदानन्द कहिये, चेतन कहिये, अलख कहिये, जीव कहिये,
समयमार कहिये, बुद्धरूप कहिये, अशुद्धरूप कहिये, अशुद्धो-
पयोगी कहिये, चिद्रूप कहिये, स्वयम्भू कहिये, चिन्मूर्ति
कहिये, धरमवत कहिये, प्राणवत कहिये, प्राणी कहिये, जतु
कहिये, भूत कहिये, भव भोगी कहिये, गुणधारी कहिये, कला
धारी कहिये, भेषधारी कहिये, विद्याधारी कहिये, अगधारी
कहिये, सगधारी कहिये, योगधारी कहिये, योगी

चिन्मय कहिये, अखण्ड कहिये, हस कहिये, अधर कहिये,
जात्मागम कहिये, करतार कहिये, परम वियोगी कहिये । ३६ ।

अथ आकाशके नाम ॥ दोहरा ॥

ख त्रिहाय अम्बर गगन, अन्तरिक्ष जगधाम ।

व्योम त्रियत नभ भेघपथ, ये आकाशके नाम ॥ ३७ ॥

अर्थ—अब आकाश द्रव्यके नाम कहें हैं—ख कहिये,
त्रिहाय कहिये, अम्बर कहिये, गगन कहिये, अन्तरिक्ष कहिये,
जाद्वाम कहिये, व्योम कहिये, त्रियत कहिये, नभ कहिये,
भेघपथ कहिये ॥ ३७ ॥

अथ कालके नाम ॥ दोहरा ॥

यम कृतात अन्तरु त्रिदश, आवर्ती मृतस्थान ।

प्राणहरण आदित तनय, काल नाम परवान ॥ ३८ ॥

अर्थ—अब काल पदार्थके नाम कहे हैं—यम कहिये,
कृतात कहिये, अन्तरु कहिये, त्रिदश कहिये, आवर्ती कहिये,
मृतस्थान कहिये, प्राणहरण कहिये, आदित्य कहिये, तनय
कहिये, ऐसे कालके नाम प्रमाण हैं ॥ ३८ ॥

अथ पुन्यके नाम ॥ दोहरा ॥ ।

पुन्य सुकृत ऊरधवदन, अरुरोग शुभकर्म ।

सुखदायक ससारफल, भाग बहिर्मुख वर्ना ॥ ३६ ॥

अर्थ—अर, पुन्यके नाम हैं हैं—पुन्य कहिये, सुकृत कहिये, ऊरधवदन कहिये, अरुरोग कहिये, शुभकर्म कहिये, सुखदायक कहिये, ससारफल कहिये, भाग कहिये, बहिर्मुख कहिये, वर्ना कहिये ॥ ३६ ॥

अथ पापके नाम ॥ दोहरा ॥

पाप अधोमुख एन अध, कपरोग दुखधाम ।

कलिल कलुस कल्पिस दुरित, अशुभ करमके नामा ॥ ४० ॥

अर्थ—अर पापके नाम कहें हैं—पाप कहिये, अधोमुख कहिये, एन कहिये, अध कहिये, कम्पक कहिये, राग कहिये, दुखधाम कहिये, कलिल कहिये, कलुप कहिये, कल्पिस कहिये, दुरित कहिये, अशुभ करमके नाम जानिये ॥ ४० ॥

अथ मोक्षके नाम ॥ दोहरा ॥

सैद्धक्षेत्र त्रिभुवन मुकुट, शिवमुकुट अविचलथान ।

मोख मुकति वैकुण्ठ शिव पचमगति निरवान ॥ ४१ ॥

अर्थ—अर मोक्षके नाम

त्रिभुवन कहिये,

विश्रुत मुहुट कहिगे, शशमुक्त कहिगे, अचिचल स्थान कहिगे,
मोक्ष कहिये, मुक्ति कहिये, वैकुण्ठ कहिये, शिव कहिये, पच-
मगति कहिये, निर्माण कहिये ॥ ४१ ॥

अथ बुद्धिके नाम ॥ दोहरा ॥

प्रज्ञा धिसना सेमुखी, धी मेधा मति बुद्धि ।

सुरति मनोपा चेतना, आशय अश विशुद्धि ॥ ४२ ॥

अर्थ—अब बुद्धिके नाम कह हँ—प्रज्ञा कहिये, धिसना
कहिये, सेमुखी कहिये, धी कहिये, मेधा कहिये, मति कहिये,
बुद्धि कहिये, सुरति कहिये, मनोपा कहिये, चेतना कहिये,
आशय कहिये, अश विशुद्धि कहिये ॥ ४२ ॥

अथ विपक्षण पुरुषके नाम ॥ दोहरा ॥

निपुन विचच्छन विनुध वुध, विद्याधर विद्वान ।

पट्टु प्रगीण पडित्त चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥

अर्थ—अब पण्डित पुरुषके नाम कहें हँ—निपुन का
विचच्छन कहिये, विनुध कहिये, बुद्ध कहिये, विद्याधर
कहिये, विद्वान कहिये, पट्टु कहिये, प्रगीण कहिये, प
कहिये, चतुर कहिये, सुधी कहिये, सुजन कहिये, मति
कहिये ॥ ४३ ॥

पुन —दोहरा

प्रवत कोविद चतुर, सुमन दक्ष धीमत ।

ज्ञा सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुणीजन सत ॥ ४४ ॥

अर्थ—स्लामत कहिये, कोविद कहिये, चतुर कहिये,
न कहिये, दक्ष कहिये, धीमान कहिये, ज्ञाता कहिये,
जन कहिये, ब्रह्मविद् कहिये, तज्ञ कहिये, गुनीजन कहिये,
कहिये ॥ ४४ ॥

अथ मुनीश्वरके नाम ॥ दोहरा ॥

नि महन तापस तपो, भिक्षुक चारिधाम ।

तो तपोधन सयमी, व्रती साधु ऋषि नाम ॥४५॥

अर्थ—अत्र मुनीश्वरके नाम हैं हैं—मुनि कहिया,
त कहिये, तापस कहिये, तपो कहिये, भिक्षुक काह्ये,
रिधाम कहिये, व्रती कहिये, तपोधन कहिया, सयमी
हिये, व्रती कहिये, साधु कहिया, ये ऋषिके नाम
निगे ॥ ४५ ॥

अथ दर्शनके नाम ॥ दोहरा ॥

रस विलोकन देखनी, अत्रलोकन दृग चाल ।

रखनिदृष्टि निरखनि जुवनि, चितवनि चाहनि भाल ४६

अर्थ—अब देखियेके नाम रहै है—दर्शन कहिगे, विलो
 कन कहिगे, दखनौ कहिगे, अवलोकनौ कहिगे, दृग चालन
 कहिगे, अगनौ कहिगा, दृष्टि कहिगे, निरीक्षण कहिगे,
 जौननौ कहिगा, चितमन कहिगे, चाहन कहियो भालनौ
 कहिय ॥ ४६ ॥

अथ ग्यानके नाम तथा चारित्रके नाम ॥ दोहरा ॥

ग्यान बोध अवगम मुनन जगत भान जग जान ।
 समय चारित आचरन, चरन वृत्त थिरवान ॥४७॥

अर्थ—ग्यानके नाम कहै हैं—पोछे या हो दोहरेमे चारित्र
 के नाम रहै हैं—ज्ञान कहिय, बोध कहिय, अवगम कहिये,
 मनन कहिगे, जगद्भानु कहिगे, जगद् ग्यान कहिगा, अब
 समयके नाम कहै हैं—मयम कहिगे, चारित्र कहियो, आचरण
 कहिगे, चरण कहिगे, वृत्त कहिगे, स्थैर्यवान् कहिगे ॥ ४७ ॥

अथ साचके नाम ॥ दोहरा ॥

सम्यक् सत्य अमोघ सत, निसदेह निरधार ।

ठोक यथार्थ उचित तथ, मिथ्या आदि अकार ४८

अर्थ—अब सत्यके नाम कहै हैं—सम्यक् कहियो, सत्य
 कहिगे, अमोघ कहिगे, सत कहिगे, नि सदह कहिगे, निर्धार

कहिगे, ठोकरु कहिगे, ययातया कहिगे, उचित कहिगा, तथ्य
कहिगे, आदित अकार अक्षर लगाइके मिथ्या शब्द पडिगा
इतने मिथ्या नाम ॥ ४८ ॥

अय झूठके नाम ॥ दोहरा ॥

अजयारथ मिथ्या मृषा, वृथा असन्न अलीक ।

मुधा भोधनि फलवितथ, अनुचित असत् अठीका ॥ ४९ ॥

अर्थ—अय झूठके नाम कहें हैं—अयथार्थ कहिगे, मिथ्या
कहिगे, मृषा कहिगे, वृथा कहिगा अमन्य कहिगे, अलीक
कहिगे, मुधा कहिगे, भोध कहिगा, नि फल कहिगे, वितथ
कहिगे, अनुचित कहिगे, असत् कहिगा, अठीक कहिगा, ॥
इति नाटक ममयमार मध्ये नाममाला सूचनिका ॥ ४९ ॥

अय समयसारके द्वादश द्वार ताकावर्णन ॥ सरैया ३१ सा ॥

जीव निरजीव करता करम पुन्य पाप,

आसन्न सवर निरजरा वध मोप हे ।

सरव विशुद्धि स्यादवाढ साध्य साधक,

—दस दुवारा धरै समैसार कोप है ॥

दरवानुयोग दरवानुजोग दूरि करै,
 निगमकौ नाटक परम रस पोष है ।
 ऐसे परमागम बनारसी बखानै जामें,
 ग्यानकौ निदान सुद्ध चारितकी चोष है ॥ ५० ॥

इति कहताँ सपूर्ण मई समयसार ग्रन्थ विषै स्यावनिका मात्र नाम
 माला सपूर्ण ॥

अर्थ—अब समयसारकौ न्यायान बारह द्वार करिके कहै
 है जीवद्वार, अजीवद्वार, कत्ता कर्म क्रियाद्वार, पुन्य पापद्वार,
 आसन्नद्वार, म्वरद्वार, निर्जराद्वार, उधद्वार, मोक्षद्वार, सब
 विशुद्धिद्वार, म्यादनाद्द्वार, माध्यमाद्यकद्वार ये १२ द्वार धरिक्के
 समयसार रूप कोष रहत कोठार है । या ग्रन्थमें द्रव्यानुयोग
 कहतै द्रव्यको विचार करियो, पीठ द्रव्यानुयोग दूरि करिवौ,
 शुद्ध आत्मा सत्ता ही मो विचार । निगम कहिये परमात्मा
 ताकौ नाटक है, परम ज्ञात रसकौ यामे पोष है, ऐसौ ए
 परम सिद्धान्त बनारसीदास बखानत है । या ग्रन्थनमे ग्यान
 हा कौ निदान कहते मूल व्यौरा अरु या ग्रन्थम शुद्ध चारित्रकी
 चोष कहतै चोषी क्रिया ॥ ५० ॥

जीविद्वार

(१)

अथ ग्रन्थारम्भकौ नमस्कार ॥ दोहरा ॥

शोभित निज अनुभूति युत, चिदानन्द भगवान् ।

सार पदारथ आत्मा, सकल पदारथ जान ॥ १ ॥

अर्थ—अथ ग्रन्थारम्भकौ निषे ममुचितष्ठ देवता परमात्मा ताकौ नमस्कार करहै—कोई पदार्थ निज अनुभूति कहते अपना अनुभवता करि युक्त थवौ मोभित है, चित् कहिये चतना अरु आनन्द तिनमै मौ चिदानन्द कहियै भगवान् कहियै ग्यानवन्त ऐमौ मारभूत पदार्थ मसारमै आत्मा ही है, जात समस्त पदार्थकौ जानन-हार है ग्याता है ॥ १ ॥

अथ नमस्कार ॥ मंत्रया ३१ मा ॥

जो अपनी दृति आपु विराजत,

है परधान पदारथ नामी ।

चेतन अङ्क सदा निकलरु,

महा सुखसागरकौ

॥

जीव अजीव जिते जगमें,
 तिनको पुण सायक अन्तरजामी ।
 सो सिवरूप वसे सिवथानकि,
 ताहि विलोकि नमें सिवगामी ॥ २ ॥

अर्थ—अब आत्माका वर्णन करिके नमस्कार करे है—जो अपनी दुतिमों आपु ही पिरानि रखी है, इतने आपु ही तें आपु भासि रखी है प और पदार्थ तें जाकी भास नाहो ऐसी कोऊ प्रधान पदार्थ नामीक है, प्रसिद्ध है चेतना, जाकी अङ्ग कहतै लक्षण है, सदा निकलक है, निरजन है, महा सुषममुद्रमें जाकी निशाम है, रहियो है, महज समाधि सुषम जोई रमि रखी है । जेते जगतमे जीव अजीव पदार्थ हैं तिन्हिके गुनकी ग्यापक है अरु जन्तर जामी है, घटघटम निराजमान है, साई शिवरूप कहते सिद्ध स्वरूप भयो छतो शिस्थानक वसे है, लोकाग्र भागै सिद्धस्थानक वसे है, ताहि विलोकि के, ग्यान दृष्टितें देखिके, शिवगामी सो मुक्तिगामी जोय नमस्कार करे ॥ २ ॥

अथ जिनरानी वर्णन ॥ सर्षया ३१ सा ॥

जोग धरै रहै जोगसौ भिन्न,
 अनन्त गुनातम केवल ज्ञानी ।

तासु हृदयै-द्रहसौ निकसी,
 सरितासम ह्ये श्रुति-सिन्धु समानी ॥
 याते अनत नयातम लच्छन,
 सत्य स्वरूप सिधत वखानी ।
 बुद्धि लखै न लखै दुरबुद्धि
 सदा जगमाहि जगै जिनवानो ॥ ३ ॥

अधा—अत्र भगवतः वानीको नमस्कार करै हैं—तीनों योगको धारै हैं पै मन रचन काय लोगतें भिन्न रहै है, अलिप्त है; अनत गुन प्रगटता लियं जाको आतमा है ऐसी कोऊ केवल ग्यानी पुरुष है ता केवलग्यानीको हृदयरूप द्रह है तहाते जौ निकसी, सरिता सम ह्यै कहत नदी रूप ह्यै के श्रुत-सिन्धु समानीसौ शास्त्र रूप समुद्रमे जाइ पैठो है, और नदीहू द्रहते समुद्रमे जाइ, याहितें अनत नय मरूप लक्षण लिये सत्यता मुरूप सिद्धान्तमे वपानो है । या वानीको बुद्धि कहत बुद्धि-वन्त तत्त्वदर्शी होई सोई लपै अरु दुरबुद्धि मिथ्यामती होइ सो नाही । ऐसी जिनेश्वरकी वानी जगतमें सदा जागि

जय जीव डार लिख्यते, कवि यमस्था कथन ॥

उपय छंद ॥

हो निहर्षे तिहुकाल, सुद्ध चेतनमय मूरति ।
 पर परनति सजोग, भई जड़ता विसफुरति ॥
 मोह कर्मपर हेतु पाइ, चेतनपर रच्चइ ॥
 ज्यो धतूर रस पान करत, नर बहुविधि नच्चइ ॥
 अत्र समयसार जनन करत,

परम सुद्धता होहु मुक्त ।

अनायास बनारसि दास कहि,

मिटौ सहज भ्रमकी अरुक्त ॥ ४ ॥

अर्थ—अत्र प्रथम जीवदार हा कौ विचार लिपियै है, अत्र जीव ही कवाशर है सो अपनी व्यग्रस्था सो तरवोयत रुहे है— शुद्ध निश्चै नयकरि अतीत अनागत वर्त्तमान काल विषे हौं शुद्ध चतना भई पिण्ड हौं, यही मेरा मूरति है, ऐसी है तौ शुद्ध स्वभाव छाडिकै विभाषी कैसै परिनयी है ? ताकी उत्तर-याते कमादिक पर है ताको इहा परिनमन भयो ताते ताकी जडता इहा विसफुरित भई, बाकी जडता फैली । शिष्य पूछै— ऐसी शब्ध स्वभाव हौं तौ पर परिनति कैसे ग्रही ? ताकी

उत्तर—मोहकर्म रागद्वेष रूप है सोई पर हेतु उत्कृष्ट कारण
चेतन आत्मापर-सेती रान्यौ, याकौ दृष्टान्त कहै—ज्यौ धरत
कौ रस पान करिक नर मनुष्य बहुत भाति नाचै, तैमै अनादिसं
मोह कारन पाइके चेतन अपनो मुदढ स्वभाय छाँडि विभाय
तामै मूर्छित ह्वै रक्षौ है । अउ समयमार कहिये आत्मा ताकै
वर्नन करत ही मुझको परम शुद्धता होहु । अपनै सुद
सुभावकी पहिचानि तै विभायता भागौ । अनायास कहतै बहुग्रन्
पढ़िवैरु प्रयास पिनाही बनारमीदास ज्ञाता कहै है । मह
कहते आत्माके मगि अनादि नाथि लगी भ्रमकी अस्झसं
मिथ्यातमे भगन तासौ मेरी मिटि जाउ ॥ ४ ॥

अथ आगम व्यवस्था बरनन ॥ मवैया ३१ सा ॥

निहचैमै रूप एक विवहारमे अनेक,

चाही नै विरोधमै जगत भरमायौ है

जगके त्रवाद नासिनेकौ जिन आगम है,

जामे स्यादवादानाम लच्छन सुहायौ है ।

दरसनमोह जाकौ गयो है सहजरूप,

आगम प्रवान ताकै

अनेसों अखडित अनृतन अनन्त तेज,

ऐसों पद पूरन तुग्न तिन्ह पायों है ॥ ५ ॥

अर्थ - जग या जीवकी शुद्धताता आगम ही तै पाह्ये तातै आगम कहियै विदुघान्त ताकी व्यवस्था वरनियै है- सगही आगम ज्ञान पन ग्रहीयै तौ निश्चयमे एक ही रूपही दीसै है, अरु व्यवहार नयकी अपेक्षात अनेक रूपमे है, पर या व्यवहार नयमे नयकौ विरोध बडो मौ है । काऊ आगम काऊ नय लिया है काऊ आगम काऊ नय मौ है, चाही नय विरोधमे जगत भरमाना है, अरु याही भरमत जगतमे वाद विवाद उपज्यो है, तातै जगतके विवाट नामिबेसों बीचम प्रमाणिक साक्षी रूज जिनेश्वर कौ आगम है, जा आगममे स्याद्वाद नाम लीनै सर्व पदार्थसौ लक्षणमगहीसै मुहावनौ है । स्यात् कहते कनही द्रव्यदृष्टि दपिये तौ ये नय साची, कन ही पयायदृष्टि दपियै ये नय साचो, एमो कहै । शिष्य पूछै- एमा स्याद्वाद सहित जिन आगम प्रमाण है तौ मगही कै हियैमे कर्षो आत नहो ? ताकौ उत्तर -जा पुस्तकौ सहज रूप कहते अनादि ही को मिथ्या दर्शन मोह गयो है ताकै हियैमे ये चिन आगम प्रमाणरूप आयो है । मिथ्यादर्शन मोहवारिक हीयैमे ये आ

नाहों । अब म्याद्वादकें जाननहारका फल कहै- जोई पद
 अनैमौ है, जैसे नय है तैसे तो नाही है, नय तो एकांश ग्राहो है
 तौ पूरन पद को ग्राहक नय कैसे होई या त अनैसो है अर
 पूर पद पनात अखडित है, अर ऐमो अनादि काल तें
 है ताते अनूतन रहते पुरान है, एमा अनत तेनवाला पूरन
 पद तिन ही तुरत पायो है ॥ ५ ॥

अथ निश्चै न्यग्रहार कथन ॥ सर्वैया २३ ॥

ज्यो नर कोऊ गिरे गिरिसो तिहि,

सोड हितू जो गहे दिढवाहीं ।

स्यो बुधको विवहार भलौ,

तवलौ जबलौ शिव प्रापति नाहों ॥

यद्यपि यो परवान तथापि,

सधे परमारथ चेतनमाहीं ।

जीव अव्यापक है परसो,

विवहारसो तौ परकी परछाहीं ॥ ६ ॥

अर्थ—अब आगम तौ निश्चय-नय अरु व्यग्रहार नय
 लिया कहै है शिष्य पूछे दोनोमि फाय सिद्धकारी नय

कौन है ? तार्क्यो उचर गुरु रुहै है—जैम कोऊ नर मनुष्य
 गिरिमो पहार मो गिरती होइ तिहि धानक वा पुरुषको गाढो
 बाह पकड़ि गटि रहै, माई पुरुष वा पुरुषको हित हित बछक
 जानिये । तैम पुधको, सो पण्डितको व्यवहार भलो तौली है
 जौली मित्र प्रापति नाहिं है । चौथा गुनधानार्त लैकरि चौदमा
 गुन धानामसे जैसी लौ करन "व्यवहारको भलो, सो आलम्बन
 है । यद्यपि कहते जाँप ऐसे व्यवहार आलम्बन प्रमान है,
 तथापि कहते तोपिण परमाथ ग्यान दर्शन चारित्रको शुद्ध-
 पनो चेतन भाहि ही सधैगो और ते न सधैगो । अरु जीव है
 सो अपन गुनम व्यापक है व्यापिरक्षो है । पर पर कहिये कर्मा-
 दिक जड जीव सत्ताते न्यार तामो जीव अव्यापक है । अरु
 व्यवहार है सुतो परहीको परिछाहीमै है । इतनै परको निश्रा-
 वित्ता व्यवहार न होइ, ताते व्यवहार तै निश्चय नय शुद्ध है । ६।

अथ अम्यग्दर्शन व्यवस्था ॥ सत्रैया ३१ सा ॥

शुद्धनय निहचै अकेलो आपु चिदानन्द,

अपने ही गुन परजायको गहतु है ।
 पूरन विग्यानघन सो है विवहारमाहि,

नव तत्त्वरूपी पच दर्बमें रहतु है ॥

च दर्व नव तत्त्व न्यारे जीव न्यारे ॥

सम्यक दरस यहै और न गहुरे ॥

सम्यक दरस जोई आत्म सरूप नहै ॥

मेरे घट प्रगट्यो बनारसी कहतु है ७ ॥

अर्थ—अब शुद्ध निश्चय नयने वडै ॥ ७ ॥ एते प्रगट
 ताकी व्यरथा कहते विशेषने जेना सौ कहै है—
 शुद्ध निश्चय नयकी अपेक्षा लीजै तां चिदानन्द रहते
 तनामई आनन्दमई जो पदार्थ है सो जना कथा लिये आपु
 फेलो ही है, अरु अपने ही ग्यानादिक गुणके पयायमा अग्रम्या
 वेद ताको गहै है अरु याही सामान्य ज्ञानमें ए-उ-यादिकुकी
 विशेष ज्ञान सौ विचार कहिये ताकी एतयन सौ कहेत पिट
 ती ये व्यरहार नय माहि दीसै है, अरु याही व्यरहार नयने
 तत्त्व लिये धमादिन पाच इत्थन एरु ठौर है अरु ऐसो
 ही विचारमें शुद्ध निश्चय नयने ए-उ-यादिकु न्यारेई लये,
 अरु नव-तत्त्व न्यारेई लये अ वां न्यारे ही लये । ऐसी
 द्रव्यदृष्टिते और कोऊ उपरिही जयय गहै ही नहीं थी ही
 सम्यक दर्शन कहिये अरु सो कुरह दर्शन है सोई आत्म सरूप

है अरु मोई आत्म मरूप मेरे घट पिंडमे प्रगट्यौ है । ऐसै
घनारसी दास कहै ॥ ७ ॥

अथ जीव द्रव्य व्यपस्था अग्निमा दृष्टान्त ॥ सर्वथा ३१ सा ॥
जैसे तृण काठ वास आरने इत्यादि और,

इंधन अनेक विधि पावकमे दहियै ।

आकृति विलोकित कहारै आग नानारूप,

दीसै एक दाहकसुभात्र जब गहिये ॥

तैसे नव तत्त्वमे भयो हे बहु भेषी जीव,

शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये ।

जाही छिन चेतना सकृत्तिकौ विचार कीजे,

ताही छिन अलग अभेदरूप लहिये ॥ ८ ॥

अर्थ—शिष्य बूझयो जीवद्रव्यतै नपतरु पच द्रव्य न्यारे
कैसे लपियै तत्र गुरु कहै है—जीव द्रव्यकी व्यपस्था अग्निकै
दृष्टात करि न्यारी है । जैसे पावक कहतें अग्निमे तृण काठ
वास और आरने कहत वनके उपलने इत्यादिक अनेक
विध कहतें घनी भातिके इंधनादि दहियै है, जालियै है । जैसी
जैसी इंधनकी आकृति कहत आकार तैसी तैसी आकृति लियै

अग्नि त्रिलोकियै ऐम त्रिलोकत तौ आगि है सौ नाना रूप कहतें नई नई भातिकी आगि कहतै, अरु सगही आगिकौ दाहक स्वभाव एरु है ऐसे जो गहियै तौ आगि सगही एक है । तमें नव तत्त्वनिमै जोव है सौ भाति भातिके भेप धारि रखौ है तातै जीव बहु बहु भेपो नाना प्रकारकौ भयो । यातै शुद्धरूप जीव है सौ और सौ मिश्रित भयो । तव यौही जीव अशुद्धरूप कहियै यह व्यग्रहार नय है । अरु जाही क्षणम नव तत्त्वनि विषै एरु चेतना सकृति विचारियौ ताही छिन विषै शुद्ध निश्चय नयके बलतें नव तत्त्वकौ प्रपच अमुरय रषिकै अलभरूप जीव है सौ सर्वत्र अभेदरूप पाइयै । ये शुद्ध निश्चय नय है ॥ ८ ॥

अथ जीव व्यग्रस्था वनवारी दृष्टात ॥ सर्वैया ३१ ॥

जैसे वनवारीमें कुधातुके मिलाप हेम,
 नाना भाति भयौ पै तथापि एक नाम हे ।
 कासकै कसौटी लीकु निरखै सराफ लाय,
 वानके प्रमान करि लेतु देतु दाम है ॥
 तैसे ही अनादि पुद्गलसौ सजोगी जीव,
 नव तत्त्वरूपमें अरूपी

दासैं उनमान सौ उदोतवान ठौर ठौर,

दूसरो न और एक आतमाई राम है ॥ ६ ॥

अर्थ—अब औरों ही शुद्ध जीव व्यवस्था दिपाइवैकी बनवारी कहतैं सुनारकी मूस ताको दृष्टात दिपावै है—जैसे सुनारको मूसमा है शुद्ध हेम गाल्यो अरु मोनातैं हीन धातु सौ कुधातु कहियै कौन कौन ? रूपा, ताबा, सीमा, जसद, कयोरे लोह याको न्यारी २ हेममें मिलाप भयो, तातैं न्यारी न्यारी भाति भई तौह सौ तौ एक नामैं कहावै जरु वा अशुद्ध सानाको सराफ होइ सौ कम्पौटी पापानयो कर्म अरु वाकी लीक निरपै, अरु वाकी लीक कृ परिष हेमकी वाकीको प्रमान करै, जैसे ये सौनो दसवानीको या ग्यारह वाकीको । ऐसे प्रमान करि वाकें दाम देतु है लेतु है । तैमैही अनादिकालम ये जीव पुअल द्रव्यतैं मयोगी भयो, तातैं इन जीव नवतर-रूप व्यवस्था धारी, गति पनै, स्थिति पनै, भाचन पनै, वर्चाना पनै, आधार पनै, पाचौ द्रव्यमय है । अरु नव तरुतरूप धारै पै यामैं कोऊ अरूपो महा तेजवत द्रव्य दीसैं सोतौ कोऊ प्रत्यक्ष प्रमान सौतौ ग्रहो न जाई है, जरु अनुमान सौ ग्रहियै है । शिष्य पूछै—कैमो अनुमान कीजै है ? गुरु कहै—ठौर ठौर

उद्योतमान, प्रकाशमान द्रव्य दीर्घ मौतो और द्रव्य कोऊ नाहो,
एक आत्माराज ही जानिये । एहू शुद्ध निश्चय नय सो
कशी ॥ ६ ॥

अथ—यनुम व्यसया स्य दृष्टात ॥ सर्वैया ३१ सा ॥
जैसे रविमण्डलके उदै महि-मण्डलमें,
आतप अटल तम पटल विलातु है ।
तैसे परमात्माको अनुभो रहत जोलो,
तोलो कहो दुविधा न कहो पच्छपात है ॥
नयको न लेस पखानको न परवेस,
निच्छेपके बसको विधुस होतु जातु है ।
जेजे वस्तु साधक हैं तेऊ तहां बाधक हैं,
ब्राको राग टोपकी दशाकी कौन वातु है ॥१०॥
अर्थ—अरु एसे सोजियेते जो परिचो पायो मो अनुभव
कहिये, ताकी व्यसया कैमो भाति है ये शिष्य रूह्यो ? तर
गुरु कहें ? सा सूर्यको दृष्टात दे करि याकी व्यसया कहै है—
जैसे सूर्य मण्डलके उदयते महि-मण्डलमें सो पृथ्वी मण्डलमें
आतप कहते न अटल होइ अरु तम पटः

पटल सी तौ विलय जायै, तैसही शुद्ध निश्चय नयके नकतै
 जौलौ अन्तरात्माके परमात्माके अनुभव रहतु है तौलौ कहा
 दुविधा, दुभाति न पाइयै, अरु पक्षपात न पाइयै । आप अपने
 मतके पक्षपात न रहै, अरु इहा नयकोट्ट लेश कहतै अश न
 पाट्यै । नयमौ तौ वस्तुको साधन कोजै । अरु अनुभव तौ
 सिद्ध वस्तुको होइ, तातै यहां अनुभव विषे नयको लेम नहीं ।
 अरु यहा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमानको प्रमेन नहीं ? प्रमान होइ तौ
 तौ असिद्धको साधन करै, सिद्धको कहा साधंगौ ? अरु नाम,
 स्थापना, द्रव्य, भाव ये चार निक्षेपके वमको विधिस ही भयो ।
 जैमै सूर्यके आतपतै अन्धकार उडि जाइ तैस इहा ये सत्र निलय
 जाइ या परमात्माके जे जे वस्तु नय प्रमान निक्षेपा साधक
 है तेऊ या परमात्माके अनुभव विषे बाधक भए । जौलौ नय
 प्रमाण निक्षेपाको परिवार होइ, तौलौ शुद्ध अनुभौव न होइ,
 गातै ये बाधक है बाकी रागद्वेषकी कौन बात कहिये ।
 एतौ इहा कहा पाइयै ॥ १० ॥

अथ—जीव न्यरस्था वचनद्वार ॥ अडिछ छद ॥

आदि अन्त पूरन सुभाव-सयुक्त है,

पर सरूप पर जोग-कल्पाना मुक्त है ।

सदा एक रस प्रगट कही है जैनमें,

शुद्धनयातम वस्तु विराजे वैनमें ॥ ११ ॥

अर्थ—अब अनुमगम शुद्ध स्वरूप जीव लप्यो, सौ तार्किक
व्यग्रथा वचन गोचर जैसे होइ तस कहै है—आदि त
निगोद, अन्त सौ सिद्ध अवस्था, इतने बीच चेतनारूप
अपने पूरन स्वभाव करि सयुक्त है। अरु या चेतनांत पर
स्वरूप सौ जड स्वरूप, अरु परजोग सौ पुद्गल सयोग, तार्किक
कल्पना विचारना ताहू करि मुक्त है। आदि अतलौ एही
स्वभावमें है। सदा एक चेतना रसमई प्रगट वस्तु है, सौ शुद्ध
निश्चय नयकौ आलम्बन लियो जैन आगममें कही, अरु जैसे
कही तैसी वचन व्यग्रहारमें ही विराजे ॥ ११ ॥

अथ हितोपदेश ॥ कवित्त छंद ॥

सद्गुरु कहै भव्य जीवनसौ,

तोरहु तुरत मोहकी जैल ।

समकित रूप गहौ अपने-गुन,

करहु शुद्ध अनुभवकौ, खेल ॥

पुद्गलपिड भाव रागादिक,

इन्हसौ नहीं तिहारौ मेल ।

ये जड प्रगट गुप्त तुम चेतन,

जैसे भिन्न तोय अरु तेल ॥ १२ ॥

अर्थ—अब ऐमोई स्वरूप बचनद्वारकर गुरु हितोपदेश रूप कहै है—मन्य जोरनि सौं सद्गुरु उपदेश देहै, अहो-मन्य-लौंरौ ! सताप होहु ! माहकौ बन्ध तौरो, अरु तुहारौ अपनी समकित गुन है सोई गहौ, अरु सोई गहिके अपने शुद्ध अनुभवहौ पेल करहु । अरु ये देविमें सरीर है, पुद्गल पिंड है, अरु कर्महू पुद्गल पिंड है, अरु या पुद्गल पिंडके राग द्वेषादिक भाव सौं स्वभाव है, इन वस्तुमें तुहारौ भिलाप नहीं छै, जु एतौ वस्तु जड है अरु प्रगट है अरु तुम्ह चेतन ही, अरु गुप्त ही, तब वा पुद्गल पिंडकी अरु तुम्हारा भिन्नताहो ठहरी । जैसे तोय कहत पानी अरु तेल ये भिन्न है ॥ १२ ॥

अथ—ग्याता बिलास ॥ सवैया ३१ सा ॥

कोऊ बुद्धिवत नर निरस्य सरीर-घर,
भेदग्यान दृष्टिसौ विचारै वस्तु वासतौ ।
अतीत अनागत वरतमान मोहरस,
भोम्यौ चिदानद लखै बधमें बिलाम्तौ ॥

बधकौ बीडारि महा मोहकौ सुभाउ डारि,

आत्म कौ ध्यान करै देखै पर गासतौ ।

करम कलक-पक रहित प्रगट रूप,

अचल अबाधित विलोकै देव सासतौ ॥१३॥

अर्थ—अब ऐमो उपदेश सुनिकै पुरुष ग्याता भयो, ताकी

विलास कहै है—कोऊ बुद्धिवत सम्पद्दृष्टी मनुष्य है मो
अपने सरोरकौ घर करि निरपै अरु जड चेतनकौ भिन्न-भिन्न
स्वभाव जनिगै सु भेदग्यान रहियै । तामै दृष्टि देकरि वस्तुकौ
वासता कहै तै भाव स्वभाव मोई विचारै, अतीत कालविषै,
अनागत काल विषै, वत्तमान-काल विषै मोह-रसमै भोग्यौ थकौ
कर्म-बधमें विलास करतौ, अपने चिदानंद परमात्माको लपै ।
ता पोछै क्रमि क्रमि बधकौ बिडार तौ ही जाइ । अरु मोहकौ
स्वभाव डारतौ हो जाइ । ऐसौ कार्य करि आपनै आत्मा ही कौ
ध्यान करै, अरु अनुभवमै प्रकाश-रूप देपौ, तब करम कलक
सोई पक कहतै कर्म ता करिरहित प्रकट-रूप अचक अबाधित,
सो सर्व बाधा रहित, ऐमो शासतदेव आपहा आप देपै ॥१३॥

अर्थ—गुनगुनी अभेद कथन न्यवस्था ॥मंत्रिया २३ सा ॥

शुद्ध-नयात्म आत्मकौ,

अनुभूति विज्ञान-विभूति है सोई ।

वस्तु विचारत एक पदार्थ,

नामके भेद कहानत होई ॥

यो सरवग सदा लपि आपुहि,

आतम ध्यान करै जत्र कोई ।

भेटि अशुद्ध विभाव दसा तत्र,

सिद्ध स्वरूपकी प्रापति होई ॥१४॥

अर्थ—गुद्ध अनुभव हैं मो गुनहै अरु आत्मा गुनी है ।

अत्र या गुन गुनीको जैमै अभेद स्वरूप है तैमी अभेद अवस्था कहि दिखारि है—गुद्ध नयातम कहतें शुद्ध निर्द्वय स्वरूप आत्माको अनुभूति कहत अनुभव हैं, मोई विज्ञान विभूति कहत विशेष-रूप ग्यान सपदा है । इहा आत्मा गुनी है, अनुभव ग्यान गुन है । अत्र दोनू वस्तु कौन है ? ऐमै जो विचार कीनै तौ एक ही पदार्थ भाषै है । आत्मा पदार्थ भाषै है अरु एक ही पदार्थमें यो गुन गुनी ऐमै दानू नाम भेद कहा है । ऐमै सरवाग कहत सर्वप्रकारे आपुहो कौ गुन गुनी-रूप लपिके जत्र कोऊ आतम ध्यान करै तत्र अगुद्ध विभाव दशामें यहू याको गुन अरु यहू इन्हको गुनी ऐसी विभाव दशा भेटिके सिद्ध स्वरूपकी प्रापति होई ॥ १४ ॥

अर्थ—ज्ञाता चितवन स्वरूप कथन ॥ मंत्रया ३१ सा ॥

अपने ही गुन परजाय सौ प्रवाहरूप,

परिन यौ तिहूँ कालअपने आधार सौ ।

अन्तर वाहर-परकाशवान एकरस,

खिन्नता न गहै भिन्न रहे भौ-विकारसौ ॥

चेतना के रस सरवग भरि रह्यौ जीव,

जैसे लौन काकर भख्यौ है रस खार सौ ।

पूरन सरूप श्रति उज्जल विग्यान धन,

भोको होहु प्रगट विसैस निरवारसौ ॥१५॥

अर्थ—अन्य या ही बात ज्ञाता-लोक जैमें मनमें चिन्तन, तं सोई स्वरूप रहै है—यहु जो कोऊ आत्मा कहायै सो तौ विग्यान धन है, विशेष ग्यान मई है, सो तीनु हो-अतीत, अनागत, वरतमान काल निपै प्रवाद रूप करि, सौ अपिठिन धारयै, अपने ही गुन पर्याय करि, सौ अपने ही ग्यानादिक गुनके अवस्था भेदतामौ, अरु अपने आधारमौ परके आश्रय निना परिनयो रहै है । अरु या विग्यान-धनकी ऐसी महिमा है तासौ माहि वाहिर एकर रस, सौ एकर चेतना रस लिये पर-

काशपान यो आपुकी जानेसौ अन्तर प्रकाश, बाहर चन्तुको
 जानैसौ बाहिर प्रकाश । ऐसै कार्यमें खिन्नता गहै नहीं । अरु
 भय विकारमों भी भिन्न रहै । सरवाग कहतै सर्पप्रदेशनि विषै
 चेतनाके-रससौ जीव भर रहौ है । याको दृष्टात कहै है—जैसे
 लौनको कारुर अरु छार लौन रसमों भरि रही है, तैसे चेतना-
 रससौ जीव भस्यौ है । ऐमौ पूरन मरूपसौ अखडित, अति हो
 उज्जल, अँसों विग्यान वन पूर्णै-वर्यानी तैसौ मोहू प्रगट हो
 हु । विशेष निवारमों । सो समस्त विभाव दसाको निवारन
 करिकै । ऐमौ ग्याता मनमै अरु याही मे थिर होइ ॥ १५ ॥

अर्थ—द्रव्य पयाय अभेद कथन व्यवस्था ॥ कवित्त-छंद

जाहि धुव धर्म कर्मछय लच्छन,

सिद्धि समाधि साधि पद सोई ।

सुधोपयोग जोग महि मडित,

साधक ताहि कहै सब कोई ॥

यो परतच्छ परोक्ष रूपसौ,

साधक साधि अवस्था दोई ।

दुहौ को एक ग्यान सचय करि,

सेरै सिव बछिक थिर होई ॥१६॥

अर्थ—यहा विग्यान घन है सो तो द्रव्य है अस्म्याता कहां से पयाय है । पं विग्यान घन अरु ज्ञाता येही हैं, तातें द्रव्य पर्याय को अमेद दिखाने है—जहा सकल कर्मको क्षय लिये ऐसी जहा नृव धर्म कहता निश्चल स्वभाव है ऐसी कोऊ सिद्धि समाधि कहतें सिद्ध एते होनें सो तो पद साध्य कहायै । अरु शुद्ध उपयोग लोनी थकी, अरु मन रचन काम, जाग मै मडित थकी तोर्थकर माधु प्रमुख पर्याय लिये रहे है, ताकी सबकोऊ साधक रहे हैं । ऐसी साधकपनी प्रत्यक्ष स्वरूप हैं । अरु साध्यपनी परोक्षस्वरूप हैं । ऐमें दोनु अगस्था लिये एरु विज्ञान घन है ये मिर बाउरुमी मोक्षकी बाहनदार दुहुँको सो माधक साध्य दोनु ही को एक ज्ञान सचय करि सेगी ? सो दोनु पदमें विज्ञान-घन एरु है । ऐमें याको सेगामे थिर होठ रहे ॥ १६ ॥

अथ—द्रव्यगुण पर्याय भेद व्ययस्था कथन ॥रुचित्त उद॥
दरसन ग्यान चरन त्रिगुनात्म,

समल रूप कहिये विवहार ।
निहचै दृष्टि एकरस चेतन,
भेदरहित अविचल अविचार ॥

सम्पन्न दरस प्रमान उभै नय,

निर्मल समल एक ही वार ।

यो समकाल जीवकी परिनति,

कहैं जिने द गहै गनधार ॥ १७ ॥

अर्थ—शिष्य पूछै । सामी ऐसी तुम अभेद व्यवस्था कही
तौ यहु भेद व्यवस्था कौन नयके बलते कहत हौ, गुरु कहै—
व्यवहार नयते द्रव्य गुण पर्यायक भेद व्यवस्था है । दर्शन, ज्ञान
चरण, कहते चरित्र ये तीनों जात्मा हीके गुण हैं, या मरूप
सौ जू व्यवहार कहिये सौ समल रूप है, अरु इहि निश्चय
दृष्टि देखत ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र एक चेतना ग्यानई देखियै
है । अरु चेतना ही चतन हैं, तातेँ भेद रहित अविचल अवि-
कार ये निर्मल रूप है उभै नय कहतेँ ये दौनु ही नय, निश्चय
अरु व्यवहार नय सम्पन्न दशार्थ प्रमान है । नय है मोती
अभिप्राय विशेष है, तातेँ एकही वार अवक्तव्य रूप निर्मल
समल रूप जानियै । ऐसे समकाल ही निर्मल समलनी थकी
परिनति हूँ रही सौ जिनदव ही कहै, अरु गनधरदेव ही
गहै ॥ १७ ॥

अथ-व्यवहार कथन ॥ दोहरा ॥

एकरूप आत्म द्रव, ग्यान चरन दृग तीन ।
भेदभाव परिनामनौ, विवहारै सु मलीन ॥ १८ ॥

अर्थ—अत्र ग्यान दर्शन चारित्रकौ त्रिकहै सौ व्यवहार नय है ये कहै सौ—आत्म द्रव्य है सौ एकरूप है, एकरूता लियै है । ग्यानदर्शन चारित्र ये तौ तीन है, ये तीनों ही भेद-भाव परिनाम है, तत्र एकरू ही विषै तीन भेद भए, तातैं ये व्यवहार नयतै समलरूप भयो ॥ १८ ॥

अथ निश्चै स्वरूप कथन ॥ दोहरा ॥

जदपि समल विवहारसौ, पर्यय-सकति अनेक ।
तदपि नियत नय देखियै, शुद्ध निरजन एक ॥ १९ ॥

अर्थ—अत्र निश्चै नय करिकै निर्मल स्वरूपमें हो घ्याइवी मलौ है ये कहै है—जो पै व्यवहार नयकी अपेक्षामें आत्मामें अनेक शक्ति अनेक पर्याय पाड्यै, तातैं समल है, तो निश्चै नयकी अपेक्षातैं शुद्ध निरजन एक ही देखियै ॥ १९ ॥

अथ-शुद्ध कथन ॥ दोहरा ॥

एक देखियै जानियै, रमि रहियै इक ठौर ।
समल विमल न विचारियै, यहै सिद्धि नहिं और ॥ २० ॥

अर्थ—अब शुद्ध-रूपहा उपादय है यदु कहै है—शुद्ध चेतनामई, ऐसै एकरूप ही दखिये ? यौ तौ दर्शन एकरूप ही जानिये ! सौ ग्यान । याही मैं रमि रहिबौ ए चारित्र । नयकी अपेक्षा करि समल विमल रूप विचारिये ही नाही, याही सिद्धि कहिये । और स्वरूपमै सिद्धि नही ॥ २० ॥

अथ अनुभव प्रशसा ॥ सत्रया ३१ सा ॥

जाके पद सोहत सुल्छन अनन्त ग्यान,

विमल त्रिकाशवत ज्योति लहलही है ।

यद्यपि त्रिविध रूप विहारमे तथापि

एकता न तजे यौ नियत अग कहौ है ॥

सो है जोव कैसेहो जुगतिके सदीव ताके,

ध्यान करिवैकौ मेरी मनसा उमही है ।

जातै अविचल रिद्धि होतु और भांति सिद्धि,

नाहौ नाहौ नाहौ यामें धोखो नाहौ सही है ॥२१॥

अर्थ—अब एमै स्वरूपकी अनुभव विर रहिबौ दुर्लभ है । पै ज्ञाताकी मनोरथ कहै है—जाके पद रहत जाके विपै अनन्त ज्ञानरूप स्वलक्षण कहत वरुको लक्षण सोहतु है ।

अरु प्रेमल विकाशवत ज्योति कहत आपकौ परकौ जानवौ,
 याही ज्योति जामैं लहलही है । अरु व्यवहारमे यद्यपि कहतै
 त्रिविधरूप है—बाह्यात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा
 त्रिविध रूप है । नियत अग कहतें निश्चै नयकी अपेक्षातें
 एकता तजै नाहीं, सौ एकरूप ही कखौ । सोतौ ऐसो पदार्थ
 ही है । अब कैसे हौ जुगति करिकै ? सौ जुगति जामैं कहैगौ
 करिकै सदीव कहत निरन्तर ताके ध्यान करिवैको मेरी हू
 नसा उम ही रही है । जाहोके ध्यान तें अपनी ऋद्धि ज्ञान,
 दर्शन, चारित्र रूप अविचल होतु है । याही भाति सिद्धि है ।
 अरु और भाति सौ सिद्धि नाहीं नाहीं नाहीं, यामैं धोखौ
 नाहीं, सु झूठ नाहीं, याही बात सहो है ॥ २१ ॥

अथ ज्ञाता की व्यग्रस्था बरनन ॥ सूरैया २३ सा ॥

कै अपनौ पद आपु सभारत,

कै गुरुके मुखकी सुनि वानी ।

भेद विग्यान जग्यौ जिन्हिकै,

प्रगटी सुविवेक कला रजधानी ॥

भाव अनत भए प्रतिबिम्बित,

जीवन मोख, दशा ठहरानी

ते नर दपन ज्यौ अविकार,

रहै थिररूप सदा सुखदानो ॥२२॥

अथ—भेद विज्ञान तं याकौ अनुभव होइ, तातें मोक्ष होइ इहु कहै है—कै तो अपनौ पद, अपनौ निरालय स्वरूप आपही सभारि लै है । आपुही तं ग्रथी भेद करि आपुकों पहिचानै है । कै तो गुरुके मुखको-बानी सुनिकै अपनपौ सभारै है । अरु जिनकै घटमें जड चेतनको भेद निग्यान जाग्यौ, तातै स्वविवेक कला कहतैं अपने चेतन स्वरूपकी न्यारीही कला, ताकी राजधानी, सो ताकौ ईश्वरपनौ जाकै घटमें प्रगट्यौ । अरु याकी राजधानीमें अनत भाव पदार्थ प्रतिबिम्ब भए—ताके ग्यायक भए, यातौ जीवन ही मोक्ष दशा ठहरानी, मुक्त स्वरूप ही भए । अरु यामैं अनत भाव प्रतिबिम्बित भए, तौहू समलरूप न भए, तातै वे मनुष्य दर्पन, आरीसा ज्यौ विकार रहित भए, थिररूप भए, सबके सुखदायक भए ॥२२॥

अथ भेदनिग्यान प्रशंसा कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

याही वर्तमान समै भव्यनिकौ मिटौ मोह,

लग्यौ है अनादिकौ पग्यौ है कर्म मलसौ ।

उदौ करौ भेदज्ञान महा रुचिकी निधान,
 उरकौ उजारौ भारी न्यारौ दुद दलसौ ॥
 जाते थिर रहै अनुभौ विलान गहै फिरि,
 कवहौ अपन पौ न कहै पुद्गल सौ ।
 यहै करतूति यौ जुदाई करै जगत सौ,
 पावक ज्यौ भिन्न करै कचन उपल सौ ॥२३॥

अर्थ अत्र भेद विग्यानकी उत्पत्ती अरु भेद विग्यानकी
 महिमा कहै है—याही वर्तमान काल विषै भव्य-लोगनिकी
 मोह भ्रम मिटि जायौ । जोई मोह-कर्म आत्माके अनादि ह्रीं
 कौ लग्यौ है, अरु कर्म मलसौ पग्यौ है, सो व्यापि रखी है । अत्र
 मोह भ्रम मिटियैतैं, भेदविग्यान है सो उदौ करौ, उदै होहु
 पैं भेदविग्यान कैमो है सो कहै है । महारुचिकी निधान है
 या भेदविग्यानमें महारुचि पाइयै है । अत्र महारुचिकी कारव
 है । या भेद विग्यानतैं भारी कहतैं गरिष्ट उज्यारौ होतु है
 अत्र उजियारौकैसौ ? दुद-दलसौ, सो घाम धूम सौ न्यारौ
 जातैं सा भेद विग्यानतैं दुद-दशा सौ छटि थिरतामैं रहै । अत्र
 आपत्तेके अत्रपौके विलान गहै । आपत्तेके अत्रपौके अत्रपौके

फिरि या भेदविग्यान पायैतै मरीर कर्मादिक पुद्गल रूपी जानिकै, याको अपनपौ न कहै, अत्मा रूप न कहै । याहै करवृत्तिसौ याही भेदविग्यानकी क्रिया यौही जगत सौ जुदाई करै, मौ पाच द्रव्यसौ जुदाई करै । इहा दृष्टात दिखावै है— जैमो पापक कहतै अगनि है मौ उपल कहियै माटी पापान तासौ कचन भिन्न करै ऐसे ॥२३॥

अथ परमार्थ शिक्षा कथन पर ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

बनारसी कहै भैया भव्य सुनौ मेरी सीख,
 कैहौ भाति कैसे होकै ऐसौ काजु कीजियै ।
 एकहौं मुहूरत भिख्यातकौ विधुस होइ,
 ग्यानकौ जगाइ अस हंस खोजि लीजियै ॥
 बाहीको विचार बाकौ ध्यान यहै कौतूहल,
 योही भरि जनम परमरस पीजियै ।
 तजि भव-वासकौ विलास सविकाररूप,
 ॥ अन्तकरि मोहको अनतकाल जोजियै ॥२४॥

अर्थ—अब शुद्ध जीव द्रव्यमें रहिवौ यौही परमाथ है याको शिक्षादि है—बनारसीदास कहै है—अहो ! भैया भव्य, मेरी

सोख सुनौ ! कहाँ भाँति करिऊँ, कैम होऊँ, कहतै कोऊ द्रव्य,
 धेन, काल, भाव, पायऊँ, ऐसो कार्य कोजै । सो कार्य कमो ?
 यहू कहै है । एरु महुरतकाल माहि मिथ्यात मोहकौ मिध्वम
 होइ, अरु ग्यानकौ जम जगाइ लीजै, अरु सोह हस, ऐसी
 ध्वनि करितौ हस, सौ आत्मा खोज लोजै । पीछे चाहीकौ
 लक्षण विचार कोजै । पीछे चाको पहिचानिकौ चाहीकौ ध्यान
 कीजै । अरु चाको कला खोजनौ, कौतूहल खेल करिबौ करियै ।
 योही जनम भरिसो जाग्रजनोप परम रस पीजै । याही भाँतितै
 सपिकार रूपसौ फैलि रह्यौ । ऐसी भव्य बासकौ विलास सौ
 समार विलास ताकौ तजिक अरु मोहकौ अन्त करिकै अनत-
 काल लौ जीजियै । इतने चाही त्रिधि सिद्धि होइयै ॥२४॥

अथ तीर्थकरको स्तुति बाह्यरूप कथन ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

जाको देह-दुतिसौ दसौ दिसा पवित्र भई,
 जाके तेज आगै सब तेजवत रुकै है ।
 जाको रूप निरखि थकित महा रूपवंत,
 जाकी वपु-वाससौ सुवास और लुकै हैं ॥
 जाको दिव्य-धुनि सुनि श्रवणको सुख होतु,
 जाके तन लच्छन अनेक आइ हुकै हैं ।

तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुन,
निहचै निरखि सुद्ध चेतनसौ चुकै है ॥२५॥

अर्थ अब चेतन महिमावान भयें पुद्गल भी महिमानान्ही।
यातें कवीश्वर वाहरूप पुद्गलकी माहिमा दिखायती परमात्मा
भी महिमा कहै हैं—जाकी देह द्युति ऐसी परी जातें टस
दिसा पवित्र भई, सो सोमायमान भई, अरु जाके तेज आ
सबही तेजयत छिप रहै, इतने सब दक्षता मद तन भए। उ
जाको रूप निरखिकै महारूपयत पचानुचरवामी देवता वि
यकित ग्हे रहै, जाकी सरार वाससो, और सुवास वस्तु
लुव गई। जासी दिव्यधुनि सुनिकै श्रवणकी सुख होतु
भव्य श्रमच्य सबही को वानी मीठी लागै। अरु जाको
शरीरमें अनेक शुभ लक्षण आन दुकै है। ऐसै श्री जिनराज
है, पै याको एतें गुन कहै सो अशुद्ध व्यवहार नय आश्रय ति
कहै। पै निश्चै दृष्टि देखतये जो गुन कहै सो शुद्ध चेतनको
सो न्यारै ही कहै ॥२५॥

अथ जिन स्तुति व्यवहाररूप ॥ पुन' सर्वैया ३१ सा ॥
जामें बालपनौ तरुनापौ बृद्धपनौ नाहि,
आयु परजत महारूप महाबलु

विनाही जतन जाके तनमें अनेक गुन,
 अतिसै-विराजमान काया निरमलु है ॥
 जैसे विनु पवन समुद्र अविचलरूप,
 तैसे जाको मन अरु आसन अचल है ।
 एसौ जिनराज जयवत होउ जगतमें,
 जाकी सुभगति महा मुगतिकी फलु है ॥२६॥

अर्थ—अब बहुरौ हू व्यग्रहार नय लियो । जिन स्तुति करै
 है—जामें आठ परजत कहै, जनमसो लेकर सम्पूर्ण आउमालो,
 महारूप अरु महाबल ममान हो रहै । पुनि बालपनौ, तरुन
 पनौ, वृद्धपनौ ये तीनों अवस्था भेद, याकं रूपमें उलमं भेद न
 पावै । विना ही जतन जाके सहज सुभाव ही में जाके तनमें
 अनेक गुन आन वसै, अरु जाके दिग ३४ अतिशय गुन विराज-
 मान हुई रहै । अरु जाकी काया, प्रस्नेद रहित निर्मल रहै है, जैसे
 पानकी शकार विना समुद्र अचल रूप होइ रहै, तैसे ताकी मन
 अचल है । इहा गति अपेक्षा विना आसन अचल रह्यो है । ये
 निरंतर अचल ही आसन ये अमभरें है । ऐसौ जिनराज देव
 है सौ जगतमें जयवत होउ । जाकी सुभगति कहतें जु मली
 भक्ति करियै, सौ तौ, महा मुक्ति फल देनहारी है ॥ २६॥

अथ यथार्थ कथन ॥ दोहरा ॥

जिन पद नहीं शरीर कौ, जिनपद चेतनमाँहि ।

जिनवर्नन कठु और हे, यह जिनवर्नन नाहि ॥२७॥

अथ—व्यग्रहार स्तुति करिकै सत्यार्थ बात कहँ है—ये जु जिन नाम है सो जीव त्रिपाकी है । पै पुद्गल त्रिपाकी नाहो । ताँतै जिन पद शरीर का नाहीं । जिनपद चेतन ही कौ हैं । यातै जिनेश्वरकी स्तुति कछु और कहाँ है । पयहुती पूर्ब जिनेश्वर की स्तुति कडा, सो जिन स्तुति नाहीं है ॥ २७ ॥

अथ जड चेतन भिन्नभावदृष्टात कथन ॥ मवैया ३१ सा ॥

ऊचे ऊचे गढके कगूरे यौ विराजित है,

मानौ नभलोक लीलियेकी दात दियो है ।

सोहै चहूँ और उपवन को सघनताई,

घेरा करि मानौ भूमिलोक घेरि लियो है ॥

गहरी गभीर खाई ताकी उपमा बनाई,

नोचौ करि आनन पाताल जल पियो है ।

ऐसौ है नगर यामें नृपकौ न अंग कोऊ,

यो ही चिदानन्द सौ शरीर भिन्न कीयो है ॥२८॥

अर्थ—यहा सरीर जड है अरु आत्मा चेतन है ये दोनु
 भाग भिन्न स्वभावमें है, याको दृष्ट्यात कहै है—जैमै काहूगढके
 ऊँच ऊँचै कगुरे ऐमै विराजत हैं । इहा उत्प्रेक्षा कपोश्वर करै,
 ये गढके कागुरे नही है ? मानौ इहां नगर मै नभलोक कहत
 स्वर्गलोक ताके लीलिकौ, माँ लोलिकौ दात दियै है ।
 स्वर्गलोकको मानौ गिलि जाडगौ । अरु याकै चद्र और माँ
 चारुतरफली उपनयी सो रागपारीकी मघनताई ऐसी मोहि
 रही है । इहा हों कपोश्वर उत्प्रेक्षा करै । मानौ भूमि
 लोक सो मनुष्य लोक, ताको घेराकरि समस्त
 घेरी लीनी है, इतने ममस्त मनुष्यलोक, इहा हो घेरा
 राख्यो है । अरु या नगरके चोक फेर गहरी गम्भीर, साँ
 बहुत ऊँची खाई बनी, ताकी उपमा ये बने है । मानौ या
 नगर नै नोची आनन करि पाताल जल पियौ । इतने पातालकी
 पानी सोभा खोसि लीनी । ऐसै तीनोंलोक जीतै । ऐसै
 नगरको वर्नन क्रियौ । पँ या नगर वर्ननमें नृप-राजाके अङ्गकी
 वर्नन कोऊ नाहीं । इतने नगरको वर्नन क्रियौ । राजाको
 वर्नन भयो नहीं । या चिदानन्दसाँ सरीर भिन्न क्रियौ है ॥२८॥

अथ—तीर्थंकरकी स्तुति स्वरूपकथन ॥ मध्या ३१ सा ॥
 जामैं लोकालोकके सुभाव प्रतिभासे सब,
 जागी ग्यान सकृति विमल जैसी आरम्बी ।
 दर्शन उद्योत लियो अतराय अन्त कोयो,
 गयो महा मोह भयो परम महारिती ॥
 सन्यासी सहज जोगी जोगसों उदासी जामैं,
 प्रकृति पचासी लगि रही जरि छारसी ।
 सोहै घट मदिरमें चेतन प्रगट रूप,
 ऐसी जिनराज ताहि बढत बनारसी ॥२६॥

अर्थ—अत्र तीर्थंकर पद लिख्यं ब्रुवस्तु है ताके स्वरूपको वर्णन करै है—जामैं लोक अरु अलोकके स्वभासो पद द्रव्य भाव प्रतिभासे रहै । गेमी ग्यानकी सक्ति निर्मल जगी है । जसैं आरम्बीमें भाव पदार्थ भासैं तैसी भाति जाके ग्यानमें मगही भासै है, ये ८ ज्ञानावरण गयो अरु दर्शनावरण गये तैं केवल दर्शन उद्योत भयो । अरु अन्तराय कर्मको नास कीनौ, अरु अन्त वीथधारी भयो, महामोह कर्म सोळ गयो, परम उत्कृष्ट महाऋषि भयो, यथा रघात चारिसो सन्यास ताकी धरनहार

ग्यान दर्शन चारित्र्य ये सहज जोग ताकौ ४० मन १ वचन
 २ वाय ३ जोगसौ उदासी भए । अरु अघातिक ४ कर्मनि
 की ८५ प्रकृति रहो है सौऊ जरजरिक ठारसी लगि रही
 है । अरु जाके घट माहि रमै, चेतन देव प्रगट ही सोभि
 रघौ है । प्रत्यक्षरूपी भयौ । ऐसौ श्रीजिनराजदेव ताहि वना-
 रसी दाम बदतु है । ए निश्चै स्तुति कहियँ ॥ २६ ॥

अथ—निश्चै व्यवहार कथन ॥ कवित्त छद् ॥

तनु चेतन विवहार एकसे,
 निहचै भिन्न-भिन्न है दोइ ।

तनु अस्तुति विवहार जीवथुति,
 नियत दृष्टि मिथ्या थुति सोइ ॥

जिनसो जीव जीव सो जिनवर,
 तन जिन एक न मानै कोइ ।

ता कारन तनकी अस्तुति सौ
 जिनवरकी अस्तुति नहि होइ ॥ ३० ॥

अर्थ—ऐम् शुद्ध चेतनकी स्तुतिकौ दृष्टात दिखायक अरु
 निश्चै व्यवहार कौ निर्णय करै है—तनु कहतै शरीर अरु

चेतन कहिये आत्मासौ दोउ व्यवहारमें एरुसे है । अरु निश्चै
दृष्टि देखिये तौ दोनु भिन्न भिन्न है । यातें तनुकी अस्तुति
करतौ जीवकी स्तुति करै सौ व्यवहार है । अरु नियतदृष्टि रहतैं
निश्चै देखत मो तौ मिथ्या स्तुति है । ये जु जिन पद कर्म है,
सौ जीव विपाकी हैं, पै पुद्गल विपाकी नाहीं, तातें इहा जु जिन
कहायै सा जीव हैं, अरु जीव सौऊ जिन हैं । पै तनु जिन एक
करन मानिये ताहोके कारन तनको अस्तुति किया जिनरकी
अस्तुति होइ नाही ॥३०॥

अथ—वस्तु स्वरूप कथन दृष्टात करि दिढाइतु हैं
॥ सवैया २३ सा ॥

ज्यौ चिरकाल गढी बसुवा भयि,
भूरि महा निधि अन्तर गूम्भी ।
कोऊ उखारि धरै महि उपरि
जे दृगवत तिन्है सब सूम्भी ॥
त्यौ यह आतमकी अनुभूति,
पयो जड भाव अनादि अरुम्भी ।
ने जुगतागम साधि कही गुरु,
लच्छन वेदि विचच्छन वूम्भी ॥ ३१ ॥

अर्थ—शिष्य पूछे ? ऐसी अनुपम महिमा धारक जोर दमा सरीरमें कैम पाइय । तन गुरु है मौ दृष्टात दिखायके न्यारी ही अदभुतरूप वस्तु या शरीरमें हो दिवार है—जैसे कोऊ भूरि महानिधि कहते धनीमी लक्ष्मी धन कालला धरती मीतरि गडो रही, सौ अन्तरगुप्त रही । पीछे कोऊ जो निधानकाँ उखारिके धरतो ऊपर धरै, तन जे दृगन्त है सौ नेत्रत है तिन्ह सब स्रजन लागी । तैमै यहू आन्माकाँ अनुभूति कहते अनुभवसौ अनादिकालत जडभाषमें, सो पुद्गलद्रव्य अरुज्ञ रही है, सोई अनुभूति नय जुगति, सौ नय सहित आगम सिद्धान्त, ताते ये गुरु माधु कही, साधिये लायक कहो । तन विचक्षण पुरुष लक्षण वृत्तिके सन जानी ॥ ३१ ॥

अथ मेदग्यान स्वरूप कथन धोत्रीके दृष्टात ॥ मंत्रया ३१सा ॥

जैसे कोऊ जन गर्यो धोत्रीके सदन तिन्ह, पहिरथो परायो वस्त्र मेरो मानि गद्यो है ।

धनी देखि कद्यो भैया यहू तो हमारो वस्त्र, चीन्हो पहिचान सही त्याग भाउ लद्यो है ॥

तैसे ही अनादि पुद्गलसो, सयोगो जीव, सगके समत्वसो विभाज तामे वद्यो है ।

भेदग्यान भयो जब आपो पर जान्यो तब,
न्यारो परभावसो' स्वभाव निज गह्यो है ॥३२॥

अर्थ—अब ज्ञातको भेद पाये उपादेय वस्तुको उपायको उपादान करिवो आवै ताके परि धोरीको दृष्टात दिपाये है—जैसे कोऊ मनुष्य है सु धोरीके सदन कहता घरा गयो, अरु पराया नम्र भूलिमे लीनो, अरु पहिरयो, पै अपने मनमे यह वस्त्र मेरो ही है ऐसो मानि रह्यो है। इतनेमे वा वस्त्रको धना मिल्यो। देखिक कह्यो, भैया ! जू तुम जो वस्त्र पहिरयो है सोतो वस्त्र हमारो है। तब बाहून अपनी पहिचानि निरखी, निरखत परायो ही चोन्हो। तही सो तबही वा वस्त्रको त्याग भाग लख्यो। इतने वस्त्र छाड्यो। तेसही जीव अनादि-कालत पुदगल सयागी भयो, इतने शरीर कर्मसो सयोगो जीव अनादि कालको है, यातै सगके ममचसो विभाव तामे उलटै भावम रह्यो रह्यो। अरु जब जड चेतनकी भिन्न ताको ग्यान भयो तब आपनोऊ स्वरूप जान्यो, अरु परकोऊ स्वरूप जायो, अरु जानिके पर भावसो न्यारो भयो, अरु अपनो स्वरूप गह्यो ॥३२॥

अथ निश्चै स्वरूप कथन ॥ आटिछ छद ॥

कहै विचच्छन पुरुष सदा में एक हौं ।

अपने रससों भन्चौ आपनो टेक हौं ॥

मोहकर्म मम नाहि नाहि भ्रमकूप है ।

शुद्ध चेतना सिधु हमारौ रूप है ॥३३॥

अर्थ निश्चै अपनी स्वरूप पायो, तब ग्याता एमें विचारि
चा लागौ सो कहै है—विचच्छन पुरुष कहै हैं—हो मदा
एकच न्यै रहौ हौं । और मेरी सदाई कोऊ नाहों । अपनी
चेतना रस सों मर्यो, आपने टेकसों, सो अपने आधारमो
रहौ हौं, मेरी औरको आश्रय नाहों । अरु जो भाति भातिकी
मोह-कर्म प्रपच है सो मेरी स्वरूप नाहीं है । अरु भ्रमरूप कूप
सोऊ मेरी स्वरूप नाहों है । अरु शुद्ध चेतनाकी सिधु कहतै
समुद्र सो हमारौ रूप है ॥३३॥

अथ ग्यान व्यवस्था कथन ॥ सपैया ३१ सा ॥

तत्त्वकी प्रतीतिसौ लर्यौ है निजपरगुन,

दृग ज्ञान चरन त्रिविधि परिनयौ है ।

विसद विवेक आयी आछौ विसराम पायो,
आपुहीमें आपनौ सहारो सोधि लयो है ॥

कहत बनारसी गहत पुस्तपारथको,
सहज सुभावसौ विभाव मिटि गयो है ॥

पन्नाके पत्राये जैसे कचन विमल होतु,
तैसे शुद्ध चेतन, प्रकाशरूप भयो है ॥३४॥

अर्थ अत्र ऐसं अपने स्वरूप जानिवैतै कैमी अरथा भई
सो कहै है—एसी जीव तत्वकी प्रतीति पाई तातैं निज गुन
ग्यानादिक अरु परगुणसौ और द्रव्यके गुन गति, स्थिति, अव-
गाट, वर्तना वणादिक ये सब लखै, लखिकै दृग कहतै दर्शन,
अरु ग्यान, चरन कहतै चारित्र ये तीनों गुनमें परिनिमि रहौ ।
विसद कहतै निर्मल विवेक आयी, तब आछौ विसराम पायो
थिरता पाई । आपुही में अपनौ सहारो सौ सहज भाव सोऊ
सोधिलीनौ । इहा बनारसीदाम कहै है । तब पुस्तपारथ सौ
आत्मरूपी अर्थ ताकी गहिकै, सहज स्वभाव ही में राग द्वेष
मोहरूपी विभाव अनादि कालको हौतौ 'मिटि गयो' । इहा
दृष्टांत कहै है— पन्ना कहियै पाकी इटाया पोहा तामैं

पकाओ छतौ जैसे कचन निर्मल स्वरूप हूँ प्रकाशरूप
भयो ॥३४॥

अथ वस्तु स्वरूप कथन पात्रके दृष्टात ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

जैसे कोऊ पातुर वनाय वस्त्र आभरन,
आवति अखारे निसि आडौ पट करिके ।

दुहु ओर दीवटि सभारि पट दूरि कीजे,
सकल सभाके लोक देखे दृष्टि धरिके ॥

तैसे ग्यान सागर सिध्याति ग्रन्थि भेदि करि,
उमग्यौ प्रगट रह्यो तिहु लोक भरिके ।

ऐसो उपदेश मुनि चाहियै जगत जीव,
शुद्धता सभारै जग जालसौ निकरिके ॥३५॥

अथे—अथ ये विभान दृष्टत अपनी ऋद्धि आप प्रगट पावै
ता परि पात्र नटवीकौ दृष्टात कहै है—जैसे कोऊ नटिनी पात्र
है सो आडौ पट परीछि करिके अपनं आभरन वस्त्र वनाय,
वनाइके रात्रिके समयमें अखारमं जाइ ठाटी रहै पं आडे
पटवै न देखियै । अथ यामे दोनु तरफ दीवटि (ममाल)
जगाइके परीछि पट दूर कीजे, तत्र ममगत सभाके लोक वाकौ

दृष्टि धरिकै आभायमान प्रगट दरु । तैसेँ सो ग्यानको सागर
 सो आत्मा मिथ्यात रूप आडे पटत प्रहन्न रहौ है, सो काह
 समय मिथ्या ग्रन्थि भेटि कणि प्रगट्यौ--उमग्ये । सो ग्यान
 समुद्र तिहो लोठ भगिँ रहौ । तीनों ही लोक यामेँ भामि
 रहै । अरु गुरु बहे, अहो जगतवामी जीव ! मेँ जुपूर्व उपदेश
 दीनाँ सो तुझेँ सुनिऊँ जगनाल साँ निकरिकै अपनी शुद्धता
 समारियै ॥ ३५ ॥ इति श्री समयसार नाटक की जीवद्वार
 निरूपन बालबोध रूप सम्पूर्ण भयो ॥

इति जीवाधिकार समाप्त ।

अर्जुनिक द्वार

(२)

अथ अजीवद्वार वणन करै हें ॥ दोहरा ॥

जीव तत्र अधिकार यहू, कही प्रगट समुझाइ ।

अव अधिकार अजीवकौ, सुनौ चतुर मन लाइ ॥१॥

अर्थ—जीवतत्र जैमै स्वरूपसौं है ताकौ यहू अधिकार तैसे
हो स्वरूपसौं लक्षण गुन बनाईके प्रकट समुझाइ कही । अव
दूगरा अजीव द्वारमै अजीवकौ अधिकार मुख्यपनौ कही । अहो
चतुर लोगौ ! चित्त लगाईके सुनियौ ॥ १॥

अथ ग्यानकी व्यवस्था कथन ॥सर्गया ३१ सा ॥

परम प्रतीति उपजाय गनधरकीसी,

अतर अनादिकी विभावता विदारी है ।

भेद ज्ञान दृष्टि सौं त्रिवेककी सकृति साधि,

चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है

वारमकौ नासकरि अनुभौ अभ्यास करि,

हियैमें हरखि निज उद्धता सभारी है।

अन्नराय नाल गयौ शुद्ध-परगास भयौ,

ग्यानकौ विलास ताकौ ब्रदना हमारी है ॥२॥

अर्थ—अब अजीबकी भी जानिगौ ग्यान ही तै होइ अरु या प्रथमै अभिधेय ग्यान ही है तातें सम्पूर्ण ग्यानकी अवस्था कहै है—जिनग्यानत प्रथम ही सौ भव्य लोगनिके आत्मानै मनधरकी नाई तत्त्वकी परम प्रतीति उपजाई, अरु समय-स्तकाल ही अत्तरात्मानै अन्तर जो अनादिकी मिभावता कहता भूढ़ता सौऊ बिदारी, अरु चेतन ए दोऊ भिन्न है ऐमौ भेदग्यान प्रगथ्यौ, ताकी दृष्टिसौ विवेककी सकति साधी। इतने न्यारै-न्यारै गुन परथाय जानै, अरु न्यायै-न्यारै जनिरै चेतन अरु अचेतन जडताकी दशा निरगारी, सो ठीरु कीनी, ता पीछै गुण श्रेणी धरिऊँ छिनछिन कर्मकी निर्जरा बढती करनै लागी, सो करिकै अनुभव अभ्यास कीनी। इतने सत्य प्रत्ययमें गँठौ, अरु हियैमें हर्ष पायौ, अरु अपनी मक्ति उत्कट कीनी। या कर्म हीत अत्तराय-कर्म भाग्यौ अरु शुद्धरूप, इतने केवल रूप

प्रकाश भयो । ऐसो कोऊ क्रमि क्रमि करि ग्यानको विलास
जाग्यो, ताको हमरो बदना है ॥ २ ॥

अथ परमार्थ शिखा कथन ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

भैया जगवासी तू उदासी हूँ कै जगतसौ,
एक छय महीना उपदेश मेरो मानु रे ।
और सकल्प विकल्पके विकार तजि,
बैठिकै एकत मन एक ठौर आनु रे ॥
नेरो घट सरतामे तूही हे कमल ताको,
तूही मधुकर हूँ सुवास पहिचानु रे ।
प्रापति न भ्रू है कठू ऐसो तू विचारतु हैं,
सही ह्वै हे प्रापति सरूप यो हो जानु रे ॥३॥

अर्थ—शिष्य पूछ—स्वामी जैसो तुम ग्यानविलास कह्यो
सोतौ तैसोई, पै इहु पाड्यो सुमकल । तापरि गुरु परमार्थको
शिक्षा दे हँ । अहो जगतनामो भैया ! तू जगतमो उदामी
होऊ । जगत कहियै भ्रमभ्रमण, अरु ताको कारण शब्द, रूप
रस, गंध, फरस एक आचारग स्रके बचनते
तिन्हते उदासीतता धरि. अरु एक लै महोनालों

मेरी उपदेश सुनिके मानु । इहा छे महीना कहै सौ उपलक्षण
 मात्र है, तातै ये नियम नाहीं । अरु आर्च गौद्र ध्यानत अग्यान
 दशातै सकल्प विकल्प बहुत उठै हैं, तातै आत्मा में प्रकार
 उपजै । तातै ताके प्रकार तजि देहु । अरु एकान्त आसन
 बैठि, अरु मनको एक ठौर प्राणायामसौ ल्याउ । तेरौ घट कहता
 शरीर सोई सरोवर देखि, तामें एक कमल उज्जल देखि ।
 सोई कमल तू ही है अरु तामें तू ही उज्जल रूप लिया मधुक
 अमर होऊ । याके सहस्र दलमें विलास करहु । ये पिण्डस
 ध्यान लगाऊ । इतने कार्य क्रिये हो अपने स्वरूपकी प्राप्ति
 न होइगी ऐसौ तू ऊब ही विचारैगौ सौ जिन विचारियो, ऐस
 ही प्राणायामतें कमल कोप खुलै अपने स्वरूपकी प्राप्ति हो
 यौही जानियौ, याही भाति ज्ञान खुलै ॥ ३ ॥

अथ वस्तु व्यवस्था चरनन ॥ दोहरा ॥

चेतनमत अनत गुन, सहित सु आत्मराम ।

यातै अनमिल और सत, पुद्गलके परिनाम ॥४॥

अर्थ—अत जीव अनीव एम्से है रहै मो न्यारै ल
 करि दिखावै हैं—चेतनान्त होइ अरु अनन्त गुन सहित प
 है सौंही आत्माराम जानियै अरु जो इन लक्षणतै अना
 कहतै मिलै नाहीं सौ सत और परिनाम पुद्गलके जानने ॥

अथ अनुभव प्रशसा ॥ कपित्त-छन्द ॥

जब चेतन सभारि निज पौरुष,
 निरखै निज दृगसौ निज मर्म ।
 सब सुखरूप विमल अविनासिक,
 जानै जगत शिरोमणि धर्म ॥
 अनुभौ करै शुद्ध चेतनकौ,
 रमै स्वभाव वमै सब कर्म ।
 यह त्रिधि सधै मुगतिकौ मारग,
 अरु समीप आवै शिव मर्म ॥५॥

अर्थ—अब ऐसी पहिचान अनुभव बिना न होइ, ताते अनुभवकी प्रशसा करै है—इह जो चेतन है सो जर अपनी पौरुष कहतै पराक्रम सभारै, सभारिकै अपनी दृष्टि करि अपनी मर्म—चेतनपनौ निरखै तब अपनी धर्म कहतै स्वभाव सुखरूप पनौ, अविनामी पनौ, ऐसै जगत शिरोमनिपनौ सहज रूपी जानै । यौही अनुभव कहतै नि सदेह यथार्थ ज्ञान है, सोई चेतनकौ शुद्ध करै । अरु योंह। अनुभव है सो अपने स्वभावम रमै. अरु सब कर्म दूरि करै । याही भाति अनुभव मौ मुक्ति

मार्ग सिद्ध होइ, अरु सिवमर्म कहतैं मोक्षकौ सुख ममीप
अवि ॥ ५ ॥

अथ अनुभर प्रशंसा ॥ दोहरा ॥

वरनादिक रागादि बहु, रूप हमारौ नाहि ।

एक वस्त्र नहि दूसरौ, दीसै अनुभव माहि ॥६॥

अर्थ—अब याही अनुभरतैं चेतन विपै अपनौ अस्तित्व साधिरुं, परकौ नामित्त्व साधै है—या सरीर विपै जो वरनादिक कहियै वण, गंध, रस, रूप, स्पर्श । रागादिक कहतैं राग, द्वय विमोह है सो हमारौ आत्मरूप नाही । अरु या अनुभव विपै एरु प्रज्ञ कहतैं अपनौ एरु जानपनाहीकौ रूप देखै, पै दूसरौ रूप अपनौ न देखै ॥ ६ ॥

अथ वस्तु विचार ॥ दोहरा ॥

ग्राडो कहिये कनककौ, कनक म्यान सयोग ।

न्यारौ निरखत म्यानुसौ, लोह कहै सब लोग ॥७॥

अथ—अब जीव अजीव एक क्षेत्राग्राही भए, सो न्यारे कर्म लखारै, तापरि घटात कहै हैं—जैसे कोऊ मोनहरी खडग कहियै हैं, तहा सोनैकौ जोगती तहनाल मुहनाल कडी करिक म्यान परि संयोग है, अरु यह खडग म्यान सौं निका-

लक्ष्म्यारौ देखिये तो लाहको सडग, एमै सत्र लोग कहै ।
 ऐसी दृष्टात अन्तरात्मा माझिनी जानिये ॥ ७ ॥

अथ निश्चै व्यवहार रूप वस्तु विचार कथन ॥ दोहरा ॥

वरनादिक पुद्गल दसा, धरै जीव बहुरूप ।

वस्तु विचारत करमसौं, भिन्न एक चिद्रूप ॥८॥

अर्थ—अत्र प्रायः आत्मा अरु अन्तरात्मा कह्यै सौ व्यव-
 हार नय मो है, अरु इनहामें परमात्मा मो तो निश्चै नयमो
 है, ऐसो वस्तुको विचार कहिये ममुझाय है—परनादि कहत
 चण, गंध, रस, स्पर्श, ये पुद्गल दशा कहत पुद्गल स्वभाव है,
 मो ताको जीव नई नई भाति धरै है, तात जीव बहुरूपधारी
 नाम कह्यै है । अरु कर्म है सोऊ पुद्गल है । पै वस्तुको
 विचार करत ये जु कम है सा तो अनोय है, अरु चिद्रूप
 चिदानंद है, सोतो मर्मत्र एक स्वरूपी, या अजोत्तम है, भिन्न
 ही है ॥ ८ ॥

अथ दृष्टात कथन ॥ दोहरा ॥

ज्यो घट कहिये घोत्रको, घटको, रूप न घोर ।

त्यो वरनादिक नामसो, जडता लहै न जीव ॥९॥

अर्थ—अत्र न्यवहारको दृष्टात दिगायै है—जैसे

माटाकौ घरो रहियै । पै जैसे घगकौ रूप माटी है तैसे घराकौ रूप धोव नाडी । तैसे र्ण, रस, गंध, स्पर्श, प्रमुख नाम कर्म अजीव रूप हैं, जड है, ताके मयोग में जीव जडपनौ लहे नाही ॥ ६ ॥

अथ चेतनकौ साक्षात् स्वरूप कथन ॥ दोहरा ॥

निराबाध चेतन अलस्य, जानै सहज स्वकीव ।

अचल अनादि अनत नित, प्रगट जगतमें जीव ॥ १० ॥

अर्थ—अत्र प्रत्यक्षपनौ निरालौ चेतनकौ ही स्वभाव कहै ।—जाका काहु भाति खडन न होइ, तात निराबाध, ऐसौ चेतन पुरुष इन्द्रिय ग्यानतै लखौ न जाइ, तात अलस्य कहै । अरु जो स्वकीय कहत अपनौ सहज स्वभाव ग्यातापनौ, ताकी आपुही जानै । पै और ग्यानातरत न जानै, ऐसौ अचल स्वरूप लियै, आदि रहित, अन्त रहित, नित्य, शाश्वत ऐसौ जीव जगतमें प्रत्यक्ष प्रमान है ॥ १० ॥

अथ अनुभव त्रिधान कथन ॥ सर्वैया ॥ ३१ मा

रूप रसगत मूरतिक एक पुद्गल,

रूप विनु और यौ अजीव दर्व दुगा है ।

चारि है अमूरतिक जीव भो अमूरतिक,
 याही तँ अमूरतिक-वस्तु ध्यान मुधा है ॥
 औरसौ न कवहौ प्रगटै आपु आपुहीसौं,
 ऐसौ थिर चेतन-सुभाउ सुद्ध सुधा है ।
 चेतनकौ अनुभौ आराधै जग तेई जीव,
 जिन्हकै अखड रस चाखिवेकी छुधा है ॥११॥

अर्थ—अब जीव अपनी अनुभव आपुही कर, प मीमा-
 सरु, नैयायिक, प्रगुल जैसे परतै कटै है तैसे नाही, ये कहै
 हैं—रूपवत रसवत जैसे कहे तैसे गधवत, परसवत येह लक्षण
 जानै । ऐसौ मूर्तिक, सो मूर्तिवत एक पुट्टल द्रव्य अजीव
 जानिगै । अरु ये रूपादिक विना और अमूर्तिक हैं, ऐम अजीव
 द्रव्य दुधा कहतै दोइ प्रकारकौ हैं । अथ या अजीव द्रव्यमें
 धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये चार अमूर्तिक है, अरु जीव
 द्रव्य भी अमूर्तिक है । यातँ कोऊ अमूर्तिक वस्तुकौ ध्यान
 किये मुक्ति है ऐसौ कहै । सोऊ मुधा कहतै मूर्सपनौ है ।
 यातँ कोऊ और धर्मकौ जालम्बन लियै, आत्म द्रव्य प्रगट न
 होइ । अरु आपु आपुहि सौ प्रगट होइ ऐमै स्वभाउ
 है, सुधा कहतै निदोष चितनको

प्रगट करे हैं, जैसे जा जगतम चेतना स्वभावहीतै चैतनको
 अनुभौ पहतै यथार्थ ग्यान आराधै, मोई शुद्ध जीव पदके
 आराधरु है ॥ ११ ॥

अथ मूर्ति वर्नन ॥ सर्ग्या २३ सा ॥

चेतन जीव अजीव अचेतन,
 लच्छन भेद उभे पद न्यारै ।
 सम्यक्दृष्टि उदोत विचच्छन,
 भिन्न लखै लखिकै निरवारै ॥
 जे जगमाहि अनादि अखडित,
 मोह महामदके मतवारै,
 ते जड चेतन एक कहै,

तिन्हकी फिरि टेक टरे नहि टारै ॥१२॥

अर्थ—इहां अ गुष्ट प्रमान, तदुल प्रमान इत्यादि कहिके
 जायको मूर्तिकु वापै है, वाको मूढता दिग्यारै है—जीव है सो
 चेतना लक्षण सो है । अरु अचेतन लक्षण सो है इतने जडता
 लक्षण सो है ऐसे लक्षण भेदतौ उभे पद कहता दोनु पदार्थ
 न्यारै है । पै तिन्हके घटमें समकित दृष्टिको उजियारौ भयो,

सोई निचच्छन पुरुष इन्हकौ भिन्न लखै । अरु भिन्न भिन्न
 लखिकै, ये दोऊ जीव निरधार करि राखै । अरु जे जगतमाहि
 अनादि-कालके अपण्डित हैं, मूख हैं, अरु मोह महामदती
 मतवारै हैं, तेई लोक जड चेतनकौ एक कहै हैं । अरु जीवकौ
 मूर्तिक मानै, सो यौ मिथ्या दृष्टिकौ कारन है । बाकी टक,
 टारीही टरै नाही ॥ १२ ॥

अथ ग्याता प्रिलाम कथन ॥ मंत्रैया २३ सा ॥

या घटमें भ्रमरूप अनादि,
 विसाल महा अविवेक अखारौ ।
 ता सहि और स्वरूप न दीसत,
 पुगल नृत्य करै अति भारौ ॥
 फेरित भेख दिखावत कौतुरु,
 सौजि लिये वरनादि पसारौ ।
 मोहसौ श्रिन्न जुदौ जड सौ,
 चिनमूरति नाटक देखन हारौ ॥१३

अर्थ—अपु पुगल अजीवमें जीव बिलस न्यारौ ही है,
 पं अविवेकी न जानै, ग्यानी होइसो जानै इहु कहै है—याही

पिण्ड धनादि कालकौ भ्रमरूप, यो मिथ्यारूप प्रिताल कहत
 त्रिस्तावत महाअग्निवेरुको अकारौ मडि रह्यो है । तस
 अकारमें और कौऊ शुद्ध सुरूप सोती नाहीं दोसत, अरु पुढगल
 द्रव्य है साई अति भारौ कहतै अति बडो नित्य करि रह्यो है ।
 याही अग्निवेरुकी आग्यात अजीव पुढगल द्रव्य है सोई एकेंद्रि-
 यादिनौ भेष करि करि गणादिककी पमारौ जु है सोई सौन कहत
 सामग्री लिये कौतुरु दिखाय रह्यो है । अत्र इहा अग्निवेरु रूप
 माहमा जु भिन्न है, पुढगल नड माहीजु जुग्यो है, सोई चिन्मूर्तिक
 कहतै चेतन-राजा सुती इहा नाटककौ देखनहार है ॥१३॥

अथ ग्यान कथन ॥ सौर्या ३१ सा ॥

जैसे करवत एक काठ त्रिभिन्न खड करे,
 जैसे राजहस निखारै दूध जलकौ ।
 तैसे भेदग्यान निज भेदक सकति सेती,
 भिन्न भिन्न करे चिदानन्द पुढगलकौ ॥
 अरधिकौ धारै मनपर्येकी अवस्था पावै,
 उमगिके आनै परमावधिके थलकौ ।
 याही भाति पूरन स्वरूपकौ उदोतधरै,
 करै प्रतिविम्बित पदारथ सकलकौ ॥१४॥

अर्थ—अब जो जीव अजीवकी एकरता मिथ्या ग्यानतै भामा ही, सौतौ ग्यान नद्वैही। अब भिन्नभिन्न रूप कहियै यह कहै है—जैसे एक काठको काटिके करयति है सो दो दो खण्ड करै। अरु दूध जल एकमेक भए, ताको राजहम जैसे निरखार जुदानुदा करि दिखायै, तैसे काहूके भव्यत्व परिपारत भेदग्यान प्रगटै। सौतौ अपनो भेद सकृतिमौ चिदानन्द अरु पुद्गल एकमेकमे जानै हैं, ताको भिन्न करै। अरु यौही भेदग्यान अपनै धरौपमम माफक अरनी अवधिकौ धारै, इतने अवधि-ज्ञान रूप पर्याय पावै। अब यौहो भेदज्ञान, याहोते विशुद्ध भयो मनपगयकी अरस्था पावै। अरु याहीतै विशुद्ध भयो परमावधिलौ उमगि जावै। याही भाति नद्वैतौ वदतौ भदज्ञान सोई पूर्ण स्वरूप उद्यौतमत धारै। इतने केवल अरस्था धारै। अरु सकल पदार्थकी प्रतिबिम्बित करै ॥ १४ ॥

इति श्री ममयमार नाटकको अजीवद्वार करि ग्रन्थको अर्थ प्रालोचरूप सम्पूर्ण भयो ॥

इति अजीवद्वार समाप्त ॥

कर्त्ता कर्म क्रियाद्वार ।

(१)

प्रतिना ॥ दोहरा ॥

यह अजीव अधिकारकौ प्रगट वखान्यौ मर्म ।

अव सुन जीव अजीवके, करता क्रिया कर्म ॥१॥

अव अय यहु द्वार अजीवकौ समुझाडकै कहौ, अरु याकौ मर्म जो रहस्य ये अजीव पदार्थ जानिके जीव पदार्थ न्यारौ ही जानिबौ, सोई रखानौ । अजीव जीवकै विषे कृत्ता, कर्म, क्रिया कौ विचार, अरु अजीव विषेहू कृत्ता, कर्म, क्रियाकौ विचार कहौ, गुरु कहै—ह शिष्य ! तू मुनि ॥१॥

अथ भेद महातम वरनन ॥ सपैया ३१ सा ॥

प्रथम अग्यानी जीव कहै में सदोव एक,

दूसरौ न और में ही करना करमकौ ।

अन्तर त्रिवेक आयौ आपा पर भेट पायौ,

भयौ बोध गयो मिटि भारत भरमकौ ॥

भासै छहौं दरवके गुन परजाय सन,
 नासै दुख लख्यौ सुख पूरन परमकौ ।
 करमको करतार मान्यौ पुदगल-पिड,
 आपु करतार भयौ आतम धरमको ॥२॥

अर्थ—अत्र कर्त्तापनं मे जीवकी मिथ्यादृष्टि है सो भेदग्यानसौं ही छूटै, तातै भेदग्यानको माहात्म कहै है— प्रथम तैं आग्यानी जीव है ओ अपना सरूपकी भूलिमें यौही कहै । सदीव कहतैं निरतर करमकौ कर्त्ता एरु में ही है, और कौह नाही । ऐमें जोवकी अपेशालै करि कर्मकौ कत्ता होतु । अत्र घट माहि विवेक आयौ, भेदग्यान पायौ, तातै आप वस्तु अपर वस्तुकौ भेद पायौ, तातै बोधक भयौ सो उज्जल ग्यान पायौ । अरु भर्मकौ भारत, सो मिथ्यातकौ खेल सोतौ भेटि गयी । अब भर्म भाजत ही छहौं दरके गुन पर्याय आत्मा विपै ही भापै । द्रव्यके जू सहचारी रहै तेतौ गुण कहियै अरु छिनछिन जगस्था भेदमो पर्याय कहियै, सो सर्व भासै, या भासनमें सब दुख भागे अरु पूण पुरुष जो कहानै ताकौ मुख लख्यौ, तातै कर्मकौ कर्त्ता पुदगल पिण्ड मान्यौ । आप जीव कर्मकौ अकर्त्ता भयौ, अरु आत्मिक धर्मकौ सो

ज्ञायकता, वेदकृता, चेतनता इत्यादिक घर्म स्वभावकौ आप ही कर्ता भयो । इतनै कर्मकौ तौ अकर्ता अरु अपनै स्वभावकै कता इहु ठहरायो ॥ २ ॥

पुन सवैया ३१ सा ॥

जाहो समै जीव देह बुद्धिकौ विकार तजै,
 वेदत सरूप निज भेदत भ्रमकौ
 महा प्रचण्ड मति मण्डन अखड रस,
 अनुभौ अभ्यासि परगासत परमकौ ।
 ताहो समै घटमें न रहै विपरीत भाव,
 जैसे तम नासै भानु प्रगटि धरमकौ
 ऐसी दवा आवै जव साधक कहावै तव,
 करता हूँ कैसे करै पुगल करमकौ ॥३॥

अर्थ—औरु याही बातकौ डिढाव करै है—बिन प्रस्तावमें जीव है सौ श्रेणीकौ आरोहण करै, अप्रमत्तता पा देह बुद्धिकौ विकार तजै । इतनै बाह्यात्माकौ आप आ जानियौ, सु ये विकार छाँडै, अरु अपनौ स्वरूप न्यारौ ही वे अरु मर्मकौ भेटै, महा प्रचण्ड मतिमंडन कहतै महा ची

बुद्धिका सोमाकौ करनहार । अरु जाकौ अखड रस है ।
 पूर्णरम स्वाद है । ऐसो जौ शुद्धात्मकौ अनुभव, ताकौ अभ्यास
 करि अन्तै परमात्माकौ प्रकाश करै, ताहो प्रस्ताव घटपिडमें
 विपरीत श्राव रहै नाहीं । अह बुद्धि लिये जो अकर्त्ताकौ कर्त्ता
 करि माने कैसै । सौ दृष्टाव करिसो कहै है—जैसे भानुकौ
 धर्म कहतै तोछन तेज प्रगटत तम अन्धकार नासै तैसे ऐसो
 अप्रमत्त दशा जगही आनै तनतौ आत्म स्वभापकौ साधक
 भयो । ताहो समैकौ कर्त्ता कैसै होइ ? अरु पुद्गल रूपी कर्म-
 काँ कैसै करै ! याकौ इहा उपयोग है नहीं ॥ ३ ॥

अथ ग्यान सामर्थ वरनन ॥ समैया ३१ सा ॥

जगमें अनादिकौ अग्यानी कहै मेरो कर्म,
 करता में याकौ किरियाकौ प्रतिपाखी है ।

अन्तर सुमति भासी जोगसौ भयो उदासी,
 ममता मिटाइ परजाय बुद्धि नाखी है ।

निरभे सुभाव लीनौ अनुभौके रस भीनौ,
 कीनौ विवहार दृष्टि निहचैमे राखी है ।

भरमकी डोरी तोरी धरमकी भयो धोरी,
परमसौ प्रीति जोरी कर्मको सारो है ॥४॥

अर्थ—प्रथम आत्माको कर्मरुत्ता मनके जु अर्था मानिये सुती ग्यानकी समथाई तें होइ, यहु कहै है—इहि समारमें अनादि कालको जीव जाग्यानी हो है । यहु शुभ अशुभ कर्म भेरी कियो है । या कर्मको कर्चामें है । क्रियाको प्रतिपासी कहत कर्मको क्रियाको पक्षी भयो रहै । पीछे अन्तर कहतें घन्माहि सुमति भासी, अरु मन वचन कायधोगसौ उदासी भयो, ये योग पररूप जानै, तातें या योगको ममता मिटाई । अरु पर्णाय बुद्धिसौ मन, वचन, काय जोगतें जो बुद्धि भेद सोऊ नासि दीनी, अरु द्रव्य बुद्धि रासी, अरु द्रव्य बुद्धि राखिअै आत्माको जो निर्भय स्वभाव है सोऊ गहि लीनी, अरु या स्वभावको जो अनुभव रस तामें भनीनी, सो भगनहूँ रखौ । अरु सब व्यवहार कीनी सो व्यवहारमें प्रवर्त्ति, पै दृष्टि कहतें श्रद्धामौ तौ निश्चै मै राखो । ऐसै करत भग्मकी डोरी तोरि दीनी, सो छद्मस्थपनी छोडि दीनी । अरु आत्मिक धर्मसौँ अपने स्वभावकी धोरी कहतें धरन हार भयो । परमसौ प्रीति

जोरी, सो सिद्धपदसौं प्रीति राखो । कर्मकी माखो भयो ।
पुद्गल कर्मकाँ करै ताकी साखकी भरनहार भयो ॥ ४ ॥

अथ भेद ग्यानको समर्थपनी यहु कथन ॥ मरैया ३१ सा ॥

जैसे जो द्रव ताके तेसे गुन पर जाय,
ताहूमौ मिलत पे मिले न काहू आनसौं ।
जीव वस्तु चेतन करम जड जाति भेद,
अमिल मिलाप ज्यौं नितव जुरै कानसौं ॥
ऐसौ जु विवेक जाके हिरटे प्रगट भयो,
ताको भ्रम गयो ज्यो तिमिर भागै भानसौ ।
सोई जोव करमको करता सो दीसै पै,
अकरता कह्यो है सुद्धताके परमानसौं ॥५॥

अर्थ—शिष्य पूछे—चेतन अचेतन एक क्षरमें रहै है, अरु
कर्म करै है तो तहा चेतनको कर्मको अरुचा कैमै मानियै !
गुरु कहै है—ग्यान सगतिमौ अरुचा मानियै । जो जैसे
द्रव्य है ताके तैसे गुन पराय है सो ताहू द्रव्यसौं मिलित है,
पे और काहू द्रव्य सौं नाहीं मिलित है । जैसे कोऊ म्निग्ध
गुन लियै घृतादिके द्रव्य हैं, अरु ताके पर्याय म्निग्ध

त्वाले द्रव्यमौ मिलै, पै रूक्ष गुनगले सों न मिलें । तैसे ही
 जोर वन्दु है सो चेतन जाति हैं । कर्म है सो जड जाति
 । एमें जाति होकी भेद है, तातें चेतन जडकी अभिल
 मलाप है, सो काहू जुगतिमौ मिलाप नाहीं । जैसे कटिभागमौ
 चिे पश्चिम प्रदेश नितन है सो ऊपरि कानसौ कहा मिलै ।
 सो गुन पयायकी विभेक जाके हियमें प्रगट भयो है ताकै
 हयमें पूर्वजो भ्रम उपज्यो है, सो भ्रम गयो । इहा दृष्टात
 त्हे है-जैसे भानु-सूर्यके उदयतें तिमिर-अन्धकार भागै, तैसे
 भागौ । सोई, ऐमौ विवेकगारी जीव है सो कर्मको कर्तातौ
 दीसै है, पै शुद्धता जो अपन द्रव्यकी गुन परिणति प्रमाणतें
 जीव कर्मको अरुत्ता ही करौ ॥ ५ ॥

अथ जीव पुदगलक्षण भेद कथन ॥ छप्पय-छद ॥

जीव ग्यान गुन सहित, आपगुन परगुन-ज्ञायक ।

आपा परगुन लखें नाहि पुदल इहि लायक ॥

जीवरूप चिद्रूप सहज, पुदल अचेत जड ।

जीव अमूरति मूरतीक, अन्तर बड ॥

जय लघु न होइ अनुभौ प्रगट,

तन लघु मिथ्यामति लमै ।

तार जीव जड करमकौ,

सुबुधि विकास यहु भ्रम नसो ॥६॥

अर्थ—अब जीव पुदगलके लक्षण भेद बताइके याही बात करै है—जीव है सोतौ ग्यान गुन सयुक्त है । अरु आप-गुनकौ भी ग्यायक है । अरु परके गुनकौ भी ग्यायक है । याही गुनभेद करिके आपकौ भी लखै, अरु परको भी । ऐसी कला शक्ति लायक पुदगल कौसौ हौ ? यने नाहीं । वकौ स्वरूप सोतौ चिद्रूप कहतै चतनारूपी ह । अरु पुदगल सोतौ सहज भाव अचेतनागत है, यातै जड है । औरु ही उत्तर है । जोलौ शुद्ध चेतनसौ अनुभव प्रगट न होइ तोलौतौ ध्या मति लसै सो दीप्तिगत है । पं जड स्वरूपी कर्मकौ कर्त्ता न है सो भ्रम बुद्धि है, सो यहु अनादि कालकौ भ्रम, बुद्धि विकास भयै ही भाजै ॥ ६ ॥

अथ कर्त्ता कर्म क्रिया म्वरूप कथन ॥ दोहरा ॥

करता परिनामो द्रव्य, करम रूप परिनाम ।

किरिया परजैको फिरनि, वस्तु एकत्रय नाम ॥७॥

अर्थ—अब कर्त्ताकौ कहिये, कर्मकौ कहिये, क्रिया कहिये, व तीनों स्वरूप कहै है—रूपांतरकौ भजैसौ ।

ऐमें द्रव्यमो कर्त्ता कहियै । रूपांतर होतौ सौ परिनाम यौ कर्म
स्वरूप कहियै । अरु पर्यायको क्रमक्रम फिरिनामौ क्रिया
कहियै । ये कर्त्ता, कर्म, क्रिया, नाम तीन है अरु वस्तु एक
ही है ॥ ७ ॥

अथ कर्त्ता कर्म क्रिया एकत्व कथन ॥ दोहरा ॥

करता कर्म क्रिया करै, क्रिया कर्म करतार
नाउ भेद बहु विधि भयो, वस्तु एक निरधार ॥८॥

अर्थ—कर्त्ता, कर्म, क्रिया ये कहिये मैं नाउ भिन्न-भिन्न है,
पै वस्तु एक ही है इहु कहै है कर्त्ता तबही कहायै जन कर्मकी
क्रिया करै, अरु क्रिया हू तबही कहायै जन कर्म करै, ऐसै नाउ
भेद भाति-भातिसौ भयो पै करियै ही तैं कर्त्ता, करिवैही तैं
कर्म, करिवैही तैं क्रिया, सौ एकही वस्तु है ॥ ८ ॥

अथ कर्त्ता कर्म क्रिया प्रति स्थापना ॥ दोहरा ॥

एक कर्म करतव्यता, करै न करता दोइ ।

दुधा द्रव सत्ता सु तौ, एक भाव क्यों होइ ॥९॥

अर्थ—अन एक कर्म क्रिया पणिकर्त्ता एकही होइ या
स्थापना करै है—ये बात प्रसिद्ध है । एक कर्मकी कर्त्तव्यता
कहतै क्रियासौ एकही होइ । अरु ताकी कर्त्ताहू एक होइ, पै

दोड़ रुत्ता एक क्रिया न करै । इहा चेतन द्रव्य सत्ता, अरु
पुदगल द्रव्य सत्ता सु तौ दुधा कहतैं दोड न्यारी भाति हैं तातैं
एक मारक कर्म कैसै होइ ॥ ६ ॥

अथ कर्त्ता कर्म क्रिया विवरण ॥ सबैया ३१ सा ॥

एक परिनामनिके न करता दरव दोइ,

दोइ परिनाम एक दरव न धरतु है ।

एक करतूति दोइ दरव कबहो न करै,

दोइ करतूति एक दरव न करतु है ॥

जीव पुदगल एरु खेल-अवगाही दोऊ,

अपने अपने रूप कोउ न टरतु है ।

जड परिनामनिको करता हे पुदगल,

चिनानद चेतन सुभाव आचरतु है ॥१०॥

अर्थ—अन कर्त्ता कर्म क्रियाको न्यारी—एक परिनामके
दोइ द्रव्य रुत्ता न होइ अरु एक द्रव्य है सो दोइ परिनाम
धरै नाहीं । ऐसै दोइ द्रव्य मिलि एक करतूति सौं एक क्रिया
कबहो करै नाही । ऐसै एक द्रव्य दोइ क्रिया कबहो न करै,
यहु व्यग्र्या वाधिकै कहियै लायक कहै है । जीव अरु पुदगल

एकमेक द्वै रहै, सौ दोनू एक बेरावगाही भए, पै अपने
अपने स्वभावमाँ कोऊ टरै नाही । ताँतै पुद्गल हँ सौ जड है,
सौ जड परिनामकी ही कृत्ता होइ । अरु विद्वानन्द चेतन हँ
सौ चेतनता स्वभाज ही कौ आचरै ॥ १० ॥

अथ सम्यक्त मिथ्यात व्यवस्था कथन ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

महा ढीठ दुखको वसीठ परद्वरूप,

अन्धकूप काहूप निवारौ नहि गयो है ।

ऐसौ मिथ्याभाव लग्यो जीवको अनादि होको,

याही अहवुद्धि लिये नाना भाति भयो है ॥

काहू समै काहूकै मिथ्यात अन्धकार भेदि,

ममता उछेदि शुद्ध-भाव परिनयो है ।

तिन्हों विवेक धारि वधको विलास डारि,

आत्म सकति सौ जगत जीति लियो है ॥११॥

अर्थ—अन सम्यक्त अवस्थाम कर्मको अकृत्ता, अ
मिथ्यात्व अवस्थाम कर्मको कर्ता यह कहै है—महाघृष्ट अ
दुखको वसीठ सौ दुख पद, आत्म द्रव्यते पर द्रव्यसो पुद्गल
द्रव्य, सो जाके रूप हँ, पिंड है । अरु यामै सत्य दृष्टि पुद्गल

नहीं, तातै अन्धरूप समान है। अरु काहूँप निरारौ नहीं जातौ, ऐसी मिथ्या-भाव, सौ मिथ्या मोह कर्म जीवकों अनादि ही कौ लग्यौ है, याहीतँ पर द्रव्य पर जीवकी अह लागी, तातै जीव नाना भातिख बहु भाति भयौ। अरु काहूँ समँ, सौ यथा प्रवृत्ति करण समँ काहूँ भव्य जीवरै मिथ्यात अन्धकार भेदि, [सौँ मिथ्यान्व ग्रन्थि भेदिकै अरु सब कार्यमें अहबुद्धि लियै भमता हो, सोऊ उछेदिकै शुद्ध चिदानन्द भावमें ही परिनमि रहौ, तत्र तिनही भव्य जीव भेद विग्यान सौँ जड चेतनको विवेक धारिकै अविरति, कषाय, योग, प्रमाद, येऊ बध हेतु हैं, ताकौ विलास डारिकै, आत्म सकृति सौँ अपने वीर्यमौ जगत जीति लियो। सु ससार सौँ निरालौ भयो ॥ ११ ॥

अथ यथा कर्म तथा कर्त्ता कर्त्ता कर्म एकरूप कथन ॥ सत्रैया ३१ ॥

शुद्ध-भाव चेतन अशुद्ध भाव चेतन,

दुहकौँ करतार जीव और नहि मानिये।

कर्म पिंडकौ विलास वर्न रस गध फास,

करता दुहकौँ पुदगल

यहु कार्का म्वाद है ? तत्र मतवारौ अपनी जुगमें भगन रवा
 धरौ न्है , जुमे गऊरौ दूध पोनी है, पै मिन्न रमकी खबरी
 नहीं । तैसे मिथ्यामती जा जीव है सोती सदैव कहता अनारि
 कालकी ग्यानरूपी ही है । इतने जीवतां शानमई है, पै पा
 कर्म अरु पुन तमसां पग्यौ सो व्यापि रखां है, एकमेक ह
 रखा, ताते सहज भांन सुन्न हदै हूँ रखा, वे खरि हूँ गयो
 तत्र चेतन अरु अचेतन-पुद्गल, ये दोऊ की मिश्र कहत एक
 पिंड लखिन एउमेक ही मानै । पुद्गलके भेल सो चेतनक
 ह पुद्गलिक कर्मको कर्ता मानै । पै कछु विवेक कियो
 जातु है ॥ १३ ॥

अथ भ्रम स्वरूप कथन दृष्टांत ॥ सर्गैया ३१ सा ॥

जैसे महा धूपकी तपतिमें तिसायो मृग,
 भ्रम सों मिथ्याजल पीवनको धायो है
 जैसे अन्धकार मांही जेरो निरखि नर,
 भ्रमसो डरपि सरप मानि आयो है
 अपने सुभाइ जैसे सागर सुथिर सदा,
 पवन सयोगसो उछरि अकुलायो है

तैसे जीव जडसौ अव्यापक सहज रूप,
भरमसौ करमको करता कहायो है ॥ १४ ॥

अर्थ—जीवको कर्त्ता मानियै सो भ्रमरूप है ताको ३
दृष्टात करि डिढाइयै है—जैमँ बँसाख जेठकँ महा धूपकी गरमीमँ
मृग तिसायौ भयौ, अरु मृग तृष्णा देखी, वाकौं, मृग, जल
मरघौ ताल मान्यौ, अरु मिध्यारूपी जल पीनैको दोरयौ ।
अरु जैसे अन्धकारमँ कोई जररी परी है, ताको कोऊ मनुष्यकै
भरम सौ डरयौ, अरु डरकै वाका सरप मानि लीनौ । अरु
जैमँ अपनै स्वभाव तँ समुद्र है सो सदा स्थिररूप ही है, अरु
पाताल कलसाकँ पवन संयोगतँ उछरै है, अरु आकुल व्याकुल
ह्वै है, तैसे ये जीव है सौ निश्चै नयतँ जडरूप वस्तुसौं अन्या-
पक है, पै अनादि कालको सहजरूपी भ्रम है, ता करिकै
कर्मको कर्त्ता कहावै है ॥ १४ ॥

अथ सम्पकृष्टिष्टी स्वभाव वरनन, राजहसको दृष्टांत

॥ सँया ३१ सा ॥

जैसे राजहसके वदनके सपरसत,
देखियै प्रगट न्यारौ छीर

सीतल ही है, अरु यामे उम्नता म्यर्श ग्यानते लखी जाइ है, सौ आगिकी उम्नता है । अरु सादबत व्यजन कहते तरकारी माहि भाति मातिको स्वाद दीर्म है, अरु लोनको स्वाद खारो न्यारो ही लखियै है, सौतो जीमके ग्यानसौ प्रगट ही है । तैसे घट पिडम विभायता जो कर्मम चेतनाको मिलवौ, सौतो जैसे म यहू कीनी, ऐसो मानिनी, यह तो अग्यान रूप है । अरु जीम है सौ शुद्ध जानरूपी है, याको शुद्ध जानवौ ही कार्य है या घात भेदग्यान हीमो जानी जाइ । वे चिदानन्द जु है, सौ कर्मको कर्ता मानिनी भ्रमसौ है, प द्रव्यको विचार करतें याके कर्ता-भाय बने नही, याके ग्याता भाय बने ॥ १६ ॥

अथ कर्तृत्त धियरन ॥ दोहरा ॥

ग्यान भाय ग्यानी करै, अग्यानी अग्यान ।

दरव करम पुद्गल करै, यहू निहचै परवान ॥१७॥

अर्थ—अब निश्चै प्रमाणते जो जाको कर्ता है ताको ब्योरो दिखारै है—ग्यानी होइ सौतो ग्यान भाय करै, जानिवौ रूप जो कार्य है ताको करै अरु अग्यानी है सौतो म कीनो ऐमो मानि अग्यान भाय करै । पै यी द्रव्यरूप जो कर्म है ताको पुद्गल हो करै है । निश्चै प्रमाणम ऐमो रहस्य है ॥१७॥

अथ व्यवहार कर्त्तृत्व कथन ॥ दोहरा ॥

ग्यान सरूपी आत्मा, करे ग्यान नहिं और ।
दर्व कर्म चेतन करै, यहु विवहारी दौर ॥ १८ ॥

अर्थ—शिष्य पूछै—ग्यामी ग्यान-भाष ग्यानी करै ये
वात कहतै ग्यानकौ कर्त्ता जोय क्यौ, सो कौन नयमों ऋछौ ।
गुरु कहै है—जो आत्मा ज्ञान सरूपी है, ततै ग्यानभौ तौ
योही करै, पै और कोऊ नाहीं, ये निश्चै । अरु जो कहै है-
द्रव्य-कर्मको भी चेतन ही करै, यौतौ व्यवहार में दोरिबौ
है ॥ १८ ॥

अथ शिष्य प्रश्न • कर्त्तृत्व कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

पुद्गल कर्म करे नहि जीव,
कहो तुम में समझी नहि तैसी ।
कौन करै यहु रूप क्यौ अव,
को करतार करनी कहु कैसी ॥
आपुही आपु मिलै विछुरै जड,
क्यौ करि मन रुशय ऐसी ।

शिष्य सदेह निवारण कारन,

यात कहे गुरु हे कछु जैसी ॥१६॥

अर्थ—अब शिष्य वृक्ष—यौ जीव निश्चै ग्यानको ही कर्ता कही, अरु कर्मको अकृता कही सो कैसे है ? हे गुरु, पुद्गल द्रव्यरूप कर्मको जीव करै नहीं, एमो जाँ यात तुम कही, मौता यात में तैसी समझी नहीं । या पुद्गल रूपी कर्मको स्वरूप कोन करै । इहा कता कौन ठहरायो हौ, अरु याकी करनी कहतै क्रियामौ बँसी है, ये कहौ । अरु पुद्गल कर्मको कर्ता पुद्गल ही कहौ हौ, तौ कर्ता कर्म दोनु जड भये, ताको आप्तु हो तें मिलिबौ विच्छुरिबौ कैसे बनैगौ । यहु भैरै मनमै सदेह है । ऐसे प्रश्न पर शिष्यको सदेह हरिबैको जो कछु जैसी यात है सो तैसी यात गुरु कहै है ॥ १६ ॥

अथ गुरु उचर कथन ॥ दोहरा ॥

पुद्गल परिनामी द्रव, सदा परिनवै सोइ ।

यातै पुद्गल करमको, पुद्गल करता होइ ॥ २०॥

अर्थ—अब गुरु है सो शिष्यके प्रश्नको उत्तर वचन कहै—
हे शिष्य पुद्गल हैं सो परिनामी द्रव्य है छिन छिनमै औरसौ

हुइ, सो परिनामी कहियै, सोतौ स्वभाव ही तै सदा परिनामी रखौ है, याही जुगतितै पौद्गलिक कर्मको कर्त्ता पुद्गल ही होई ॥ २० ॥

अथ पुनः शिष्य प्रश्न ॥ अडिल्ल छन्द ॥

ग्यानवतको भोग निर्जरा हेतु हे ।

अज्ञानीको भोग बधफल देतु है ॥

यहु अचरजको वातु हिये नहि आवहि ।

बूझै कोऊ शिष्य गुरु समुभावहि ॥ २१ ॥

अर्थ—अब भी शिष्य वश है—ज्ञान-भाव ग्यानी करै, या कहियै मैं ग्यानीको भोग निर्जरा रूपी हूँ है सो कर्म है ? ग्यानी भोग भोगवैसी कर्मकी निर्जरा करै है, तबतौ ग्यानीको भोग निर्जराको हेतु भयो । करु अग्यानी भोग भोगवैसी कर्म बध करै है । तहातौ अग्यानीको भोग बध फलदायक कहाँ । या तौ अचरजकी बात है । भोग भोगवैसै ममान है, तौ एरुको निर्जरा एरुको बध यों क्यों होइगो ? ये बात हियेम नाही । तब शिष्य काऊ नृक्षिना लाग्यो, तब गुरु को समझावै ॥ २१ ॥

जय गुरु उत्तर रुधन ॥ मंत्रया ३१ सा ॥

दया दान पूजादिक त्रिपय रुपायादिक, ।

दुहो कर्म भोग पे दुहोको एरु खेत है ।

ग्यानी मूढ कर्म करत दीसे एकसे पै,

परिनाम भेद न्यारो न्यारो फल देतु है ॥

ग्यानरत करनी कर पे उदासीन रूप,

ममता न धरै तारै निर्जराको हेतु है ।

वहे करतूति मूढ कर पे मगनरूप,

अन्य भयो ममतासो वन्य फल हेतु है ॥२२॥

जय—अन गुरु उत्तर कहै है—दयाको पालिनी, दानको दैनी, पूजा प्रमुखको करिवी, एरु ऐसी भातिको कर्म है । अरु पचेन्द्रियके त्रिपयको सेत्री, रुपाय सेइनी एरु ऐसी भातिको कर्म है, ये दाऊ कर्मको समारमै भोग है, पै एक खेतु है, सो दोऊ नर रूप है । सो दोऊ ग्यानीहू करै है अरु मूढकरै है । ऐसै कर्म करते ग्यानी अरु मूढ एकसे ही दीसै है, पै याको परिनाम भेद न्यारो न्यारो है, तारै एरु कर्म न्यारै न्यार फल दे है । ग्यानरत कर्म क्रिया जो करै है सो उदासीन हू कै करै है । आपु ही

त उदे आयौ कर्म सौ करै हँ पै ममता धरै नहो, ताँत निर्जरा
कारण है । अरु वही करतूति क्रियामूढ करै है पै वा क्रिया
मगनरूप रहै । आपकी शुद्धि भूलि गयो, अरु याही तँ अंध भूँ
ममतासँ नँध फल लीनौ, याहीतँ अग्यानसँ कर्त्ता है ॥ २०

अथ मूढ कर्त्तृत्त कथन, कुलाल दृष्टात् ॥ अथ-दृष्ट
ज्यौ माटीमहि कलस हौनेकी, सकति रहै ध्रुव
दड चक्र चीवर कुलाल, वाहिज निमित्त ध्रुव ।
स्यौ पुद्गल परवानु, पुज वरगना सेव धरि ।
ग्यानापरनादिक स्वरूप, विचरत विविध परि ।
वाहिज निमित्त वहिरात्मा,

गहि तर्ज्ञ ज्ञान मति ।
जगमाहि अदृष्ट भावसँ,

करमरूप द्व परिनिमित्त ॥ २२ ॥

अर्थ—जब मूढसँ कर्त्तृत्त द्विपारे हँ इत्यारको
दृष्टात्—जैसै करमरूप कार्यसँ माटी द्रव्यकी सकति ध्रुव
कहतें निश्चै है, अरु विचरत ज्ञान विष
दड सो चाक्र, चीवर, सो धरा

कुलालमौ कुमार, ये सब वाग निमित्त भए । तेम परमाणु
 पुद्गलकौ पुन, सो राधा शर्मण वर्गणाकौ भेष धारिके ज्ञाना
 वरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुषौ, नाम गो
 अन्तराय इन्हि स्वरूपे त्रिपिप परिमौ भाति भाति पुद्गल
 सध विचरथौ । इहा रहिरात्मा सो देव मनुष्यादिरूपी बाह्य
 त्मा बाह्य निमित्त होके अमरूपी अज्ञान ग्रहिके, इहा कार
 भयौ, तर जगतम अहकार बुद्धिकी समतीसौ सोई पुद्गल
 सध कर्मरूप होके परिनयो ॥ २३ ॥

अथ शुद्धात्तुभय माहात्मा कथन ॥ मंत्रया २३ सा ॥

जे न करे नय पक्ष विवाद,

धरै न विपाट अलीक न भाखै

ते उदवेग नजे घट अन्तर

सीतल-भाज निरन्तर राखै,

जे न गुनी गुन भेद विचारत,

आकुलता मनकी सध नाखै

ते जगमें धरि आत्म ध्यान,

अखडित ग्यान सुधारस चाखै ॥२४॥

अर्थ—अप्र निश्चै जीवकौ अकृत्ता मानिकै याहीके अनुभयमें रहिषौ ताकौ माहात्मा कहै हैं—जैम मिब्याती लोग अपनी अपनी नयकौ पथ लियै आपममें निपाद करि रहै हैं । तैसै जे निपाद न करै, अरु सहज जानन्दमै रहै, तातं विपाद न धरै, अरु झूठ न मोल, अरु दुष्ट ध्यानतैं सीर मिटि गयौ । तातैं जे उद्वेग तजे है, अपने हियै बोचि निरन्तर शीतल भाव ही राखै । ऐसै शुद्ध आत्मकै अनुभयमें मिलै, जातैं ये आत्मा गुनी है, ग्यान गुन है, ऐसो जाकं भेद विचार रखौ नहीं । और विकल्पतैं जो आकुलता हँ रही हो, सो मनसों सत्र डारि दै, ऐसै जो शुद्ध अनुभयी भए, तेई आत्मा ध्यान धरिकै जगतमे जो सम्पूर्ण ग्यानरूप, इतने केवल ज्ञान-रूप अमृत रमकौ चाखै है ॥ २४ ॥

अथ निश्चय व्यवहार नय प्रमाण स्थापना ॥ सर्गया ३१ सा ॥

विबहार-द्विष्टिसो विलोकत वध्योसो दीसै,

निहचै निहारत वाध्यो यहु किनहीं ।

एक पच्छ वध्यो एक पच्छसौ अवध सदा,

दोऊ पक्ष अपने धरे इनहीं ॥

बुलालसौ कुभार, ये मन बाह्य निमित्त भए । तैम परम
 पुङ्गलसौ पुज, सो सधा कर्मण वर्गणाकौ भेष चारिकै शान
 वरण, दर्शनारण, वेदनीय, मोहनीय, आयुषी, नाम ग
 अन्तराय इन्हि स्वरूपे परिध पग्निमौ भाति भाति पुङ्
 सध पिचरयो । इहा बहिरात्मा सो देव मनुष्यादिरूपी वा
 त्मा बाह्य निमित्त होकै भ्रमरूपी अग्यान ग्रहिकै, इहा क
 भयो, तन जगतम अहकार बुद्धिकी मगतीसौ मोई पुङ्
 सध कर्मरूप हूँकै परिनयो ॥ २३ ॥

अथ शुद्धानुभवा माहात्मा कथन ॥ सर्वैया २३ सा ॥

जे न करें नय पक्ष विवाद,
 धरै न विपाद अलोक न भा
 ते उद्वेग तजे घट अन्तर,
 मीनल-भाज निरन्तर राखैं,
 जे न गुनी गुन भेद विचारत,
 आकूलता मनकी सब नार
 ते जगमें धरि आत्म ध्यान,
 अखडित ग्यान सुधारस चाखैं ॥

अर्थ—अन निश्चै जाँवत ३१ सा ॥

अनुभवमें रहिबौ ताकौ माहात्मा
 अपनी अपनी नयकौ पक्ष लिये आपन
 जैसे जे विवाद न करै, अरु सहज आन
 न घरै, अरु झूठ न बोलै, अरु दुष्ट
 गयौ। तातें जे उद्वेग तजे है, अपने हिय
 शीतल भाव ही राखै। ऐमं शुद्ध आत्मा
 जातें ये आत्मा गुनी है, ग्यान गुन है, ऐमो वा
 रह्यौ नहीं। और विफलतें जो आकुलता ह
 मनसों सत्र डारि दै, ऐसै जो शुद्ध
 ध्यान धरिकै जगतमें जो सम्पूर्ण
 रूप अमृत रमकौ चाखै है ॥ २४ ॥

द फलै हैं।
 फलै,
 छले है ॥
 व,
 लै है।
 २६ ॥
 रासिकै,
 निश्चय
 एक एक
 नत भेद
 लै, तातें
 अनत
 चल

अथ निश्चय व्यग्रहार नय प्रमाण ॥ सर्वथा ३१ सा ॥
 विवहार-द्विष्टिसो विद्वान्द्वयोसो दोसै,
 निहचै निहचै यहु किन्तु
 एक पच्छ बध्या अथ
 अनादि

कोऊ कहे समल विमल-रूप कोऊ कहै,

चिदानन्द तै सोई वखान्यौ जैसौ जिनहो ।

बंध्यो मानै खुल्यौ मानै दुहो नेकौ भेद जानै,

सोई ग्यानवत जीव तत्त्व पायौ तिनहो ॥२५॥

अर्थ—अब निश्चै नयत अक्तापनाकी स्थापना अरु व्यवहार नयतै कर्त्तापनाकी स्थापना प्रमाण कारनकै दिखावै है—चतुर्गति रूप ससार भ्रमणको आत्माको व्यवहार देखियै तौ आत्मा कत्ता हू दीसै, अरु रघ्यो सो ही दीमै, अरु निश्चय नय करि ग्यान ही को कत्ता, अरु ग्यान स्वरूपी ही देखियै तौ यदु आत्मा काहू सो रघ्यो नहीं है । तात एक व्यवहार पक्ष ग्रहियै तौ आत्मा रघ्यो है । अरु एक निश्चय पक्ष ग्रहियै तौ आत्मा मदा अरुध है । ऐसै दोऊ अपने पक्ष अनादि कालकै इनि बरै है । कोऊ व्यवहार नयगालो याकौ समल कहै है, कोऊ निश्चै नयगाली याकौ विमल कहै है, पै जिन जैसै अपनी बुद्धिमाँ चिदानन्दको वखान्यौ तैमोई चिदानन्द हैं । अब सम्पगृहष्टि होइ सो तौ आत्माको रघ्यो ही मानै अरु खुल्यो ही मानै पै या मानियै मै दोऊ नयको भेद जानै । सोई ग्यानवत कहावै । अरु तिनहो जीव तत्त्वको स्वरूप पायौ ॥२५॥

अथ समरसी-भाष प्रशसा कथन ॥ मवेयो ३१ सा ॥

प्रथम नियत नय दूजी विवहार नय,

दुहोको फलावत अनत भेद फलै हैं ।

ज्यौं ज्यौं नय फलै त्यों मनके कल्लोल फलै,

चचल सुभाव लोका लोकलो उछले हे ॥

ऐसी नय-कक्ष ताको पक्ष तज ग्यानी जीव,

समरमी भए एरुतासौ नहि टलें है ।

महामौह नासि शुद्ध अनुभौ अभ्यासि निज,

बल परगास सुख रासि माहि रलै है ॥ २६ ॥

अर्थ—अब दोनु नयको समान रासिकै, समकित रासिकै,

समरमभाषम रहै ताकी प्रशसा कहै है—पहिली तौ निश्चय

नय है, अरु दूजी व्यवहार नय है, ये दोनु नयको एक एक

द्रव्य पर फलाइयें तब अनत द्रव्यकी अपेक्षा नयके अनत भेद

फलै । अब ये नयके अनन्त भेद मनहीके विचारते फलै, तातैं

ज्यौं-ज्यौं नय फलावति होइ त्यों त्यों मनके तरंग पिण अनत

भेद फलै । अरु मन किलोल जेते होइ, तेते मनके चचल

स्वभाव होइ । याको प्रमाण पदगुनी हानि वृद्धि लखै लोका-

लोक प्रदय परिमाण होइ । ऐमी जो नय कक्षा कहतँ नयकौ
अगीकार करनौ, ताकौ पक्षपात तजिकै जे जीन समरसी भाव
में भए । अरु सगही नय निस्तारम चेतनाकी एकता है, तासा
टलै नही, तेतौ समरसो भाग्याले, महामोहकौ सौ भ्रमकौ
नाम करिकै, अरु शुद्ध चिदानन्दकै अनुभवकौ अभ्यास करिकै ।
इतने क्षपक श्रेणी आरोहन करिकै परमात्माकौ जो बल है
ताकौ प्रकाशित करकै सुए रामि जो मोक्ष पद है तामै मिली
गए ॥ २६ ॥

अथ मय्यक स्वरूप लक्षण कथन ॥ मवैया ३१ सा ॥

जैसे काहू वाजीगर चौहटे वजाइ डोल,

नाना रूप धरिके भगल विधा ठानी है ।

तैसे में अनादिकौ मिथ्यातकी तरगनिसौ,

भरममें धाइ बहु काय निज मानी है ॥

अब ग्यानकला जागी भरमकी दृष्टि भागी,

अपनी पराई सग सो जु पहिचानी है ।

जाके उदय होतु परवानु ऐसी भाति भई,

निहचै हमारी ज्योति सोई हम जानी है ॥२७॥

अर्थ—अब निश्चय व्यवहार दिखाइये, अपने जो सत्य स्वरूप लक्षण है सोई कहै है—जैसे कोऊ नाजीगर है सो चोहटमें ढोलकौ बनाइकै भाति-भातिके रूप धरिके अपनी भगल विद्या विस्तारै है, वाकौ लोक गाचो करि जानै है । तैसी भातिसे जनादि कालका मिथ्यातकी तरगनिमें मगन हँ रह्यो, तातम भरममें धायौ, भगल विद्याके देखन हारेकी नाई । याहीतैं बहुत काया पाई, अरु अपनी मानी, अबतौ मोहि ग्यान कला जागी, तातें भर्मकी दृष्टि ही सो भागि गई, तब अपनी पराई कहत सामग्री सो सब पहिचानि लीनी । जिन ग्यान कलाके उदय होतु प्रमाण ऐसी भाति भई सो अपनी पराई वस्तुकी सुध पाई । वाहीत निश्चै हमारी ज्योतिषाँ हमारौ स्वरूप, सोई हम जानि लीनी ॥ २७ ॥

अथ—शुद्धानुभव चिंतन ज्ञातु मिलाम ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसे महा-रतनकी ज्योतिमें लहरि उठै,

जलकी तरग जैसे लोन होरही जलमें

तैसे शुद्ध आत्म द्रव परजाय करि,

उपजै विनसै थिर रहै निज थलमें ॥

महाबल थकी पिरानमान हँ रहौ है । यातँ अदोष कहतँ शुभ
 अनुभव है । जय या अनुभवके नाम रुहै है, अनुभव कहियै
 यौही प्रमान कहियै, यौही अनुभौ भगगन कहियै, यौही
 पुरान-पुस्तक कहियै, यौही ग्यान कहियै, औ कहतँ अय-
 विज्ञान घन कहियै, यौही महागुरु पोष कहियै, यौही परम
 पत्रि कहियै, ऐमै अनुभौके अनन्त नाम कहे । अरु या शुभ
 अनुभव प्रिना और ठौर कहाँ मोक्ष है नाहीं ॥ २६ ॥

अथ अनुभवकौ दृष्टान्त ॥ सौया ३१ सा ॥

जैसे एक जल नानारूप-दरवानु योग,
 भयो बहु भाति पहिचान्यौ न परंतु है
 फिरि काल पाइ दरवानुयोग दूरि होतु,
 अपने सहज नीचै मारग ढरतु है
 तैसे यहु चेतन पदारथ विभाव तासौ,
 गति जोनि भेष भव भावरि भरतु है
 सम्यक सुभाइ पाइ अनुभवके पथ धाइ,
 बधकी जुगति भाजि मुगति करतु है ॥ ३० ॥

अर्थ—अब शुद्ध अनुभव बिना मसारमें भ्रमै, अरु शुद्ध अनुभव आया मौख होइ, या परि दृष्टान्त कहै है—जैम पानी एरु ही रूप है, अरु तामै नाना प्रकार माटी प्रमुख द्रव्यकौ अनुयोग भयो मिलाप भयो । तात पानी दू बहु भाति भयो । अब दसिगर्म माटी प्रमुख दोसै, पै पानो तौ पहिचान्यौ न जाइ । फिरि कोऊ औसर पाइकै वह द्रव्यकौ मिलाप दूरि हूँ गयो, पानी नितरि आयौ, तब अपनौ महजरूप पाइकै नीचै मारग ढरन लागौ । तैसो भाति यहु जो चेतन पदार्थ है सो तौ विभाजतामौ कहतै अपनो भूलिमौ ४ गतिम ८४ लाख लोनिमै भेष कहतौ एरु काडिमै भाति-भाति भयमे भापरि कहतै फेरी मो फिरि रहै है । सोई जीव माह औसर सम्यक स्वभाप पाइकै अपनै अनुभवके मारगमै दोरिकै उधरौ मिलास माजिकै कर्मनी मुक्ति करै है ॥ ३० ॥

अथ मिथ्यादृष्टि कत्तृच कथन ॥ ढाहरा ॥

निसि दिन मिथ्या-भाव लहु, धरै मिथ्याती जीव ।
तातै भावित्त कमकौ, करता कहीं सदीव ॥ ३१ ॥

अर्थ—अब मिथ्यादृष्टि होइ सो अनुभव बिना कर्मनी करता होइ यह कहै है—राति दिन अपनी भूलिमै

जो वटा सा भाति-भाति मै करौ, मै मारौ, मै हारौ इत्यादिक
मिथ्या भाव धारै, तातैं अशुद्ध चेतनामौ भाषित कर्म है ताकी
कृत्ता मदान कहतैं निरन्तर ही कथा ॥ ३१ ॥

अथ मूढ कर्मकौ कर्त्ता, ग्याता अकृत्ता यहु कथन ॥ चोपाई ॥

करै कर्म सोई करतारा, जो जानेसौ जाननहारा ।
जो करता नहि जानै सोई, जानैसौ करता नहि होई ३२

अर्थ—ग्यानी अरु कर्म करता एरसे है, पै मूढ जीव कर्म-
कौ कृत्ता नहौ अरु ग्यानी जाय कर्मकौ अकर्त्ता यहु कहै हैं—
जोइ कर्मकौ कर, सोइ करता कडावै । अरु जो जानै है सो तौ
करन हारो नही ? अरु जो जाननहार है सो कर्त्ता
नाही ॥ ३२ ॥

अथ ग्याता अग्याता यहु कथन ॥ सोरठी ॥

ग्यान मि-यात न एक, नहि रागादिक ग्यान महि ।
ग्यान कर्म अतिरेक, जो ग्याता करता नहीं ॥ ३३ ॥

अर्थ—अज जो जाननहार है सो अकर्त्ता इहि बातकौ
ज्योरौ कहै हैं—ग्यान-भाव अरु मिथ्या भाव एक कहावै नहीं ।
एक सौ राग द्वेष माह, इत्यादिक भाव ज्ञानम होइ

नाहीं, यातें ज्ञान है सौ कमसौ अतिरेक कहतें न्यारी ही है ।
याहीतें जोई ग्याता है सौ कर्त्ता नाही है ॥ ३३ ॥

अथ जलौप द्रव्य कर्मकौ अकर्त्ता यहु कथन ॥ छप्पय ॥

करम पिंड अरु राग भाव, मिलिएक होहि नहि ।

दोनु भिन्न स्वरूप वसहि, दोऊ न जीव-महि ॥

करम पिंड पुगल, विभाव-रागादि मूढ भ्रम ।

अलख एक पुगलअनत, किमि धरिहि प्रकृति सम ॥

निज निज विलास जुत जगत महि,

जभा सहज परिनमहि तिम ।

करतार जीव जड कर्मकौ,

मोह विकल जन कहिहि इम ॥ ३४ ॥

अर्थ—अथ जा मिथ्याती जीव है, सौहू पुदगल-द्रव्यरूप
कर्मकौ अकर्त्ता ही है, अरु भाषित कर्मकौ कत्ता यहु कहै है—
पुदगल द्रव्य रूप कर्म पिंड, अरु राग द्वेषादिक भाव, दोउ
मिलिकै एक रूप होइ नहीं । ये दोउ भाव भिन्न स्वरूपमै हैं
पर ये दोउ भाव जीव मै बसत नाहो, याको व्यौरो कहै हैं—
कर्म पिंड है सोतौ पुदगलरूपी है, अरु जो रागादिक विभाव हैं,

सौतौ मूढ जीवकौ भ्रम है । अलग जीव है सौतौ एरुता
 लियै है, अरु पुद्गल अनन्तता लियै रहै है, कर्मकौ कर्त्तापनौ
 ऐसी सम प्रकृति दोउ दैसै धरैगे । जगतम सब कोऊ आप
 अपनै स्वभाव विलासम युक्त ह्वै रहै है, जैमौ अपनौ सहज
 स्वभाव है, तैसेही परिनिमि रहै हैं । न्यायको बात ऐसी है ।
 ताँ जड स्वरूपी कर्मकौ कर्त्ता जीव है ऐसी वचन मोहतेँ
 जौ निरुल भए है सौ कहै है ॥ ३४ ॥

अथ सम्यक्त प्रभाव कथन ॥ छप्पय छद ॥

जीव मिथ्यात्व न करै, भाव नहि धरै भरम मल ।
 ग्यान ग्यान-रस रमै, होइ करमादिक पुद्गल ॥
 अस्त्रयात परदेश सकति, जगमगै प्रगट अति ।
 चिद् विलास गभीर धीर, थिर रहै विमल मति ॥

जग लगु प्रबोध घट नहि उदित,
 तब लगु अनयन पेखियै ।
 जिम धरम राज वरतत पुर,
 जहि तहि नीति परेखियै ॥३५॥

पाप पुण्य एकत्वं द्वार

(४)

प्रतिभा (दोहरा)

करता किरिया करमकौ, प्रगट वरयानौ मूल ।
अव वरनौ अधिकार यहु, पाप पुन्य सम तूल ॥१॥

अर्थ—कत्ता क्रिया अरु कर्मकौ मूल कहतें रहस्य प्रगट ही
बरान्यौ । अउ पाप अरु पुण्य ये दानु समतुल्य हैं, याही
अधिकार वरनौ हौ ॥ १ ॥

अथ ग्यान चन्द्र कला वरनन ॥ कवित्त छंद ॥

जाकै उटे होत घट अन्तर,
विनसै मोह महातम रोक ।
सुभ अरु असुभ करमकी दुविधा,
मितै सहज दीसै इक थोक ॥
जाकी कला होत सम्पूरन,
प्रतिभापे सब लोक अलोक ।

सो प्रबोध ससि निरखि बनारसि,

सीस नवाइ डेतु पग धोक ॥२॥

अर्थ—अत्र पाप पुण्यद्वार विमें प्रथमतै ग्यान चन्द्रकी कलाकी नमस्कार करे हैं । जिनके प्रबोधके उदय होतु समान, घटमें जो मोह रूप महात्म कहतें महा अधकारकी जो रोक कहतें अटनाव, सोई विनश जाइ । अरु जिन अन्धकार गये, एक कर्म अशुभ है ऐसी जो कर्म निपे दुग्धि है सो मिटि नाइ । अरु सहज भावे कर्म बधरूप ऐसै एक थोरु दीसै । अरु जिन प्रबोध-चन्द्रकी सर्व सपूर्ण कला प्रगट भयै छत सत्र लोरु अलोरु प्रतिभापै, सोई प्रबोध रूपी चन्द्रमाकी बनारसीदाम मस्तरु नवाइके पग धोरु देतु है, प्रणाम करतु है ॥ २ ॥

अथ शुभाशुभ एकत्रीकरण ॥ सर्ग्या ३१ सा ॥

जैसै काहू चडाली जुगल पुत्र जने तिन्ह,

एक दीर्यो वाभनकु एक घरि राख्यो हे ।

वाभन कहायो तिन्हि मद्य मास त्याग कीन्हो,

चडाल कहायो तिन्हि मद्य मास चाख्यो हे ।

तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र,
 एक पाप एक पुन्य नाउ भिन्न भाख्यो है ।
 दुहौ माहि दौर धूप दोऊ कर्म बध रूप,
 यातैं ग्यानप्रत कोऊ नाहीं अभिलाख्यो है ॥३॥

अर्थ—अब जो मोहमें शुभ अशुभ कर्मकी दुविधा दीसै है, ताको एकरूप दिखावै हँ—जैसे काहू चडालीने जुगल पुत्र जने अरु तिन्हि चडालीने दोइ पुत्रनिमें जातु मात्र एक वाभनकी दीयो अरु एक अपने ही घरमें राख्यो । तहा जो वाभनके घरम बढासो वाभन कहायो । तिन ती मद्य मामको त्याग कीनो । अरु जो चडालकें घर रख्यो चडाल कहायो, तिन्ह मद्य नाम चारयो । तैसे भाति एक वेदनी करमके दोइ पुत्र है, एक पाप है, एक पुन्य है, ऐसो नाउ जुदो जुदो कख्यो, पै दोउको एक सुभाउ है, सो कहै है । दुहौ माहि दौर धूप कहतैं खद सताप है । अरु पाप पुन्य ये दोऊ कर्म बध रूप है । याहीतैं ग्यानप्रतनि कोऊ अभिलाख्यो नही, चाख्यो नही ॥३॥

अथ शिष्य प्रश्न ॥ चौपाई-छंद ॥

कोऊ शिष्य कहै गुरु पाही,

पाप पुन्य दोऊ सम नाहीं ।

कारन रस सुभात्र फल न्यारै,

एरु अनिष्ट लगे इक प्यारे ॥४॥

अर्थ—कोऊ शिष्य कहै गुरु पाही, पाप पुन्य दोऊ समान
 कहै, तापरि शिष्य प्रश्न करै हैं—कोऊ गुरुके पास आइ ऐसौ
 कहै—स्वामीजू तुम्ह पाप पुन्य सम कहौ हौ, सोतौ सम दीस
 नाही । पापके अरु पुन्यके कारण न्यारे, रस न्यारे, सभात्र न्यारे
 अरु फल न्यारे । अरु यार्म एकतो अनिष्ट लगे हैं, अरु एक
 प्यारे लगे ह ॥ ४ ॥

अथ शिष्य कथन ॥ सर्वेषां ३१ सा ॥

सकलेस परिनामनिसौ पाप वध होइ,

विशुद्धिसौ पुन्न वध हेतु भेद मानिये ।

पापके उटै असाता ताको हे कटुक स्वादु,

पुन्य उटै साता मिष्ट रस भेद जानिये ॥

पाप सकलेस रूप पुन्य है विशुद्ध रूप,

दुहौको सुभात्र भिन्न भेदयो वखानिये ।

पापसौं कुगति होइ पुन्यसौ सुगति होइ,

ऐसौ फल भेद परतच्छ, परत्रानिये ॥५॥

कर्म है, ताते वध रूप है । अह भाक्ष मार्गम दुहौको विनाश
दखिये, ताते ये दोनु समान है ॥ ६ ॥

अथ मोक्ष पद्धति कथन ॥ मंत्रया ३१ सा ॥

सौल तप सज्जम विरति दान पूजादिक,

अथवा असज्जम कषाय विषय भोग है ।

कोऊ शुभरूप कोऊ अशुभसुरुर मूल,

वस्तुके विचारित दुविध कर्म रोग है ।

ऐसी वध पद्धति वखानो वीतराग देव,

आनम धरममै करम त्याग-जोग है

भो-जलतरेया राग दोषको हैरया महा,

मोक्षको करेया एक शुद्ध उपयोग है ॥७॥

अर्थ—अर मोक्ष मार्ग विषे दानाको विनाश दिखावे है
प्रश्नचर्य, तपस्या, पाच इन्द्रिय नियह, मर्या, दानपूजादि प्रमुखा
त्रिया, ये पुन्य वधके कारण कर्म हैं, अथवा ये पापके कारन
जमयम है, कषाय हैं, अरु विषेको भोग है । ये दोनु में को
तो गुण रूपका कार्य है अरु कोऊ अशुभरूप कार्य है, पै वस्तु-
मूल विचारिये तो दुविधा कर्म राग है कहत दोह प्रकार

रुमरोग है। ऐसी बधको कहते पगडटी, मौ गीतरागदेव
 रखानिये। आत्मिक धममसी आत्माही स्वभाव देपत ही,
 कम क्रियो त्याग योग्य है। ऐमैपाप पुन्य हय कहै। अरु भव-
 जलको तरनहार, रागद्वेषको हरनहार, महा मोक्षको करनहार।
 एक शुद्ध उपयोग उपादेय है ॥ ७ ॥

अय शिष्य प्रश्न, गुरु उत्तर कथन ॥ सर्वैया ३१ ॥

शिष्य कहै स्वामी तुम करनी अशुभ शुभ,
 कीनी हे निपिद्ध मेरै ससे मन माही हे।
 मोखके सधैया ग्याता देश विरती मुनीस,
 तिन्हकी अवस्था तौ निरावलम्ब नाहीं हे ॥
 कहे-गुरु करमको न्यास अनुभौ अभ्यास,
 ऐसौ अवलम्ब उन्हींको गुन पाही है।
 निरुपाधि आत्म समाधि सोई शिवरूप,
 और दौर धूप पुद्गल परछाही है ॥ ८ ॥

अर्थ—अय अर्द्ध सर्वयामें शिष्य प्रश्न करे है अरु अर्द्ध
 सर्वयामें गुरु उत्तर कहै है—शिष्य कहै है—स्वामी तुम तो
 मोक्ष मार्गमें शुभ करनी अरु अशुभ करनी ही

कीनी, याकौ मेरे मनर्म मदेह परै है । जो मोक्ष मार्गके माधरु ग्याता, देश, विरतो पचम गुणस्थानवर्ती भए, अरु मुनीश कहै । ते पष्ठ, सप्त, गुणस्थानवर्ती, सत्र विरतो भए, तिन्हिकी जग्ग्धा तौ निरालम्ब है नाही । इतनै अपनो-अपनी पुद्द क्रियाकौ आलम्बन लियै दश विस्ती कहावै, तौ करनी कैसे निषिद्ध ? अरु गुरु उत्तर रहै हैं—जैसे अक्षरकौ न्याम मात्रौ श्रुतज्ञानका आलम्बन होइ तैसे शुभ कर्मकौ न्याम सौतौ दपिया स्वरूपमै है, पै वह अनुभव ही कौ अभ्यास है, ऐसो अनुभव अभ्यासस्वरूप आलम्बन सौतौ ग्याताकौ ग्याता पाम ही रहै । अरु यामे जो निरुपाधि कहतें रागद्वेष कपाय इच्छादि विना आत्माकी समाधि है । इतनै ये पररूपतै निरुपयोगीपनै रहनो सोई निवरूप कहतें मोक्षरूप है । अरु जो दौर रूप कहतै पेद-सताप है सौतौ पुद्गलकी परिछाही कहतै छाया है ॥ ८ ॥

अथ बध मोक्ष स्वरूप कथन ॥ सत्रैया २३ सा ॥

मोच्छ सरूप सदा चिनमूरति,

बधमई करतति कही है ।

जावत काल वसै जह चेतन,

तावत सो रस रीति गहो है ॥

आत्मको अनुभौ जत्रलों,

तत्रलो सिवरूप दसा निवही रे ।

अन्ध भयौ करनी जत्र ठानत,

वध विथा तत्र फैलि रही है ॥६॥

अर्थ—अत्र याही शुभ क्रियामें वध अरु याही शुभ क्रिया में मोक्ष ये दोनु स्वरूप कहै हैं—जिनमूर्ति कहत चिदानन्द है, सोतौ माध्व स्वरूपी मदा ही है । अरु करतूति कहता क्रिया है, सोतौ मदा वधमई है । जावत काल कहत तितन काललौ चेतन जहा वसै, तत्रत रहत तितन काल लौ साई रमगेति ग्रही है, याही रमम रहै हैं । अत्र याको व्योरी कहै है । जोलौ आत्माको अनुभव रहै, तोलौ शुभ क्रिया करत हो शिव रूप दिसा निवही । इतनै मोक्ष स्वरूपमें रहै । अप्रमत्त कहाँ । अरु अपनौ स्वरूप भूलिकै अन्ध भयौ छतौ जत्र करनी हो को रस ठहरावै, तत्रतौ वध ही को कष्ट गोग फलाव करै ॥ ६ ॥

अथ मोक्ष मार्ग निरूपण ॥ सोरठौ ॥

अन्तर दिष्टि लखाउ, अरु स्वरूपको आचरन ।

ये परमात्म भाउ, शिव-कारन एई सदा ॥१०॥

अर्थ—अत्र केवल मोक्ष प्राप्तिकी कारन कहै—बाह्य दृष्टि छाडिके अत्र दृष्टि दके लक्ष्मी लपियै । अरु वाके स्वरूपको आचरन करियै । इतने ग्यान दशन चारित्रको आचरियै । ऐसै ही परमात्मा भाउ सिद्ध होई । मदा काल त्रिपै मोक्षको कारन येही है ॥ १० ॥

अथ वध मार्ग निरूपण ॥ सोरठौ ॥

करम शुभाशुभ दोइ, पुद्गल पिड विभाव मल ।

इन्हसौ मुगति न होइ, नाहीं केवल पाइयै ॥११॥

अर्थ—अत्र बाह्य दृष्टिमें वध पद्धति होइ साई कहै है—शुभ कर्म पुण्य, अशुभ कर्म पाप, ये दाउ कर्म पुद्गलको पिड है । अरु विभाव कहत राग द्वेषादिन ये मल-रूप हैं, ये दाउ में दृष्टि रहतें मुक्ति न होइगी, अरु केवल ज्ञान पाइयै नाहीं ॥ ११ ॥

अथ शिष्य प्रश्न, गुरु उत्तर कथन ॥ मंत्रया ३१ सा ॥
 कोउ शिष्य कहै स्वामी, अशुभ क्रिया अशुद्ध,
 शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनो ।
 गुरु कहै जगलौ क्रिया के परिणाम रहै,
 तबलौ चपल उपयोग योग धरनो ॥
 धिरता न आवै तौलौ शुद्ध अनुभौ न होइ,
 यांत दोउ क्रिया मोख पथ को कतरनी ।
 चन्धकी करैया दोऊ दुहौमें न भली कोऊ,
 बाधक विचारमें निषिद्ध कोनी करनो ॥१२॥

अर्थ—अथ या बात पर शिष्यको प्रश्न वचन अरु गुरु
 को उत्तर वचन कहैको शिष्य कहै है—हे स्वामी ! तुम्ह
 ऐसा वरनन क्यों न करोहौ जो अशुभ क्रिया हिंसादिक अशुद्ध
 है अरु शुभ क्रिया दानादिक शुद्ध है ? या प्रश्नको गुरु
 उत्तर कहै है । अहो शिष्य ! जो-नो क्रियाके परिणाम रहै
 है तौलौ उपयोगकी धरनो करत क्षेत्र, इतने उपयोगगत
 आत्मा चपल रहै है । जौलौ क्रियामें उपयोग रहै तौलौ
 आत्मा धिरतान

याँतँ ये पुन्य पापकी दोऊ क्रिया है सो मोक्षमार्गकी काटन हार कतरनी समान है । ये दोउ क्रिया प्रथकी करनहार है । याँतँ दोउ क्रियामें एकहू भली नहीं, जहा मुक्ति मार्गके बाधक विचारे तहा दोऊ क्रिया निषेध कीनी ॥ १२ ॥

अथ ग्यान मोक्ष मार्ग यहू कथन ॥ मंत्रैया ३१ सा ॥

मुगतिके साधकको बाधक करम सब,

आतम अनादिको करम माहि लुक्ख्यौ है ।

एतं परि कहै औ कि पाप बुरौ पुन्य भलौ,

सोई महा मूढ मोख मारगसौ चुम्ब्यो है ॥

सम्यक सुभाउ लियै हियैमें प्रगट्यौ ग्यान,

उरध उमगि चलयौ काहू पे न रुम्ब्यौ है ।

आरसीसौ उज्वल बनारसी कहत आपु,

कारन स्वरूप हूँकै कारजको दुम्ब्यौ है ॥१३॥

अर्थ—अब जो ग्यान है सोई मोक्ष मार्ग है यहू कहै है—

जो मुगतिकी साधक आतमा है ताको सब कर्म बाधक है ।

याही तँ अनादि कालमें आत्मा कर्म माहि लुकि रखी है ।

एतं परि जो ऐसौ कहै कि पाप कर्म तौ बुरी है अरु पुन्य

अर्थ—अब एक आत्मा विषे ग्यानकी अरु कर्मकी व्योरी
 देसतै है—जौलौ आठ कर्मकी सर्पया विनाश होतु नाहीं ।
 तनै मुक्ति न होइ, तोलौ अन्तरात्मामें दोय धारा सदा बरतियै
 । एक ग्यानकी धारा अरु शुभागुण कर्मकी धारा, दोनों
 धाराकी प्रकृति न्यारी है । अरु धरना कहत क्षेत्र मोरें न्यारी
 यारी है । यामें इतनो विशेष है, जु कर्म बधरूप है, अरु जड
 नातै याको प्रकृति पराधोन रूप है । अरु प्रकृति बध स्थिति-
 बध, रमबध, प्रदेशबध, ऐसै भाति भाति बधको करनी । अरु
 ग्यान धारा मोक्ष स्वरूप है । मोक्षको करनहार है, सर्प
 रोपकी हरनहार है, अरु भय-ममृद तरिबकी तरनी कहतै नाय
 सभान है ॥ १४ ॥

अथ स्याद्वाद प्रथमा कथन ॥ सर्पया ३१ सा ॥

ऐसै जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें ।
 ज्ञान पक्ष गहै कहे आत्मा अग्रन्ध सदा,
 बरतै सुउद तेऊ बूडे है चहलमें ॥
 जथा जोग करम करै पै ममता न धरे,
 रहै सावधान ग्यान ध्यानकी टहलमें ।
 तेई भय सागरके ऊपरि हूँ निरै जीव,
 जिन्हिकी निवास स्याद्वादके महलमें ॥१५॥

अर्थ—अत्र जो ग्यान क्रिया म्या मोक्ष ऐसौ म्यादवाद है ताको प्रशमा करै है—अत्र जो क्रियावादी है, मो कहै हैं, न ज्ञान श्रेय, याको यहु अर्थ—जो ज्ञान है मो मलो नाही जो ज्ञानमें सशो उपजै है, अरु मशयत जीव इनको न उनको, ताते क्रिया कर्म क्रिये मोक्ष है। ऐसै जीव त्रिफल भयो मिथ्यातकी गहलम कहै है। अत्र जो ग्यानवादी माख्यमती है, सो ग्यान ही को पक्ष गहै है। अरु ऐसै कहै उध मोक्ष प्रकृति में है, पै आत्मा सदा अमथ ही वर्त है, ऐसी श्रद्धा मो मच्छद कहतै अपने छ दै वरतै तऊ चहल कहतै कदेमै बूड है। अत्र जा स्यादवादी सो काहुको प्रीरोधी नाही, ताते पथायोग्य गुन धाना माफरु कर्म क्रिया करै है पै कर्मको उदय दशाम राखै है। अरु ममता न धारै है। ग्यान ध्यानकी सेगामै सामधान रहै है तेई स्यादवादी जीव भत्र ममुद्रके उपरि ह्व तिरि रहै है जिन्हको निगम स्यादवाद रूप महल मदिर्म हुइ रखा है ॥ १५ ॥

अथ मूढ विचक्षण का वर्णन ॥ सर्ग ३१ सा ॥

जैसे मतवारो कोऊ कहै और करै और,

तैसे मूढ प्राणी विपरीति ता धरतु है ।

अशुभ करम बध करन वपानै मानै,

मुगतिके हेतु शुभ रीति आचरतु है ॥

अन्तर सुदृष्टि भई मूढता विसरि गई,
 ग्यानको उद्योत भ्रम तिमिर हरतु है ॥
 कारन सौ भिन्न रहै आत्म स्वरूप गहै,
 अनुभौ आरम्भ रस कौतुक करतु है ॥१६॥

अर्थ—अब मूढकी क्रियाको अरु विचक्षणकी क्रियाको वर्णन कर रहे हैं—जैसे फोड़ मतपारी मनुष्य है सो कहै कछु और, करै कछु और, तैसे जो मूढ जीव सो उलटो ही भाव धारै है । अगुम कर्मकौतौ अधकौ कारन बपानै, अरु मानै । और सुगति कौ हेतु कारन शुभरीतिभौ, शुभक्रिया आचरै है । अब ग्यानीकी क्रिया कहै । अन्तर सुदृष्टि भई ताँत मूढता विसरि गई, अरु ग्यानको उद्योत भयो, तब भ्रमरूप तिमिर कहत अधकार है ताकी हरतु है सुगतिकौ कारन जो शुभक्रिया तामौ भिन्न रहै, ममता न धारै, अरु आत्मा हीको स्वरूप गहै, आत्माके अनुभवकौ आरम्भकौ जो या रसकौ कौतुक है ताकी करतु है ॥ १६ ॥

इतिथी समयसार नाटक निर्ये पाप पुण्यकी एकताको बालोद्य रूप वचनिका सपूर्ण भई ॥

इति पाप पुण्य एकताधिकार समाप्त ॥

आश्रम द्वार

(५)

प्रतिज्ञा (दोहरा)

पाप पुन्यकी एकता, वरनी अगम अनूप ।

अत्र आश्रम अधिकार कछु, कहो अध्यात्म रूप ।१।

अर्थ—पाप पुन्यकी एकता है सो जगम है, अनूप है, सो चरनी टिपाई । अत्र कछु अध्यात्म रूप आश्रमकी अधिकार है सो कहौ हो ॥ १ ॥

अथ ज्ञानरत्न वर्णन ॥ सप्तैया ३१ सा ॥

जैते जगवासी जोत्र थावर जगमरुत,

तेते निज वसि करि राखे बल तोरिकै ।

महा अभिमानो ऐसो आसूत्र अगाध जोधा,

रोपि रत थम्भ ठाढो भयो मूछ मोरिकै ॥

आयौ तिहि थानक अचानक परम-धाम,

ग्यान नाम सुभट सवायो-बल फोरिकै ।

आस्रव पछास्यौ रन थम्भ तोरि डार्यो ताहि,

निरखि बनारसी नमत करि जोरि कै ॥ २

अर्थ—अब आस्रव सुभटकी भाजनहार ग्यान सुभट ता
नमस्कार करे हैं—जैसे धार प्रमत्त जगत्वासी जीव ता
सहज बल तोरि कै तेते जीव जिनि आस्रव जो धरि अपनै ब
करि रायै है, ऐसी महा अभिमानी जगत्में आस्रव रूपी अग
जो धार है, सौ रन थम्भ रोपिके मूछ मोरि के ठाडो भयो
कहे हैं । जगत्में मोको जीतनहारी कोऊ नाहीं । ति
थानकर्म अचानक ही परम धाम कहैत अति तेजस्वी ग्य
नाम सुभट, या आस्रव जोधाको प्रतिपक्षी आस्रव जोधा
लरिबैको सयायो बल फारिके आयो, वा आस्रव जोधा
पछारि डार्यो वाको रन थम्भ तोरि डार्यो, वा ग्यान सुभट
निरखि कै बनारसीदास हाथ जोरि कै नमस्कार करै है ॥ २

अथ द्विविध आश्रव लक्षण तथा ज्ञान लक्षण व
॥ मवैया २३ सा ॥

दर्शित आश्रव सो कहियै जहि,

पुगल जीव प्रदेश गरासै

भावित आश्रय सो कहियै जहि,

राग विरोध विमोह विकासै ॥

सम्यक पद्धति सो कहिये जहि,

द्वित भावित आश्रय नासै ।

ग्यान-कला प्रगटै तिहिठौ अरु,

अन्तर वाहिर और न भासै ॥३॥

अथ—अथ द्रव्यरूपी आश्रय अरु भावरूपी आश्रय
 को लक्षण कहै है तैम सम्यक ज्ञानको भी
 लक्षण कहै है—जहा पुद्गल द्रव्य है सो जीवके
 प्रदेशको प्राप्त, इतने निगलि जाइ सोतौ द्वित आश्रय कहियै ।
 अरु जहा द्वित आश्रयके प्रसंगे आत्मामे राग द्वेष मोहको विकास
 होइ, सोतौ भावित आश्रय करि जानियै । अरु आत्मामे सम्यक
 पद्धतिमे सम्यक स्वरूप वाको कहियै, जहा द्वित आश्रय अरु
 भावित आश्रयको नास होइ, अरु तिहि ठौर । सम्यक
 पद्धति त्रिपै ग्यानकी कला प्रगटै । तत अन्तर भावाश्रयमे,
 वाहिर और सो भासै नहीं, सम्यक

अथ ग्याता लक्षण ॥ चौपाई ॥

जो दरवाश्रव रूप न होई, जहि भावाश्रव
भाव न कोई ।

जाकी दशा ज्ञानमय कहिये, सो ग्यातार निराश्रव
कहिये ॥ ४ ॥

अर्थ—अन मम्यक स्वरूप धनी ग्याता ताकी लक्षण कहै है
—जो द्रव्याश्रवके स्वरूपमें होइ नहीं अरु जहा भावाश्रव फोड़
भाज कोऊ नाही, अरु जाकी दशा ज्ञानमई पाइयै, सोई जोन
ग्यातार कहतैं ग्यानी । अरु निराश्रव कहतैं आश्रव रहित
कहिये ॥ ४ ॥

अथ अन ग्यानको सामर्थपनौ ताको वर्नन ॥ सत्रैया ३१ मा ॥

जेते मनगोचर प्रगट बुद्धि पूरवक,
तिन्ह परिनामनिकी ममता हरतु है ।
मनसौ अगोचर अतुद्धि पूरवक भाउ,
तिन्हकै त्रिनाशरैको उहिम धरतु है ॥

याहो भाति परपरिनतिकौ पतन करै,

मोखकौ जतन करै भौजल तरतु हे ।

ऐसो ग्यानवत तै निराश्रव कहावै सदा,

जिन्हकौ सुजस सुविचच्छन करतु हे ॥५॥

अर्थ अय ग्यानकौ ममथाई तै निराश्रवपनी दिपावै है—जेते परिनाम प्रगट मनगोचर है, इतने जिन्ह परिनामनकौ मनमें समारै है । अरु बुद्धि पूरक कहता अपनी अह बुद्धितै जो उपनै अशुद्ध परिनामनिको ममता छाडै है । अरु जे भाव मनमा आगोचर कहतै जाकौ स्वरूप मनमो भासै नहीं । अरु अनुद्धि पूरक कहतै तिनकौ बुद्धिकौ प्रचार लगै नहीं, ऐसै अनागत काळके जो अशुद्ध परिनाम ताके निनामनैकौ उद्यम धरै है । याहो भाति करनै परपरिनतिकौ कहतै परवस्तुकौ जा परिनाम अतीत कालमें भयो है, वर्तमान-कालमें है, अनागत कालमें होइगौ, ताकौ पतन करै, या परिनतिमौ मोख कहतै अटिगौ, ताकौ जतन करै । ऐस जो ग्यानवत प्राणी है । तैमै सदा निराश्रव कहावै । जिन्हकौ सुजस स्तुति बखानक सुनिच्छन कहतै पंडित पुरुष स्तुति करै है ॥ ५ ॥

अथ शिष्य प्रश्न कथन ॥ सर्वथा २३ सा ॥

ज्यो जगमें विचरै मतिमन्द,
 सुछद सदा वरतै बुध तैसी ।
 चचल चित्त असजत-वैन,
 सरीर स्नेह जथा वत जैसी ॥
 भोज सयोग परिग्रह सग्रह,
 मोह विलास करै जहि ऐसै ।
 पृछत शिष्य आचारिजको यहू,
 सम्यक्वत निराश्रव कैसे ॥ ६ ॥

अर्थ—अथ ग्यानीको निराश्रय कथा, परिशिष्य प्रश्न करै है--जैसे मतिमद कहतें अग्यानी, जगमें स्वच्छद कहतै आपनदाई वचें, तैसी बुध कहतै पंडित साऊ सदा तैसी । तित वचें, सोई भाति कहै है, चचल चित्तपनै रहै, अरु असजत वैन कहतै अविचारै वचन बोलै, अरु शरीर परि स्नेह सोऊ जैसै जयावत कहतै प्रवचामै, अरु अग्यानी को नाई भोग सजोग रापै है, अरु परिग्रहको सग्रह करै, अरु जिह ग्यान की अग्रभ्यामै मोहको विलास ऐसै ही करै, अग्यानीकी,

ग्यानीको एरूपी भाति देखिऊँ आचायेकी बूझै है ? जहां
स्वामी ! यह मन्मथमत मनुष्य निराश्रय कैसै कहियै ॥ ६ ॥

अब गुरु उत्तर कथन ॥ मरैया ३१ सा ॥

पूरव अवस्था जे कर्म-बध कीने अब,

तेई उदै आइ नाना भाति रस देत हैं ।

केई शुभ साता केई अशुभ असाता-रूप,

दुहौ सौ न राग न विरोध समचेत है ॥

जथाजोग क्रिया करै फलकी न इच्छा धरै,

जीवन मुकतिकी विरद गहि लेतु है ।

यानै ग्यानरतकी न आश्रय कहत कोऊ,

मुग्ध तासौ न्यारे भए अशुद्धता समेत है । ७ ।

अथ—अब ऐसै प्रश्न परि गुरु उत्तर कहै हैं—पूर्वकालमें

अग्यान अवस्थाम जे जे कर्मबध कीन, अब वर्तमान-कालमें

तेई कर्म उदय आइऊँ नाना भातिकी रस देत हैं, ता कर्मन त्रिपै

केई शुभ कर्म सातारूप हैं, केई अशुभ कर्म असातारूप है,

यहा ज्ञानीके दुहौ कर्मसौं राग नहीं, अरु विरोध नहीं, यातें

समचित्त है । अरु यथायोग्य कहतें उदै + करै

पै फलकी इच्छा धरै नहीं । अरु जीम तेह मुक्ति भयो ऐमै
 है । ताँतें जीवन मुगतिकौ विरुद्ध गहि राष है । याही रीतिँतें
 ग्यानप्रत मनुष्यकौ आश्रव कोऊ रहत नाही । मुग्ध तासौ
 न्यारे भए । इतनै अज्ञान तासौ न्यार भए । अरु पुद्वता
 ममेत है ॥ ७ ॥

अथ रागद्वेष लक्षण तथा मोह लक्षण तथा ग्यान लक्षण दोहरा
 जो हित-भाव सु राग है, अनहित-भाव विरोध ।
 भ्रामक-भाव विमोह है, निगमल भाव सुबोध ॥८॥

अर्थ—अथ रागद्वेषको लक्षण कहै हैं—तैसे मोहको
 लक्षण कहै हैं, तैसे ग्यानको लक्षण कहै जोतौ हित भाव है
 सोतौ राग कहियै, अरु अनहित भाव सो विरोध कहिए, अरु
 जो निर्मल भाव सो बोध कहत ग्यान कहियै ॥ ८ ॥

अथ रागद्वेष ऋथन ॥ दोहरा ॥

राग विरोध विमोह मल, येई आश्रव मूल ।

येई कर्म बढाईकै, करै धरमकी भूल ॥ ९ ॥

अर्थ—अथ रागद्वेषको स्वरूप कहै है—रागद्वेष विमोह
 है सो आत्माको मल है, येई दोष आश्रवको मूल है । येई
 रागद्वेष मोह है सो कर्मको बढाईके धरमको भुलाइये है ॥९॥

अथ ग्याता निराश्रय कथन ॥ दोहरा ॥

जहा न रागादिक दशा, सौ सम्यक परिनाम ।
यातैं सम्यकवत को कह्यौ निराश्रय नाम ॥ १० ॥

अर्थ—अन सोई सम्यक परिनाम कहिये, याहीतैं सम्यक-
वत मनुष्यको निराश्रयी कह्यौ ॥ १० ॥

अथ ग्यान विलास कथन ॥ मंत्रया ३१ सा ॥

जे केई निकट-भव्यरासी जगवासी जाव,
मिथ्यामत भेदि ग्यान भाव परिणहै ।
जिन्हिकी सुदिष्टिमैं न राग द्वेष मोहक हैं,
विमल विलोकनिमें तीन्यौ जीति लये हे ॥
तजि परमाद घट सोत्रिजे निरोध जोग,
शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलि गये हे ।
तेई वध पद्धति विडारि पर सग डारि,
आपमें मगन हूँके आपरूप भये है ॥ ११ ॥

अर्थ—अन ऐन ग्याता निराश्रयपरनाम विलास कहै हैं तसै
कहै हैं—जे केई भव्य राशि माहिले जगप्रनामी जीव है, भव्य-
त्व परिपाकतैं निकट भए है, सौ मिथ्यामत भेदिके अपनौ

अथ शुद्धनय प्रशसा ॥ दोहरा ॥

यहु निचोर या प्रथकी, यह परम-रस पोख ।
तजै शुद्धनय बध है, गहै शुद्धनय मोख ॥१३॥

अर्थ—अप ग्यानके शुद्धपनाकी प्रशसा या समस्त ग्रन्थ
को यौही रहस्य है, अरु योही उत्कृष्ट रसकी पोख है । शुद्ध-
ताको नय रीति छाड्यो तो बध है, शुद्धताकी नय रीति
गह्यो तो मोख है ॥ १३ ॥

अथ जीव विलास बरनन ॥ सर्वथा २१ सा ॥

करमके चक्रमैँ फिरत जगवासी जीव,
ह्वै रह्यो बहिरमुख व्यापत विषमता ।
अन्तर सुमति आई विमल बडाई पाई,
पुगलसौ प्रीति टूटी छुटी माया ममता ।
शुद्धनय निवास कीन्हो अनुभौ अभ्यास लीन्हो,
ध्रमभाउ छाडि दीन्हो लीन्हो चित समता ।
अनादि अनत अविकल्प अचल ऐसो,
पद अविलब अवलोकै राम रमता ॥१४॥

अर्थ—अब दोउ नयमें जीवकों विलास दिखावें हैं—
 चौदह राजु लोकमें कर्मको चक्र कहते कटरु फिर रखा है ।
 तामें जगतवासी जीव हूँ फिर रखा है । अरु या फिरिवेमें
 जीव विपमता व्याप्त भयो, जो कबहों इष्ट सयोगी, कबहों
 अनिष्ट सयोगी भयो, तातें बहिर्मुख हूँ रखा । नो चाह
 निषय भोगको ही ग्राहक भयो, अन्तर्दृष्टिआँ आत्मा न
 जान्यो । एतेमें अन्तर सुमति उपनी, तातें अपनी निर्मल
 प्रभुता पाई, तब पर वस्तु पुद्गलमाँ श्रोति दूटी । इतने
 काललाँ पुद्गलसाँ, माया ममता ही, सौ हूँ । तैमें शुद्ध नय
 करि आत्माको स्वरूप कह्यो, तैमो शुद्ध नय में आप निवास
 कीनो, अरु आत्मा स्वरूप में उपयोग राकिँ, अनुभव अभ्यास
 लीनो, याहीतें भ्रम-भान छाडि दीनो । अरु समाधिमें मन
 भीजि रह्यो । तबतें अनादि अनन्त काललाँ जा स्वरूपमें कोऊ
 और निरुल्प न पाइय । ऐमो अपना अचल पद अविलचिकँ
 अपना जो रमता राम है ताकाँ अवगर्क, दस ॥ १४ ॥

अथ सम्यक्त प्रशसा कथन ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

जाके परगास मै न दीसे राग द्वेष मोह,
 आश्रव मिटन नहि बंधको ॥

तिहो-काल जामें प्रतिबिंबित अनन्तरूप,

आपुहो अनंत सत्ता नततें सरस है ॥

भाव-श्रुत ग्यान परवान जो विचार वस्तु,

अनुभौ करै जहा न बानी कौ परस है ।

अतुल अखड अविचल अविनासी धाम,

चिदानंद नाम ऐसौ सम्यक दरस है ॥१५॥

अर्थ—अब आत्माकौ शुद्धपनी सौई सम्यग् दर्शन कहियै ताकी प्रशसा—जिनि शुद्ध आत्माके प्रकाश में रागद्वेष मोह न दीसै । अरु आश्रय न होइ । तातें बधकौ तरस कहतै लागिगौ सौई न होइ । अरु जिन शुद्ध आत्माके प्रकाशमें अनन्त रूप प्रतिबिंबित होतु है । अरु आपु स्वरूप हू अनंत है, अरु सत्तानत तँ सरस है, सो सत्तारूपी अनंत पदारथ है, ताहूतें सरस है । इतनै याकै पयाय संपत अधिक, अरु भाव श्रुत ग्यान प्रमान करके वस्तुकौ विचारि अपनी अनुभव करै । अरु जहा बानीकौ परस नाही । इतनै जो बचन गोचर नाहीं अनक्षर रूप अपनी अनुभव आप ही करै, ये सयोगी गुणम्यानक

की दशा है । याको तुलना नहीं, तातेँ अतुल है ताकी खडना
 नहीं, तातेँ अखड । ऐसौ अविचल, अविनासी धाम कहतेँ
 तेच सोई चिदानद स्वरूप ऐसोई स्वरूप सम्यग् दर्शन
 कहियै ॥ ॥ १५ ॥

इति समयसार नाटक विपै गालगोध रूप आश्रयद्वार मपूर्ण
 मयौ ॥

इति आश्रयाधिकार समाप्त ॥

संकर द्वार

(६)

प्रतिज्ञा (दोहरा)

आश्रवकी अधिकार यहू, कहीं जथावत जेमु ।
अव सवर वरनन करौ, सुनहु भविक धरि प्रेमु ॥१॥

अर्थ—यौ आश्रव अधिकार जिस भांति सौ जैसौ है तैसौ
ही क्यौ । अउ सगर तचकौ वरनन करोहौ, अहो ! भग्य
प्राणी प्रेम धरिकै सुनौ ! ॥१॥

अथ ग्यान वर्णन ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

आत्मको अहित अध्यात्म रहित ऐसौ,
आश्रम महात्म अखण्ड अण्डवत है ।
ताको विसतार गिलिधै को परगट भयौ,
ब्रह्म मडलको विकासी ब्रह्म ड मडवत है ॥
जामें सग रूप जो सबमें सबरूप ही मै,
सबनि सौ अलिप्त आकाश-खडवत हैं ॥

सोहै ग्यान भान शुद्ध संवरकौ भेष धरे,
ताकी रुचि रेखकौ हमारी डडवत है ॥ २ ॥

अर्थ—अन संवर द्वारकें आदि ग्यान वस्तुकौ नमस्कार करै—आत्माकौ अहितकारी अरु अध्यातम स्वरूप सौं रहित एसी आश्रवरूप महातम कहत महा अन्धकार, अपड पनै अण्डवत है ।

सत्र लोकि ढाकि रखौ है, ताको विसतार गिलिवैकौ जो ग्यान-सूर्य प्रगट भयो । ब्रह्माड कौसौ, सब लोकालोक कौ विनामी भयो, अरु ब्रह्माडकौ मडन जाहीतँ होतु है । अरु यामें सबरूप भामै है । अरु जो सत्रही स्वरूप सौं सबमें पाइ यै है । अरु सत्र मूर्तिक वस्तुसौं अलिप्त है, आकाश पडवत, सो आकाश खडको नाई है । सोई ग्यान रूपी मानु कहतँ सूर्य जो है । अरु शुद्ध संवरकौ भेष धरि रखौ है । ताकी रुचि रेखाकौ इतनै याके उदयकौ हमारी डण्डोत है, नमस्कार है ॥ २ ॥

अथ भेद ग्यान महिमा कथन ॥ मंत्रया २३ ॥

शुद्ध सुतेद अभेद अवाधित,
भेद-विज्ञान सतीछन आरा ।

अतर भेद सुभाव विभाउ,

करै जड़ चेतन रूप दुफारा ॥

सो जिन्हके उरमें उपज्यौ,

न रुचै तिन्हकी परसग-सहारा ॥

आत्मको अनुभो करते

हरपै परपै परमात्म धारा ॥३॥

अर्थ—अब जड़ चेतनको भेद ग्यान तैहो सम्भर रूपी परमात्माको पहिचानै सो कहै है—शुद्धपनै स्पच्छद कहतै आप अपनै न्यारै स्वरूप को दिषानहार, अभेद कहतै एक स्वरूप अनाधित सो काहू ग्रमाणांतरै अपडित, ऐसो भेद ग्यान सो तीक्ष्ण आरा है । छला कहतै आरतै, अन्तरात्मा में भेदन करि कै स्वाभाव अरु विभाव न्यारे करै । जड़रूपको चेतन रूपको दुफार करि दिषावै, सो ऐसो भेद विग्यान जिन्हके हियैमें उपज्यौ है तिहि जावकी पर वस्तुको सग सोई सहारा सीर रुचै नहीं । अरु तेई जीव अपनै स्वरूपको अनुभव करिकै यथार्थ पनै वेदिकै अन्तरात्मा में जो परमात्माको धार है ताकी परखै ॥ ३ ॥

अथ सम्यक् समर्थता कथन ॥ सर्वैया २३ ॥

जो कबहो यहु जीव पदारथ,

औसर पाड मिथ्यात मिटारै

सम्यक धार प्रवाह वहै गुन,

ग्यान उदै मुख उरथ धारै ॥

तो अभिअन्तर दर्वित भावित,

कर्मकलेश प्रवेश न पारै ।

आतम साधि अध्यातमके पथ,

पूरन हँ परब्रह्म कहावै ।४॥

अर्थ—अत्र भेद विग्यान है सो सम्यक् ग्यान है, ताकी समयोंई तै स्वरूप प्राप्ती निजीक है, यहु कहै है—जो ऊनहो सो जीव पदार्थ है सो यथा प्रवृत्तरुग्ण रूप औसर पाडकै मिथ्यात ग्रन्थि भेदिकै मिथ्यातकौ मिटारै, अरु सम्यकत्व रूप शुद्ध जल धाराकौ प्रवाह वहै अरु ग्यान गुनके उदयतै ऊर्द्ध मुपहँकै मृगति सनमुख दौर तो अभ्यन्तर जो दर्वित कर्म अरु भावित कर्म ताके क्लेशकौ प्रवेश न होइ । प्रकृति

प्रदश रूप कर्म सो द्रवित कर्म अरु रागद्वेषादिक सो भावित
 कर्म, ये दोऊ प्रवेश न करि सकै । अरु अघ्योतम कै पय
 मै आइकै, आतमाकौ साधिकै, अपने गुनमई पूरन हु
 कै परब्रह्म कहावै ॥ ४ ॥

अथ—सम्यग्दृष्टि महिमा कथन ॥ सर्वैया २३ ॥

भेदि मिथ्यात सुबेदि महारस,

भेद विज्ञान कला जिन्ह पाई

जो अपनी महिमा अवधारत,

त्याग करै उर सौज पराई

उद्धत रीति फुरी जिन्हकै घट,

होत निरतर जोति सर्वई

ते मतिमान सुवर्न समान

लगै तिन्ह कौन शुभाशुभ काई ॥५॥

अर्थ—अब सम्बरकौ कारन सम्यग्दृष्टि ही है ता
 महिमा कहै है—मिथ्यात ग्रन्थी भेदिकै अरु उपशम रूप म
 रस वेदिकै, जिन्हि बुद्धिवत भेद विग्यानकी कला पाई ।

नो भेद विग्यान तँ अपनौ स्वरूप पाडकै, अपनी ग्यान दशन चारित्र रूप महिमाकौ अपधारै । अरु उर कहतँ दीसँ पराई सौन कहतँ सामग्री त्याग करै । अरु जिन्हकौ घटमँ उद्धत रीति कहतँ देश विरतीको रीति फुरी, अरु निरन्तर तपतँ मवाई ज्योति जाकी होतु है । तेई मतिमानकहतँ बुद्धिवन्त कहियै अरु सुनन समान है, तिन्हकौ शुभ अशुभ कर्मरूप काई कहतँ काट न लगि सकै ॥ ५ ॥

अथ भेदग्यान महिमा कथन ॥ अडिछ छद ॥

भेदग्यान संवर-निदान निरदोष है,

संवरसौ निरजरा अनुक्रम मोक्ष है ।

भेदग्यान शिवमूल जगत महि मानियै,

यदपि हेय है तदपि उपादे जानियै ॥६॥

अर्थ—अथ संवर मूल भेदविज्ञान है सो परंपराये मोक्ष कौ कारण कहै है—भेदग्यान है सो निदोष संवर कौ निदान है, मूल कारण है, अरु निर्जरा मोक्षको कारण है । ऐसे अनुक्रम मोक्ष है । याही सँ भेदविग्यान है सो जगत्में मोक्ष नै प्रप्त मानियै । तँ ये शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा तँ भेद-

ग्यान है यहै त्याग आये है, तदपि कहतै तोपिण याकौ उपादेय
सो आदरिवा जोग्य जानियै ॥६॥

अथ स्वरूप कथन ॥ दोहरा ॥

भेद ग्यान तबलौ भलौ जबलौ मुक्ति न होय ।
परम ज्योति परगट जहा, तहाँ न विकसय कोय ॥७॥

अर्थ—अत्र स्वरूप पायै भेदग्यान कौ हेयनौ दिपायै
है—भेदग्यान तोलौ भलौ है जो लौ जीव कौ मुक्ति न होइ ।
जहा परम ज्योति प्रगट होइ तहा विकल्प कोऊ न रहै-तो
भेदग्यान कैसे रहै ॥७॥

अथ भेदग्यान महिमा कथन ॥ चौपाई ॥

भेद ग्यान सवर जिन्हि पायो,
सो चेतन शिवरूप कहायो ।
भेद ग्यान जिन्हकै घट नाहीं,
ते जड़ जीव अघै घट माहीं ॥८॥

अर्थ—अत्र भेदग्यान मुक्ति कौ उपाय यहु कहै है-जिन्हि
जीव भेदग्यान रूप सवर पायो, सोई चेतन शिवरूप कहायो,

क्ति रूप कहियै । जिन्हके घट में भेदग्यान नाई, तें मृन्
 यो घट पिंड में बधै ही रहै ॥८॥

अथ भेदग्यान कर्त्तव्य माहात्म्य ॥ टांढरा १॥

भेद ग्यान साबुन भयो, सम-रस निर्मल नै ।
 धोवी अन्तर आत्मा, धोवै निज मृग चर ॥ ८ ॥

अर्थ—भेदविज्ञान से ज्यों आणकू नै मृग चर
 कहै है—भेदविज्ञान मानुन भयो है, इन्द्रिय-मृग निर्मल, धोवी
 है, अरु अन्तरात्मा है सो धोवै, इन्द्रिय मृग चर है
 ताको धोवै ॥९॥

अथ भेदग्यान कर्त्तव्य अर्थ ॥ मंत्रा ३॥ ॥

जैसे रज-सोधा रज सोयिहै दूध काटे,

पावक कनक अदि, दाहन उपलको ।

परके गरभमै ज्यों दागि कृत्तक-फल,

नीर करै उजड़ निनारि डारै मलको ॥

दधिको मथैया मयि काटे जैसे माखनकी,

राजहस जैमै दूध पीवै त्यागि जलको ।

तैसे ज्ञानवत भेद ग्यानकी सकति साधि,

वैदै निज रूपति उछेदैं पर दलकौ ॥१०॥

अर्थ—अज जो भेद विग्यानकी क्रिया है मो कहै है—

जैसे कोऊ रज सोधा कहतै न्यारियो, सो रजको सोधि कै, सोनारूप प्रसुप्त द्रव्य को काटै । तहा पापक कहतैं अग्नि लगाइ कै कनक को काटिकै अरु उपल कहतैं पत्थर को जारि डारै । अरु एक और दृष्टान्त है—जैसे कुतक फल कहतै निर्मली, पक कै गरम में मो कर्दमके बीचि डारियै, तब वह कुतक-फल पानी को निर्मल करै, अरु मलको नितारि डारै । एक और दृष्टान्त—जैसे कोऊ दही को मथनहार दही को मथि कै मासन काटै । और दृष्टान्त दे है—जैसे राजहस पक्षी दूध पानी एकठै है पै दूध को पीवै अरु जल को त्यागै, तैसे ग्यानवत प्राणी भेद विग्यान की सकति साधि कै अपनी सपदा ग्यान हो को वैदै, अरु जो परदल कहतैं पुद्गल को कटक रागद्वेषादिक ताको उछेदै है ॥१०॥

अथ भेदग्यान मोक्ष मूलकथन ॥ छप्पय ॥

प्रगटि भेद विज्ञान आप गुन पर गुन जानै,

परि परिनतिकौ त्याग, शुद्ध अनुभव थिति ठानै ॥

करि अनुभव अभ्यास, सहज सवर परगासै ।

आश्रव द्वार निरोध, कर्म-धन तिमिर विनासै ॥

छाय करि विभाव समभाव भजि

निरविकल्प निज पद गहै ।

निर्मल विशुद्ध सासुत सुथिर

परम अतीन्द्रिय सुख लहै ॥ ११ ॥

अर्थ—अस सवर द्वारके अन्तै भेदग्यान ही कौ ग्यान मूल कहै है—भेदग्यान है सो तो प्रगट हो अपनै गुन को अरु परायै गुन कौ जानै है तर तैं पर उन्तुमै जो परिनिमन है, ताकौ त्याग करै । अपनै शुद्ध अनुभवकौ ठहराय राखै । अरु अनुभवकौ अभ्यास करिकै स्वरूप सवरकौ प्रकाशै, आश्रव द्वार कौ निरोध करिकै कर्मरूप जो मेघ-अन्वकार है ताकौ विनाशै, तरतै विभाव कहतै मोहदशा ताकौ छय करिकै समभाव मो समाधि भजै, तरतै जहा कोउ विकल्प नाहिं ऐसी कोऊ निर्विकल्प अपनौ पद स्थानक है सोई गहै तरतै जिहि सुखमै मल नाही । याही तैं विशुद्ध अनन्त बाललौ, एकरूपी, तारतै शायत थिर, ऐमौ जो अतीन्द्रिय कहतै इन्द्रिय गोचर नहीं सोई सुख पावै ॥११॥

इति श्रीसमयमार नाटक विषै बालघोररूप सवरद्वार सम्पूर्ण भयो ।

इति सवरद्वार समाप्त ॥

निर्जरा द्वार

(७)

प्रतिज्ञा (दोहरा)

वरनी सवरकी दशा,
जथा जुगति परवानु
मुकति वितरनी निर्जरा,
मुनहु भविक धरि कानु ॥१॥

अर्थ—अत्र सगररूपकी दशा कही, जैसो जुगति अरु प्रमान
लियै है । अत्र मुगतिकी वितरनी कहतै दैनहारी, ऐसी
निर्जरा है । अहो भव्यलोको ! तुम कान माडिकै मुनो ॥१॥

अथ निर्जरा स्वरूप कथन ॥ चौपाई-छंद ॥

जो सवर-पद पाय अनदैं,
जो पूरव कृत कर्म निक दैं ।
जो अफद हूँ वहरिन फदैं,
सो निरजरा बनारसि वदैं ॥२॥

अर्थ—अब निर्जरा कमी कहिये, ताकी स्वरूप कहै हैं—
जो अपना शुद्ध स्वरूप राखनौ सो सार कहिये । ताकी पद
पाइके आनन्द करै, अरु जो पूव कालमै कर्म क्रिये हैं ताकी
निकदै, जड ममेत उखारि डारै । अरु जो कर्म बंद मो छुटिके
बहुरि फट मै होइ नही, सोई आत्मा कै निर्जरा कहिये । वा
निर्जरा को ननारसीदास उटै है ॥२॥

अथ सम्यक्त महिमा कथन ॥ दोहरा ॥

महिमा सम्यक्त ग्यान की,
अरु विराग बल जोइ ।
क्रिया करत फल भुञ्जतै,
करम बध नहि होइ ॥३॥

अर्थ—यहा निर्जरा को कारण सम्यक्त हो है, यात
सम्यक्तकी महिमा कहै हैं—जो कर्म छुटै सो फेरि न उधै या
सम्यग् ग्यानकी महिमा है । अरु या सम्यग् ग्यानके मग
वैराग्य बलको जोग है ताते शुभ अशुभ क्रिया करत ही अरु
वाको फल भोगवत ही शृङ्खलानद्ध नये कर्मको बध होइ
नाही ॥३॥

अब सम्यक्त महिमा कथन ॥मर्यादा ३१ सा॥

जैसे भूप कौतुक स्वरूप करे नीच कर्म,
 कौतुकी कहावै तासो कौन कहे रक है
 जैसे विभचारिनी विचारै विभचार घाकों,
 जारही सौ प्रेम भरतासो चित बक है
 जैसे धाड़ बालक चुघाड़ करे लालि पालि,
 जानै ताहि और को जदपि वाकै अङ्क है
 तैसे ग्यानवत नाना भाति करतूति करै,
 किरियाकी भिन्नमानै यातै निफलङ्क है ॥१॥

अर्थ—अब सम्यक्त महिमामे क्रिया करत ही कर्म
 निर्जरा दृष्टात डिढारै हैं, जैसे कोऊ भूप कहत ईश्वर राज
 सो अपनै कौतुकी सरूपे कोऊ कसोई घटपट प्रमुख नीच
 करै है तो वह ऐसी क्रिया करतौ कौतुकी ही कहावै, पे व
 रक कौन कहै ? अरु जैसे कोऊ कुलटा व्यभिचारिनी है
 यद्यपि भत्तारके मग रहै हैं तोह भत्तार सौ चित
 नाहीं, मनम व्यभिचार ही विचारै, जो मैं औसर पाऊँ
 निक्लू, अरु वाकौ जारी सौ ही प्रेम है । औरों दृष्टात

जैम कोऊ धाइ है पराये बालकको चु धावै है, लालि पालि करै है, इतने खिलानै है अरु अङ्क कहतैं अपने उच्छगमैं लै बँठै है, जद्यपि ऐसी क्रिया करै है तौहू बालकको परायौ हो जानै । तमै ये तीन दृष्टात, ज्यौ सम्यग ज्ञानवन्त है सो नाना भाति की शुभ अशुभ क्रिया करै है राजा श्रेणिकको नाई, भरत चक्रवर्त्ति की नाई और हू साधुकी नाई, पै क्रियाको पुद्गल मयोग जानै, स्वरूप सौ भिन्न मानै, यातैं बन्ध कलरु लगै नाहीं ॥ ४ ॥

पुन सवैया ॥ ३१ ॥

जैसे निसि वासर कमल रहै पकही में,

पकज कहावै, पै न वाकै ढिग पक है ।

जैसे मन्त्रवादी विषधर सौ गहावै गात,

मन्त्रको सकति वाके धिना विष डक है ॥

जैसे जीभ गहे चिकनाई रहै रूखै अङ्क,

पानीमै कनक जैसे काई सौ अटङ्क है ।

तसै ग्यानवत नाना भाति करतूति ठानै,

किरियाको भिन्न मानै यातैं निकलङ्क है ॥५॥

अर्थ—औरी ही क्रिया जरि निकल्पना दिसावै, जैम कमल है सो रातदिन परु रहत र्दमहीमें रहै अरु ताहृत पकज ही रुहाय, पै कमल के दिग परुको फरम नाहीं। अरु जैम कोऊ गाहडो—मन्त्रवादी है सो अपने गाल कहते शरीरको सर्प सौं गहारै—कटावै, प वा मन्त्रादीके मन्त्रकी शक्ति सौं सर्पको डक विष सजोग रहित होइ। जैम जीभ इन्द्रो घृत, दधी प्रमृत्त की चिकनाई गहै हे, अरु अपने अग रूपी रहै। और एक दृष्टात है कनर कहते सुर्य पानी में रहै पै काई कहते काटते अटक रहै। तैसी भाति ग्यानउन्त प्राणी नाना भाति क्रिया करै पै क्रियाका पुद्गल मयोगिनी जानि आत्म स्वरूप सौं भिन्न मानै। या ही तै कर्म उन्ध कलक तै न्यारौ रहै ॥ ५ ॥

अथ ग्यान वैराग्य शक्ति वर्नन ॥ सोरठा ॥

पुत्र उठै सम्बन्ध, विषे भोगवै समकृती ।

करै न नूतन बध, महिमा ग्यान विराग की ॥६॥

अर्थ—अब विषय भोगत ही कर्म बन्धन होइ, सो ग्यान वैराग्यकी शक्ति दिसावै है—पूर्व मचित कर्म उदय आयौ तातै मन्त्रि ताकै सम्बन्ध सौं विषय भोगवै है, अरु नूतन बध

सौ नए कर्मको ग्रह करै नाही । या सम्यग् ग्यान अरु वैराग्य
को महिमा शक्ति है ॥ ६ ॥

अथ ग्याताकी व्यवस्था कथन ॥ मन्त्रेया २३ मा ॥

सम्यक्वत सदा उर अन्तर,

ग्यान विराग उभै गुन धारै ।

जासु प्रभाव लखै निज लच्छन,

जीव अजीव दशा निरवारै ॥

आत्मको अनुभौ करि ह्वै थिर,

आपु तरै अरु औरनि तारै ।

साधि सुदर्व लहै शिव-सर्म,

स कर्म उपाधि विथा वमि डारै ॥७॥

अर्थ—अब जो ग्याता होइ सो सम्यग् ग्यान अरु विषय
सौ अरुचि ये दोनों साथि धारै यहु कहै है—समकित्ती होइ
सो सदा अपने हियामें ग्यान अरु वैराग्य ये दोनु गुन धारै,
निहि दोनोके प्रमान तैं अपनी लक्षण ग्यायरूपनौ लखिकै
जीव अजीव दशा सो जीव अजीवको स्वरूप निरवारै, सो

न्यारे न्यारे लग्ये, ता पीठे आत्मा को यथार्थपनी वेदिके
 आत्मिक स्वभासमें धिर हुड रहै । आपु तर अरु सत्य उपस्थ
 से औरनिकी तारै, ऐसी भात स्वद्रव्यकी साधि इतने आन
 द्रव्यकी साधिके शिर मर्म कहत मोक्ष मुख सोई लहै । अ
 कर्म उपाधि सहित यथा जोहै ताकी वमि डारै ॥७॥

अथ मिथ्यादृष्टि व्यवस्था कथन ॥सर्गैया २३ सा ॥

जो नर सम्यकवत कहावत,

सम्यक ग्यान कला नहि जागी ।

आत्म अज्ञ अवब विचारत,

धारत सग कहै हम त्यागी ॥

भेष धरै मुनिराज पटतर,

अन्तर मोह महानल दागी ।

सुन्न हियै करतूति करै परि,

सो सठ जीव न होइ विरागी ॥८॥

अर्थ—अव विषयकी अरुचि बिना ग्यान हु नि फल उ
 एजात पक्षत बाकी मिथ्यादृष्टी ठहरावै—जो मनुष्य सम्य

वत तौ आप कहानै अरु सम्यग्ग्यान की कला न जागी, तातैं
 आत्माकै अग निपै बध कौ निचारै नही, आत्मा अबध है ऐसे
 मानै । तातैं बाह्य अम्यतर सजोग धारै । कोऊ निश्चय नवकौ
 पक्ष लै करिकै कहै हम त्यागी है, मुनिराज की-सी पदतर
 कहतै—भाति भेष धारै, अरु अतरम मोहमहानल कहतै मोहरूप
 महा अग्नि दागो रहै । विषय तें वैरागी न भयौ, तातैं हिया
 मुन्न थकौ मुनिराज की सी क्रिया करै पै सो जीव शठ मूर्ख ही
 कहावै, वैरागी होइ नाही ॥८॥

अथ मृद क्रिया वर्नन ॥ सर्वैया २३ सा ॥

ग्रथ-रचै चरचै शुभ पंथ,
 लखै जगमै विवहार सु पत्ता ।
 साधि संतोष अराधि निरजन,
 देइ सु सीख न लेइ अदत्ता ॥
 नग धरग फिरै तजि सग,
 छरै सर-ग मुधा रस मत्ता ।
 ये करतूति करै सठ पै,
 समुझै न अनात्म आत्म सत्ता ॥९॥

अर्थ—अब एती क्रिया कहत हूं मूढ कहावै सो कहै हैं—
 ग्रंथ रचना करै, भलामार्गकी चरचा करै, भला मार्गको लखै,
 जगामे व्यवहार मार्गमें प्राप्त थकौ रहै, सतोप साधिक निरजन
 को आराधै, लौगनिको भली मोख देइ, अदत्ता दान लेइ,
 परिग्रह भग तजिकै नग धरग फिरै, सी दिगजर थमौ फिरै,
 अरु मुधा कहतै मुग्धपनै अपनै रसमं मानै मर्याङ्ग छके रहै
 है । ऐसी ऐसी क्रिया शठ होइ सोऊ करैहै, पै अनात्म सत्ता
 सो आत्मातैं न्यारी जो मोह गहलता है । अरु आत्म सत्ता,
 सो शुद्ध ग्यानपनाको सत्ता न्यारी न्यारी समुझै नही ॥६॥

पुन मर्या २३ मा ॥

ध्यान धरै कर इन्द्रिय निग्रह,
 विग्रह सौं न गिनै निज मत्ता ।
 त्यागि विभूति वभूति मढ़ै तन,
 जोग गहै भव भोग विरत्ता ।
 मौन रहै लहि मद कपाय,
 सहै वध वधन होइ न तत्ता ।

ए करतूति करै सठ पै,

समुझै न अनातम आतम सत्ता ॥१०॥

अर्थ—औरा ही मूढ क्रिया कहै है—ध्यान धरै इन्द्रियकौ टमन करै विग्रह कहत शरीर सौं अपनौ नातौ सबध गिनै नही विभूति कहियै, सपदा त्यागै, बभूति कहतै भस्मी शरीर पिपै लपेटै, योग मार्ग गहै, ममार भोग सा विरक्त रहै, मौनपनमें रहै, कपायकौ मदपनोई लहै, बध बधन ही सहै, पै ताता न होड क्रोधादिरु न करै । एती क्रिया शठ मूर्ख होइ सोऊ करै पै अनातम सत्ता सौं, कमादिक परभाजकी सत्ता अरु आतम सत्ता सौं आत्माकौ मद्भूतपनौ ये समुझै नहीं ॥१०॥

पुनर्मूढता वर्नन ॥ चौपाई छंद ॥

जो विनु ग्यानु क्रिया अवगाहै,

जो विनु क्रिया मोख-पद चाहै ।

जो विनु मोख कहै में सुखिया,

सो अजानु मूढनिमें सुखिया ॥११॥

अर्थ—अब मूढपनाकौ स्वरूप दिसारै है—जो ग्यान बिना क्रिया अवगाहै सो मूढ, अरु जो क्रिया बिना मोख पद वांछै

सोऊ मूढ । अरु जो मोक्ष पाया विना कहै म्है सुखी हौं सोऊ
जज्ञान कहियै, मूर्खनि मैं मुख्य कहियै ॥११॥

अथ महामूढ व्यवस्था कथन ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

जगवासी जीवनि सौं गुरु उपदेश कहैं,
तुम्है इहा सौवत अनत-काल बीतै हैं ।

जागौ ह्वै सुचेत चित समता समेत सुनौ,
केवल वचन जामै अक्ष-रस जीते है ॥

आगौ मेरे निकट बतावौ मै तिहारै गुन,
परम सुरस भरे करमसौं रीते है ।

अैसे वैन कहै गुरु तऊ ते न धरै उर,
मित्र कैसे पुत्र किधौ चित्र कैसे चीते है ॥१२॥

अर्थ—अथ कर्म सत्ता अरु आत्म सत्ताको जाके भिन्नता
न भासै सोइ महामूढ कहियै यहु कहै है—सज जगज बासी
जीवके हितरच्छल थकै गुरु ऐमौ उपदेश देह । अहो प्रानी !
तुम्है इहा जगत में मोह निद्रामं सोयत ही अनादि अनत काल
यात्यौ है, अत तौ चित्तर्म सचेत ह्वै जागौ । अरु समता

समेत थकै केवली के वचन सुनौ ! जिन केवली के वचनमें
 अक्षरस कहतैं इन्द्रियक विषय रस म्ये जोतै हँ । अरु मेरै
 निकट आयौ तौ तिहारे गुन बतायौं । पै गुन कौंस, परम सुरम
 मरै, उत्कृष्ट-रस भरै । अरु कर्मसौं रीते कहतैं न्यारे, ऐसे
 पैन गुरु कहै, तौदू ते प्रानी उरमे हियै मैं धरै नाहीं । तौ वह
 कर्म है ? मानौ मित्र कौंस पुत्र है, जो मित्र पुत्र तँ अपनाँ घर
 न रहै, ताकौ सीख काहे दीजै । अरु चित्रामके चितरे से है,
 चित्राम सौ सत्य क्रिया न हाइ ॥१२॥

अथ जीवकी सयन और जाग्रत दशा ॥ दोहरा ॥

एतै पर बहुरौ सुगुरु, बोलै वचन रसाल ।

सयनदशा जाग्रतदशा, कहौ दुहौकी चाल ॥१३॥

अर्थ—एतै परि सुगुरु बहुरौ ही सरस वचन बोलिक
 कहै—जीवकी एक सयन दशा एक जाग्रत दशा, ये दोनोंकी
 चाल कहै ॥१३॥

अथ सयन दशा वर्णन ॥ सर्ग्या ३१ सा ॥

काया चित्रसारीमें करम परजक भारी,

मायाकी सवारी सेज चादर कल्पना ।

सयन कर चेतन अचेतनता नींद लियै,
 मोहकी मरोरि यहै लोचनकी डपना ॥
 उदै बल जोर यहै श्वासकी सबद घोर,
 विषे सुख कारिजको दौरि यहै सुपना ।
 एसी मूढदशामै मगन रहै तिहूकाल,
 धावै भ्रमजालमें न पावै रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—अन सयन दशाकी व्यवस्था कहै है—शाया रूप चित्र
 सारी है याँ कर्मरूप भारी पर्यक है, या परि मायाकी सेज
 सवारी, कल्पना मो मनके विरल्य ये चादर है, या सामग्रीमें
 चेतन सयन करि रखा है । अचेतनाकी नींद लियै है, मोहका
 मरोरि यहै लोचनकी टाक आई । उदै बल जोर है सो श्वासकी
 घोर सबद है । अरु विषय सुखका दौरि धाव करनी सो यह
 सुपना पावै है । याही मूढ दशा सयन दशा कहियै । याँ मूढ
 जन हीं सो तिहों काल मगन हूँ कँ धावै है । अरु भ्रम जालमें
 घाँ है, पै अपना स्वरूप न पावै है ॥१४॥

अथ जाग्रत दशा वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

चित्रसारी न्यारी परजक न्यारौ सेज न्यारी,
 चादर भी न्यारी इहा झूठीमेरी थपना ।
 अतीत अस्थ्या सयन निद्रा वाही कौड पै,
 न विद्यमान पलकन यामै अब छपना ॥
 स्वास ओ सुपिन दोउ निद्राकी अलग बूझै,
 सूझै सत्र अग लखि आतम दरपना ।
 त्यागी भयौ चेतन अचेतनता भाव त्यागि,
 भाले दृष्टि खोलिकै सभालै रूप अपना ॥१५॥

अर्थ—अत्र जीवनी जाग्रत दशाको वर्नन करै है—आत्मा ग्यान पायै काया चित्रमारी न्यारी देखै, अरु धर्म पर्यक न्यारी देखै, मायारूप-सेज न्यारी देखै, कल्पना रूप चादर न्यागी देखै, अमै जानै यह ठौर मेरी थपना झूठी है । अतीत अस्थ्यामै सयनदशामै निद्राको धरनहार, पै कौऊ और स्वरूप ही हो, विद्यमान कालमै वा अस्थ्या नाहीं, अत्र फलमात्र या अस्थ्या मै मोहि छिपवौ नाहीं । स्वाम, जो सुपिन ये दोउ निद्राको अलग सौं सयोग सौं, बूझै आतमारूप आरीमामै आत्मारु अद्भ सजही छुझै । ऐसी भाति अचेतनता

सयन करै चेतन अचेतनता नींद लियै,
 मोहकी मरोरि यहै लोचनको ढपना ॥
 उदै बल जौर यहै म्वासको सबद घोर,
 विषे सुख कारिजको दौरि यहै सुपना ।
 एसी मूढदशामै मगन रहै तिहूकाल,
 धारै भ्रमजालमै न पावै रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—अब सयन दशाकी व्यवस्था कहै है—आया रूप चि-
 सारी है याम् कर्मरूप भारी पर्यन्त है, या परि भायाकी से-
 सगरी, कल्पना मो मनके विमल्य ये चादर है, या मामग्री-
 चेतन सयन करि रखा है । अचेतनाकी नींद लियै है, मोहकी
 मरोरि यहै लोचनकी ढाक आई । उदै बल जार है सो म्वासको
 घोर सबद है । अरु रिषय सुखका दौरि धार करनी सो य-
 सुपना पारै है । यार्हा मूढ दशा मयन दशा कहियै । याम् मू-
 जन होइ सो तिहो काल मगन हुकै धारै है । अरु भ्रम, जाल-
 धारै है, प अपना स्वरूप न पावै है ॥१४॥

अथ-जाग्रत दशा वर्नन ॥ सत्रैषा ३१ सा ॥

चित्रसारी न्यारी परजक न्यारौ सेज न्यारी,
चादर भी न्यारी इहा झूठीमेरी थपना ।

अतीत अस्थि सयन निद्रा वाही कौड पै,
न विद्यमान पलकन यामे अत्र छपना ॥

स्वास ओ सुपिन दोउ निद्राकी अलग बूझै,
सूझै सब अग लखि आतम दरपना ।

त्यागी भयौ चेतन अचेतनता भाव त्यागि,
भालै दृष्टि खोलिकै सभालै रूप अपना ॥१५॥

अर्थ—अत्र जीवमी जाग्रत दशाको वर्नन करै है—आत्मा ग्यान पायै काया चित्रमारी न्यारी देखै, अरु कर्म पर्यक न्यारी देखै, मायारूप-सेज न्यारो देखै, फल्पना रूप चादर न्यारी देखै, जैसे जानै यह ठौर मेरी थपना झूठी है । अतीत अस्थिमै सयनदशामे निद्राको धरनहार, पै कोऊ और स्वरूप ही हो, विद्यमान कालमे वा अस्थि नाहीं, अत्र फलमात्र वा अस्थि मे मोहि छिपनी नाहीं । स्वास, ओ सुपिन ये दोउ निद्राको अलग सी सयोग सौं, बूझै आतमारूप आरीमामे आत्मारु अद्भ मयही सुझै । ऐसे भाति अचेतनता

धन करै चेतन अचेतनता नींद लियै,
 मोहकी मरोरि यहै लोचनको ढपना ॥
 टै बल जोर यहै स्वासको सबद घोर,
 विषे सुख कारिजको दौरि यहै सुपना ।
 सो मूढदशामै मगन रहै तिहूकाल,
 धावै भ्रमजालमें न पावै रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—अब सयन दशाकी व्यवस्था कहै हैं—माया रूप चित्र
 मारी है याम कर्मरूप भारी पर्यक है, या परि मायाकी सेज
 मारी, रूपना मो मनके प्रियरूप ये चादर है, या सामग्रीमें
 चेतन सयन करि रखौ है । अचेतनाकी नींद लियै है, मोहका
 मरोरि यहै लोचनकी ढाक आई । उदै बल जोर है सो स्वासको
 घोर सबद है । अरु विषय सुखका दौरि धाव करनी सो बहु
 सुपना पावै है । याही मूढ दशा सयन दशा कहियै । याम मूढ
 जन होइ सो तिहों काल मगन हूँकै धावै है । अरु भ्रम जालमें
 धावै है, प अपना स्वरूप न पावै है ॥१४॥

अथ-जाग्रत दशा वर्णन ॥ सत्रैया ३१ सा ॥

चित्रसारी न्यारी परजक न्यारौ सेज न्यारी,
 चादर भी न्यारी इहां झूठीमेरी थपना ।
 अतीत अस्थ्या सयन निद्रा वाही कौउ पै,
 न विद्यमान पलकन यामै अब छपना ॥
 स्वास औ सुपिन दोउ निद्राकी अलग बूझै,
 सूझै सय अग लखि आत्म दरपना ।
 त्यागी भयौ चेतन अचेतनता भाव त्यागि,
 भाल दृष्टि खोलिकै सभालै रूप अपना ॥१५॥

अर्थ—अत्र जीवनी जाग्रत दशाको वर्णन करै है—आत्मा ग्यान पायै काया चित्रमारी न्यारी देखै, अरु कर्म पर्यक न्यारी देखै, मायारूप-सेज न्यारी देखै, रूपना रूप चादर न्यारी देखै, अमै जानै यह ठौर मेरी थपना झूठी है । अतीत अवस्थामै सयनदशाम निद्राको धरनहार, पै कोऊ और स्वरूप हो हो, विद्यमान कालमें वा अवस्था नाहीं, अत्र फलमात्र वा अवस्था में मोहि छिपवा नाहीं । स्वास, औ सुपिन ये दोउ निद्राकी अलग माँ संयोग सौं, बूझै आत्मारूप आरोग्यमै आत्मारुँ अन्न सबही छूँ । ऐसी भाति अचेतनता

थन कर चेतन अचेतनता नींद लियै,

मोहकी मरोरि यहै लोचनकौ ढपना ॥

ढै बल जोर यहै स्वासकौ सबद घोर,

विषै सुख कारिजको दौगि यहै सुपना ।

एसो मूढदशामै भगन रहै तिहकाल,

धानै भ्रमजालमें न पावै रूप अपना ॥१४॥

अर्थ—अब सयन दशाकी व्यवस्था कहै हैं—काया रूप चित्र सारी है याम् कर्मरूप भागी पर्यन्त है, या परि मायाकी सेज सारी, कल्पना मो मनके विमल्य ये चादर है, या मामग्रोमें न सयन करि रह्यो है । अचेतनाकी नींद लियै है, मोहकारि यहै लोचनकी ढाक आइ । उढै बल जोर है मो स्वासकौ सबद है । अरु विषय सुखका दौरि धान करनी सौ यहै सुपना पावै है । याही मूढ दशा सयन दशा कहियै । याम् मूढ न होइ सो तिहो काल भगन ह्यै कौ धानै है । अरु भ्रम जालमें नै है, प अपना स्वरूप न पावै है ॥१४॥

अथ-जाग्रत दशा वर्णन ॥ सर्वथा ३१ मा ॥

चित्रसारी न्यारी परजक न्यारी सेज न्यारी,
चादर भी न्यारी डहा झूठीमेरी थपना ।

अतीत अस्थ्या सयन निद्रा वाही कौड पै,
न विद्यमान पलकन यामें अब छपना ॥

स्वास औ सुपिन दोउ निद्राकी अलग बृष्ण,
सूक्ष्म सय अग लखि आत्म दरपना ।

त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव त्यागि,
भालं दृष्टि खोलिकै सभालै रूप अपना ॥१५॥

उप-अथ जीवनी जाग्रत दशाको वर्णन करै है—आत्मा
ग्यान पाय काया चित्रमारी न्यारी देखै, अरु कर्म पर्यक
न्यारी देखै, मायारूप-सेज न्यारी देखै, रूपना रूप चादर
न्यारी देखै, जैसे जानै यह ठौर मेरो थपना झूठी है । अतीत
अस्थ्यामें सयनदशामें निद्राको घरनहार, पै कोऊ और स्वरूप
ही हा, विद्यमान कालमें वा अस्थ्या नाहीं, अथ फलमात्र
या अस्थ्या में मोहि छिप्यो नाही । स्वास, औ सुपिन
ये दोउ निद्राको अलग सौ सयोग सौ, बृष्ण आत्मारूप
आरीमामें आत्मारु अद्भ सगही सुझै । ऐसी भाति अचेतनता

हिंदकौ त्याग करि चेतन त्यागी भयी, तब अपनी दृष्टि
जोलिकँ भालै देखै, अरु अपना रूप समालै ॥१५॥

अथ पुन सुगुरु शिक्षा कथन ॥ दोहरा ॥

इहि विधि जे जागै पुरुष, ते सिवरूप सदीव ।
जे सोवहि ससारमै, ते जगवासी जीव ॥१६॥

अर्थ—अब औरोही मद्गुरु शिक्षा वचन कहै हैं—इहि
भाति जे पुरुष जागे रहै नेतौ सदा काल निपै सिवरूप कहत
मोक्षरूपी कहिये । अरु जे ससारमें सोवै हैं ते जगवासी जीव
कहिये ॥१६॥

अथ आत्मद्रव्य स्तुति कथन ॥ दोहरा ॥

जो पद भौ पद भय हरै, सो पद सेउ अनूप ।
जिहि पद परसत और पद, लगै आपदा-रूप ॥१७॥

अर्थ—अब मोक्ष पद ही उपादेय रूप कहिकँ स्तुति करै
है—जो पद कहतै जोई धानरु भय पद कौ, भय स्थानरु कौ,
भय हरै सोई पद कहिये, सोई अनुपम स्थानक कहिये । जिहि
पदकौ परसत और पद है सो आपदारूप लागै हैं ॥१७॥

अथ सासार वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जब जीव सोवै तब समुझै सुपन सत्य,
 वही भूठ लागै जब जागै नींद खोइकै ।
 जागै कहे यहु मेरौ तन यहु मेरी सोज,
 ताहू भूठ मानत मरन थिति जोइके ॥
 जानै निज मरम मरन तब सूझै झूठ,
 वूझै जब और अवतार रूप होइकै ।
 वाहू अवतारकी दशामे फिरि यह पेच,
 याही भाति झूठौ जग देख्यौ हम टोइकै ॥१८॥

अर्थ—अब सप्त-पदकी भय दीखाने हैं—जब जीव सोवै है, सपन दशाम हूँ तबतौ सुपनकी सत्य करि समुझै है, वही सुपन झूठ लागै है जब नींद खोइकै जागै है, जागि करिके यहै मेरौ शरीर तौ इहा है । यहु सोज कहतें या सामग्री मेरी है, अरु अपनी मरन थिति जोरै है, तबतौ वर्तमान शरीर अरु सामग्री सब झूठ मानै है, अरु अपने मर्मकी बात जानै, इतनै अपने स्वरूप की बात जानै तब तौ मरन हो झूठ जानै ।

तेमै और अतार लें तत्र और रूप हाइके और ही बात वृत्तै,
अरु वाद अतार में सोवत जागत शूठ सांच कौ पच बार-बार
याहा भाति लागी रहै । याही भाति तें सब समार टोडके सौ
निरारके हम सब शूठौ ही देख्यौ ॥ १८ ॥

अथ ग्याता क्रिया कथन ॥ मर्षया ३१ मा ॥

पडित विनेक लहि एकताकी टेक गहि,
दुदज अवस्थाकी अनेकता हरतु है ।
मनि श्रुति अवधि इत्यादि विकल्प भेदि,
निरविकल्प-ग्यान मनमें धरतु है ॥
इन्द्रिय जनित सुख दुख सौ विमुख ह्वी के,
परमके रूप ह्वे करम निर्जरतु है ।
सहज समाधि साधि त्यागे परकी उपाधि,
आत्म आराधि परमात्म करतु है ॥ १९ ॥

अर्थ—अब ग्याता होइ सौ ऐमा क्रिया करै है सौ कहतु
है—पडित होइ सो विनेक कौ, भेद विग्यानको लहिकै ।
अरु अपनी एकरताकीटेक परकरिके जर जोप्रथम दुन्दुज अवस्था

श्रुति ग्यान अधि ग्यान इत्यादिक स्वरूपके विकल्प
 भेदिके निर्विकल्प ज्ञान सो केवल ग्यान ताको मनमें धरतु है।
 अरु इन्द्रिय क्रमिके जनित कहतै उपज्यो जो मुख दुख तासो
 विमुख हूँ कै। अरु परमात्माके रूप हूँ कै कम निर्जरा करैहै,
 तातै अपनी सहज ममाधि साधिकै, पर कहतै कर्म पुग्दलादिक
 ताकी उपाधि राग द्वेषादिक त्यागिके आत्माको आराधिके
 परमात्मा कहै ॥ १९ ॥

अथ-ग्यान ममुद्र वर्नन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जाके उर अतर निरतर अनत दर्ब,
 भाव भासि रहे पे सुभाउ न टरतु है।
 निर्मल सो निर्मल सु जीवन प्रगट जाको,
 घटमें अघट-रस कौतुक करतु है ॥
 जामे मति श्रुति औधि मनपर्ये केवल सु,
 पचधा तरगनि उमगि उछरतु है।
 सोहै ग्यान उदधि उदार महिमा अपार,
 निराधार एकमे अनेकता धरतु है ॥ २० ॥

अर्थ—अत्र जाते परमात्मपत्नी पाड्यै ऐसौ ग्यान समुद्रको बखानै है—तिनि ग्यान समुद्रके मध्यभाग विषै निरतर अनत द्रव्य पदार्थ भासि रहै पै तिनि द्रव्यको सुभाउ न टलै है, निर्मल सौ ही निर्मल ऐसौ सुजीवन कहतैं जीवितव्य, अरु समुद्र पत्नै सुजीवन कहतैं पानी जाऊँ प्रगट है । अरु घटमे कहतां हृदय विषै अघट कहतां अक्षीण , रसकौतुक कहतां सत्यार्थ वेदनऊँ जु रस कौतूहल मोई करै । इतनै समुद्र में हृ रस कौतुक घो, अरु जिन ग्यान समुद्र में मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्येयज्ञान, फेरलज्ञान । ए पाचौ ज्ञान तरंग रूप हूँके उमगि कहता आप अपनी ठौर प्रगट हूँके उछलि रहौ है । मोई ज्ञान उदधि कहता ज्ञान समुद्र उदार प्रधान है । याको अपार महिमा है । यामें सन पदार्थ भासै, तातैं ये आप निराधार अरु एक स्वरूपसौ ज्ञापयता, तामें अनेकता धारै है ॥ २० ॥

अथ मोक्षमार्ग अप्राप्ति कथन ॥ सपैया ३१ मा ॥

केकोई क्रूर कष्ट सहै तपसौ सरीर दहै,
धूम पान करै अधो मुख हूँके झूलो हे ।

केकोई महाव्रत गहै क्रियामै मगन रहै,
वहै मुनि भार पै पयार कैसे फुले है ॥

इत्यादिक जीवनि कौ सर्वथा मुक्ति नाहि,
फिरै जग माहि ज्यौ वयारिके बघलौ है ।

जिन्हके हिये मै ग्यान तिन्ह ही कौ निरवान,
करमके करतार भरम में भूलौ है ॥ २१ ॥

अर्थ—अब ग्यान बिना क्रियार्त मोक्षकी अप्राप्ति है यह कहै है—केई अग्यानी क्रूर कष्टकौ सहै है, अरु पचायि प्रमुल तप करिके सरीरकौ जालै है । केई अग्यानी अगनिके धूआ कौ पीयै है, नीचौ सुह करिके ऊचै पाउतै झुलि रहै है । अरु केई अग्यानी जैन लिग लिये महाव्रत द्रव्यरूप गहै है, अरु क्रिया में मगन रहै है, ऐसे मुनिराजकौ भार वहै है पै पयार कैमै फुलै है । देश भाषा ये पलाल कौ पयार कहिये जैसे पलाल पूला में कण नाही तैसे निःसार । इत्यादिक केवल क्रिया कलापतैं जीवनि कौ सर्वथा मुक्ति नाही । अरु जगत्र में वयारिके बघले ज्यौ ऊच नीच ठौर फिरि रहै है, पै कहां ठहराउ नाहीं । अरु जिनके हियेमें ग्यान कला जागृत रूप है तिन्हीं कौ निर-

वान कहतें मोक्ष है । अरु कर्म के कत्तार सौ केवल क्रियाके करन हारे है सोतौ भर्ममं भूलि रहै है ॥ २१ ॥

अथ मूढ व्यवस्था वर्नन ॥ दोहरा ॥

लीन भयौ त्रिवहार में, उकति न उपजै कोइ ।

दीन भयौ प्रभुपद जपै, सुगति कहातै होइ ॥२२॥

अर्थ—अरु जे मूढ हैं ताकी दृष्टि निश्चै मैं नाहीं ! अरु व्यवहार में है, तातौ मूढता है यहु कहै है—जो व्यवहार में ही लीन भयौ रहै, मगन भयौ रहै पै उकति कहतें तत्त्व दृष्टि सोतौ जाकी उपजै नाहीं, अरु आप अनाथ हुइके अपने नाथके पद को जपै, ऐमें अपनी निश्चै रूप जान्यै बिना सुगति कहातै होइ ॥ २२ ॥

पुन दोहरा ॥

प्रभु सुमरौ पूजा पढौ, करौ विविध परिहार ।

मुक्त स्वरूपी आत्मा, ग्यान गम्य निरधार ॥२३॥

अर्थ—प्रभुकी सुमरौ भावै पूजौ, भावै पढौ, ऐसी भाति भाति कौ व्यवहार करौ, पै जो कोऊ मोक्ष स्वरूपी आत्मा है सो तौ निरधार कहतै निश्चै करि ग्यानगम्य है ॥ २३ ॥

अथ पर्यायार्थ निरूपण ॥ मयैया २३ सा ॥

काज विना न करै जिय उद्यम,
 लाज विना रन माहि न जूझै ।
 डील विना न सधै परमारथ,
 शील विना सत सौ न अरूझै ॥
 नेम विना न लहै निहचै पद,
 प्रेम विना रस रीति न बूझै ।
 ध्यान विना न थमै मनकी गति,
 ग्यान विना शिव पथ न सूझै ॥२४॥

अर्थ—अत्र निश्चै स्वरूप माहि ग्यान पर्याय रूपी अर्थको निरूपण करै है—इहा अर्थान्तर दिखावै है । जैमै जीव अपने काम विना उद्यम करै । अरु जैमै लाज विना रण सग्राम में जूझै नही । अरु जैसै देह धरै विना परमार्थ हू मिद्ध न होइ । अरु जैसे शील धरै विना सत्त्व सौ मिलै नहीं । अरु जैसै नियम धरै विना निश्चै पद हू न पाइयै । अरु जैमै प्रेम प्रीति विना रसकी रीति हू बूझियै नही । जैसै ध्यान के विना मन

की गति थम नही, तैसै ग्यान दृष्टि निना शिव-पथसो
मुक्ति मार्गसो न छुझै ॥ २४ ॥

अथ ग्यान महिमा धारक ब्यवस्था कथन ॥ सवैया २३ सा ॥

ग्यान उदौ जिन्हके घट अतर,
ज्योति-जगी मति होत न मैली ।

बाहिज दिष्टि मिटी जिन्हकै हिय,
आतम ध्यान-कला विधि फैली ॥

जे जह चेतन भिन्न लखै,
सुविवेक लियै परखै गुन थैली ।

ते जग मै परमारथ जानि,
गहै रुचि मानि अध्यात्म सैली ॥२५॥

अर्थ—अत्र ग्यानवत्त कौ महिमा धारि करि बखानै है
अरु ताकी ब्यवस्था कहै है—जिन्हकै हियमें ग्यानकौ उदौ
मयौ तात अपनी ज्योति जगी, तात मति बुद्धि ऊजली भई,
पै मैली नहीं । अरु अपने बाह्य सरीर कौ आत्मा करि माननौ
असी जौ बाहिज दृष्टी हुती सो दृष्टि जाकै मिटी । अरु हियै
मै आतम ध्यान की कला, ताकी विधि यम नियमादिक सोई

विधि फैली । अरु तनतँ जड अरु चेतन कौ जो भिन्न भिन्न लखै ।' अरु असनौ निरेक जो भेद निग्यान ताकौ लियै अपनै गुन लियै परख लैहें, तेई जीव जगत में परमार्थ कौ जानिकै अरु रुचि करकै ग्रहै । एसै अघ्यातम सैली मानि कै परमार्थ कौ जानै ॥ २५ ॥

अथ मोक्ष प्राप्ति व्यवस्था कथन ॥ दोहरा ॥

बहुविधि क्रिया कलाप सौ, शिव पद लहै न कोइ ।
ग्यान कला परगास सौ, सहज मोक्ष पद होई ॥२६॥

अर्थ—अत्र मोक्षकी सुगम प्राप्ति दिखाने है—भाति भाति क्रियाके निमित्त क्लेश करत मोक्ष पद कौज लहै नाही । अरु ग्यान कलाके प्रकाश भयैतँ, सहज बात सौ मोक्ष रूपी होइहै ॥ २६ ॥

पुनः ॥ दोहरा ॥

ग्यान-कला घट-घट वसै, जोग जुगतिके पार ।
निज-निज कला उदौत करि, मुक्ति होइ ससार ॥२७॥

अर्थ—ये ग्यान कला तौ घट घट में बसि रही है, पै मनो' जोग, बचन जोग, काय-जोग को जुगतिके पार रहै-है, तातँ

अपनी अपनी कला कौ उजलाइ के ससार त मुक्त होउ ! ये
सत्र कौ आशीर्वाद है ॥ २७ ॥

अथ अनुभव प्रशमा ॥ कुण्डलिया छन्द ॥

अनुभव चितामनि रतन, जाके हिय परगास ।
सो पुनीत शिव पद लहै, दहै चतुर्गति वास ॥
दहै चतुर्गति वास, आस धरि क्रिया न मडै ।
नूतन बध निरोधि, पुर्वकृत कर्म निहडै ॥
ताके न गुन विकार, न गनु बहुभार न गनु भौ ।
जाके हिरदैं माहि, रतन चितामनि अनुभौ ॥२८॥

अर्थ—अब मुक्तपनौ अनुभव तें होइ तत अनुभवकी प्रशसा करै । अनुभव-रूप चिन्तामणि रतन जाके हिये प्रगास रह्यो है, सोई जीव पुनीत कहते पवित्र हूँके शिव पदकौ लहै । अरु चतुर्गति कौ वास दहै । देव गति, मनुष्य गति, तिर्यच गति, नरकगति ये चारौ गतिके वास कौ दहै । अब अनुभवो की ये रीति है, आस धरि कौ क्रिया कौ मडै नहीं, नूतन बध सौ नए बधकौ निरोध करै, सत्र धरै । अरु पूर्वकृत कर्मकौ निहडि डारै, बाकी निर्जरा करै । अहो भव्य जीव ! ताके विकार

कौन गनहुना । अरु वाके बहुभार कौ गनहुना । अरु वाके
भयकौ भी गनोना । जाकै हियै मै अनुभय रूपी चिन्तामणि
रतन बसि रह्यौ है ॥ २८ ॥

अथ ग्यान दृष्टि सामर्थी रुधन ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

जिन्हिके हियैमै सत्य सूरज उदौत भयौ,
फेलीमति किरन मिथ्यात तम नष्ट है ।
जिन्हिकी सुदृष्टि में न परचै विषमता सौ,
समतासौ प्रीति ममता सौ लष्ट पष्ट है ॥
जिन्हिकै कटाक्ष में सहज मोख पय सबै,
साधन निरोधि जाकै तनको न कष्ट है ।
जिन्हिकौ करमकी किलोलि यहै है समाधि,
डोलै यहै जोगासन बोलै यहै मष्ट है ॥२९॥

अर्थ—अथ अनुभयी के ग्यान दृष्टि की समर्थी हैं—
जिन्हिके हियैमै सत्य सूरज कौ उदौत ह्यै रह्यौ है । अरु सत्य
रूप सूर्य के मतिरूप किरण फली, ताँतै मिथ्यात तम नष्ट
भयौ । अरु जिन्हि जीवकी सुदृष्टि में विषमतासौ परिचय

नहीं । अरु समतासा प्रीति लागी, अरु ममता साँ लष्ट पष्ट राखै हैं । इतनै चित्त रिना, प्रीति राखै है । अरु जिन्हिके कटाथम कहत थोरी सी त्रिलोकनि में सहज स्वभायै मोक्ष मार्ग सिद्ध होइ, साधन कहियै मनौ योगादिक तीन योग ताकौ निरोध, निग्रह करिक । अरु जाँ शरीर कौ कष्ट नहीं, तिन्ह ग्यान वारीऔ कर्म लहरँ खाँ है, सो वाके गिनती में यहु समाधि भाव ही जानै है, गति कर्मके उदय तै जऊ डोलति है तऊ जोगामन धारी है । अरु जऊ बोलै है तऊ मष्ट कहतै मोन प्रती है ॥ २६ ॥

अथ पर वस्तु त्याग विशेष वर्नन ॥ सबैया ३१ सा ॥

आतम सुभाउ परभावकी न शुद्धि ताकौ,
जाकौ मन मगन परिग्रह में रह्यो है ।
ऐसो अविवेक कौ निधान परिग्रह राग,
ताकौ त्याग इहालो समुच्चै रूप कह्यो है ॥
अत्र निज परिभ्रम दूरि करियै के काजु
घट्टरो सुगुरु उपदेशकौ उमझ्यो है ।

परिग्रह अरु परिग्रह को विशेष अह्न,

कहियै को उद्विम उदीर लह लह्यौ है ॥३०॥

अर्थ—अब ग्यानी को पर वस्तु को त्याग क्यौ । अरु विशेष पन चाहीनौ त्याग रखाने है—तिनि जीपको आपनै स्वभाव को अरु परायै स्वभावकी शुद्धि न होय, जिन्हिको मन परिग्रहमें मगन ह्यै रक्षौ है । परिग्रह कहियै परिग्रहको रागमो तो ऐसौ अविवेक को निधान क्यौ । जिनि परिग्रह राग में अपने स्वभाव को पर स्वभाव की शुद्धि नाहीं, तिन्ह परिग्रह रागको त्याग, इहा तो सामान्य मात्र क्यौ । अब इहा आपनै स्वरूप को भ्रम अरु पर स्वरूपको भ्रम है तारु दूर करियेके कारिज को बहुरौ सुगुरु हैं सो उपदेश दयेको उमद्यौ । अब यातै इहा परिग्रह कहियै को अरु परिग्रहको विशेष अग कहियै को उद्विम उदीरणा करिक सुगुरु हैं सो लह लही समान ह्यै है ॥ ३० ॥

अथ सामान्य विशेष कथन ॥ दोहरा ॥

त्याग जोगपर वस्तु सब यह सामान्य विचार ।

विविध वस्तु नाना विरति, यहु विशेष विस्तार ॥३१॥

निरतर साधयेत गृहं अरु पर वस्तु सौ हित करे नाही । यादें
तें ग्यानमत कौ अत्राठक, निष्प्रेमी कहै है ॥३३॥

अथ ग्याता अलिप्त दृष्टात कथन ॥ सर्ग्या ३१सा ॥

जैसे फिटकड़ी लोद हरडै की पुट बिना,
स्वेत वस्त्र डारियै मजीठ रग नीर में ।
भीग्यो रहै चिरकाल सर्वथा न होइ लाल,
भेटै नहीं अन्तर सपेदी रहै चीर में ॥
तैसे समकितवत राग दोष मोह विनु,
रहै निशि वासर परिग्रहकी भीर में ।
पूरव करम हरै नूतन न बध करै,
जाचै न जगत सुख राचै न शरीर में ॥३४॥

अर्थ—परिग्रह में रहत ही ग्याता कौ अलिप्त पनी ब
होइ तापरि दृष्टान्त यहै है—जैसे कोऊ श्वेत वस्त्र है ।
फिटकड़ी, लोद, हरडै की पुट दिया बिना मजीठ के लाल
पानी में डारियै । सोई वस्त्र चिरकाल कहत बहुत काल लौं, व
रग में भीग्या रहै, तऊ सर्वथा प्रकारे लाल होइ नाही । अ
भेटै नहीं । वा चीर में सपेदी ही रहै । तैसे समकितवत ज

होइ सो राग द्वेष मोह की पुट बिना निसि वासर कहत राति
 दिन परिग्रह की मीर में रहै है तऊ पूर्य कर्म के भोगनिकी
 निर्जरा करै । अरु नूतन बध न करै, सो आगै नयौ बध न
 करै । अरु जगत कहतँ मसार ताकौ ज्याचै नही, अरु शरीर
 सो राचै नहीं ॥३४॥

अथ ग्याता अनुद्वेग कथन ॥ मयैया ३१सा ॥

जैसे काहू देश को वसोया बलवत नर,
 जगल में जाइ मधुछाता को गहतु है ।
 वाकौ लपटाहि चहौ और मधु मक्षिका पै,
 कबलकी उट सो अडकित रहतु है ॥
 तैसे समकित शिव सत्ताको स्वरूप साधै,
 उदैकी उपाधिसौ समाधि सी कहतु है ।
 पहिरै सहज को सनाह मनमें उछाह,
 ठानै सुख राह उद्वेग न लहतु है ॥३५॥

अर्थ—अन परिग्रह में रहत ही ग्याता को उद्वेग रहित
 पनो दिखावै है, दृष्टांत करिकै—जैसे कोऊ पुरुष काहू देश क

वसैया कहतां वासी भोल प्रमुख बललत जगल में जाइ मधु के छाता का गहै, तन वा पुरुष कौ चिहौ ओर सो च्यारी तरफ मधु मक्षिका कहतै मधु छातै की माखी लपटावै है, पै वा पुरुष के शरीर परि कनरु की ओट है, तातै वा पुरुष अडकित सो टरु भिना रहै । तसै गमत्रिती जीव शिव कहियै परमात्मा की जा सत्ता कहतै सद्भूत पनौ वाकौ जो स्वरूप एक विग्यान-धन पनौ ताकौ साधै, अरु कर्म उदय की जै आत्मा की उपाधि लगी है ताकौ समाधि सी करि जानै । सहज गुन जे ग्यान दशन चारित्र रूप जो सनाह, बगतर, ताकौ पहिरै रहै । अरु एसी भाति, जो कर्म निर्जरा ताकौ उठाहु मनम धरै । ऐम अनत सुखकै राहमै रहत उदवेग दशा न पावै ॥३५॥

अथ ग्याता अवध कथन ॥ दोहरा ॥

ग्यानी ग्यान भगन रहै, रागादिक मल खोड़ ।

चित्त उदास करनी करै, कर्मवध नहीं होड़ ॥३६॥

अर्थ—अन इसी भाति ग्याता कौ अवधकपनौ कहै—ग्यानी पुरुष तौ ग्यान हो मै भगन रहै । ज्ञानपना ही मै रहै । रागद्वेष मोहरूप जो मल है ताकौ खोड़ डारै । अरु

क्रिया करै है। पै क्रिया में उदासीन रूप करै है, तो वा
ग्याता को कर्म बध होय नहीं ॥३६॥

मोह महातम मल हरै, धरै सुमति परगास ।

मुगति पथ परगट करै, दीपक ग्यान विलास ॥३७॥

अर्थ—मोहरूपो महातम कहतें घोर अन्धकार तद्रूप मलको
हरै । अरु सुमति को प्रकाश दीपक ज्यो धरै । मुक्ति के
पथ को प्रकट करि दिखायै । ऐं ग्यान विलास मो दीपक
हा जानिये ॥३७॥

अथ ग्यान दीपक वर्णन ॥ सूरैया ३१ मा ॥

जामें धूमको न लेस वान को न परवेस,
करम पतगनिकों नास करै पलमें ।
दशाको न भाग न स्नेहको सयोग जामें,
मोह अन्धकार को विजोग जाके थल में ॥
जामें न तत्ताई, न राग रक्ताई रच,
लहलहै समना समाधि जोग जल में ।
येसी ग्यान दीपकी मिखा जगो अभगरूप,
निराधार फुली पै दुरी रे पुद्गल में

अथ—अत्र ग्यान दीपक कौ स्वरूप वर्नन करै है—जिन्हि
 ज्ञान दीपक म धूए कौ लेम नही, गहरै (पवन) हू कौ
 जामै प्रवेश नाहो । अरु जो कर्मरूपी पतग जीवनि कौ पलक
 में गश करि है । अरु जिन्हि दीपक में दशा कहतै वाती कौ
 भोग नाही । दूसरइ अर्थ—कोऊ विकल्प दशा नाही । अरु
 जहा सनेह कहत घृत, तेल कौ सयोग नाहा । अरु जाके
 प्रकाश म मोहरूप अधकार कौ वियोग है । अरु जिन दीपक
 में तातापनो नाहा । अरु जहा लाल रग की ललाई नाहीं,
 रचमात्र । अरु जो समता समाधि कौ लोग तद्रूप जल में
 लहलहायमान हू रखा है, ऐसी जो ग्यान दीपक कह्यो,
 ताकी मिया मदा ऋाल अभग रूप जगी रही है । अरु या
 सिखा सकल पदार्थ ग्यान की आधार है, प आप निराधार
 फुरि रहो है । अरु पुदगलमें दुरी कहतै छिपी रही है ॥३८॥

अथ ज्ञान स्वभाव अलडित दृष्टात कथन ॥ सर्पया ३१ सा ॥

जैसे जो दरव तामै तसोई सुभाउ सधे,
 कोऊ दरव काहूको स्वभाउ न गहतु है ।
 जैसे सख उज्जल विविध वर्न माटी भखै,
 माटी सौ न दीसै नितु उज्जल रहतु है ॥

तैसे ग्यानवत नाना भोग परिग्रह जोग,
करत विलास न अग्यानता लहतु है ।

ग्यान-कला दूनी होइ दुद दशा सूनी होई,
उनी होइ भौ थिति बनारसी कहतु है ॥३६॥

अर्थ—अथ या ग्यान के स्वभाव में खडता नही या परि-
दृष्टात कहै है—जोई जैमो द्रव्य है तामै तैसेई स्वभाव सिद्ध
है, पै कोऊ द्रव्य और काहू की स्वभाव ग्रहै नाही । जैसे काहू
जलाश्रयमें सर बँडन्दी जीव है, सो स्वरूप तँ उज्जल हैं, अरु
भाति भाति का रग माटी भरवै है, पै माटी की रग बाकै
स्वरूप में न दीम, नित्य ही उज्जल की उज्जल रहै है । तैसे
ग्यानवत प्राणी परिग्रह पै जोग तँ नाना प्रकार की भोग
विलास करतौ, पिण अग्यानता न पावै है, अरु ग्यान की
कला दुनी होइ । अरु दुन्द दशा कहतँ भ्रम दशा सी ही घनी
होइ । अरु भौ थिति रहतँ स्थिती में तौ उनी उछी होइ
ऐमै बनारसोदाम कहै है ॥ ३६ ॥

अथ म्यादवाद कथन ॥ मवैया ३१ सा ॥

जीलों ग्यानकी उदौतु तोलों नहि बध होतु,
तब नाना धध

ऐसी भेद सुनि कै लग्यौ तू विपै भोगनि सौ,
जोगनि सौ उद्दिम की रीति तैं विछोहि है ।

सुनौ भैया ! संत तू कहै मैं समकितवत,
यहु तौ एकत परमेश्वर की दोही है ।

विपै सौ विमुख होइ अनुभौ दशा अरोहि,
मोख सुख टोहि तोहि ऐसी मति सोही है ॥४०॥

अर्थ—अत्र सम्यक् ग्यान कै मायि सम्यक् क्रिया स्याद-
वाद मत कै आश्रय तैं कहतु है—जौ लौ ग्यान कौ उद्योत है
सौ लौ बध होतु नाही, अरु जय मिथ्यात्व दशा चरतैं हैं तत्र
तौ नाना प्रकार कौ बध हूँ है, एकातवादो कौऊ ऐसी
कहै, ऐसी ग्यान महातम कौ भेद सुनि वै तू विपै भोगनि
सौ लग्यौ है, अरु मन वचन काय योग तैं उद्दिम की रीति
सो क्रिया, सो तैं विछोही है—छोडी है । अहो भैया ! सत्
पुरुष सुनौ ! तू कहतु है, कि मैं समकितवत हौं, पै यहु तौ
एकत मत, परमेश्वर की-परमात्माकी दोही सौ द्रोह क्रिया
रहै, तातैं तू विषय सौं विमुख होइ, अरु अनुभव दशा तामैं

गुण श्रणि धरि आरोहण करि अरु मोक्ष के सुमुख को टोहि
कहतै दसि, तौहि ऐसो बुद्धि सोहै ॥ ४० ॥

अथ ग्यान वैराग्य युगपत वर्नन ॥ चौपाई छंद ॥

ज्ञान-फला जिन्हके घट जागी,

ते जग माहि सहज वैरागी ।

ग्यानी मगन विषै सुख माहीं

यहु विपरीति सभयै नाहीं ॥४१॥

अर्थ—ग्यान को अरु विषय विमुख ताको महचारपनी
रहै है—जिन्हके घटमें ग्यान कला जागी है, ते तौ जगत्र
माहि सहज वैरागी ही रहै है, ग्यानी हू है । अरु विषै मुख में
मगन हू है, यहु विपरीत बात सभयै ही नहीं ॥ ४१ ॥

अथ ग्यान वैराग्य की एरुता ॥ दोहरा ॥

ग्यान सकृति वैराग चल, शिव साथै सम काल ।

ज्यो लोचन न्यारै रहै, निरखै टोऊ नाल ॥४२॥

अर्थ—ग्यान की सकृति अरु वैराग की सकृति ये दोनों
परार्थ समकाल मिच्छे मोक्ष को साथै—जैमे टोऊ नेत्र न्यारै
रहै है । अरु नाल कहतै मायि ही दोऊ निरखै ॥ ४२ ॥

अथ मूढकर्ता कर्म कथन ॥ चौपाई छंद ॥

मूढ करमको करता होवै,
 फल अभिलास धरै फल जोवै ।
 ग्यानी क्रिया करै फल सूनी,
 लग न लेपु निर्जरा दूनी ॥४३॥

अर्थ—अब मूढ के कर्म कता पना अरु ग्यानी के निर्जरा, ये दोनों स्वरूप कहै—मूढ है सा कर्म कर्ता होइ । जातै मूढ है सो क्रिया के फल को अभिलास धरै, अरु फल को जोइ रहै । तातै ग्यानी के कर्म को लेप लगै नहीं । अरु दूनी निर्जरा होइ ॥ ४३ ॥

अथ ग्यान के अवध अरु अग्यानी के बध—दृष्टात
 पाटकीट का ॥ दोहरा ॥

बधे कर्म सौ मूढ ज्यौ, पाट-कीट तन पेम ।
 खुलै करम सौ समकितौ, गोरख धधा जेम ॥४४॥

अर्थ—मूढ होइ माँ कर्म माँ जैम पाट माँ मोरी अपने शरीर के पेम सौ अपनी लाल तै आप बधै । अरु समकितौ

होइ सो तौ करम जाल सो गुल तौ जाइ । जैसे गोरख घघा
अपनै जाल तैं गुलै ॥ ४४ ॥

अथ ग्याता कौ अकृत्य कथन ॥ मयैया २३ मा ॥

जे निज पूरव कर्म उदै सुख,
भुञ्जत भोग उदास रहेंगे ।

जे दुख में न विलाप करै,
निखरै हियै तन ताप सहेंगे ॥

हैं जिन्हके डिढ़ आतम ग्यान,
क्रिया करिकै फलको न चहेंगे ।

ते सुविचच्छन ज्ञायक है,
तिन्हको करता हम तौ न कहेंगे ॥४५॥

अर्थ—अब ग्यानी जीव कौ कर्म कौ अर्चापनौ अरु
निर्जरास्वरूप ठहरावैं हैं—जे जीव अपने पूरव सचित्त कर्म के उदय
त सुख भोगवत ही भोग सों उदास रहैं अरु जे जीव अमाता
वेदना के उदय तैं दुख उपज आरत विलाप न करै हियै में
काहूमौ बैर न राखैं । अरु शरीर मताप सहैं । जिनके डिग

आत्म ग्यान रहै है, सो तौ क्रिया करि कै फलको चाहै नही,
तेई भले भले विचञ्छन ज्ञायक हैं । तिन्हको फरम करत ही
कर्म को कर्ता ऐसो तौ हम न कहियै ॥ ४५ ॥

अथ ग्याता वर्नन ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

जिन्हकी सुदिष्टि मै अनिष्ट इष्ट दोउ सम,
जिन्हको अचार सुविचार शुभ ध्यान है ।
स्वारथ को त्यागि जे लगे है परमारथ को,
जिन्हके वचन में न नफा है न ज्यान है ॥
जिन्हकी समुक्ति मै शरीर ऐसो मानियतु,
धान कौसौ-छीलक क्रिपान कौसौ म्यान है ।
पारखी पदारथके साखी भ्रम भारत के,
तेई साध तिन्हको जथारथ ग्यान है ॥४६॥

अर्थ—अरु ऐसै ग्याता की व्यग्रस्था रहै है—जिन्हि
ज्ञाता की सुदिष्टि एसी है, जिन्हर्म अनिष्ट वस्तु अरु इष्ट वस्तु
दोनों बरोबरि है । अरु जिन्हको आचार ऐसो है जो भले
विचार सौ शुभ ध्यान में रहै । अरु विपै सुख प्रसुख स्वारथको

त्यागि कै जे है परमारथ कौ, अध्यात्म रूप परमारथ कौ लगै
 रहै हैं। अरु जिन्हि कै वचन ऐसै है जिन्ह में न तो नफा है
 न तोटा है। इतनै काहु कौ सुसीख कुसीख दै नही, मौनवृत्ती
 है। अरु जिन्ह कौ समुझि ऐसी है जिन्हिमें शरीर कौ ध्यानकौ
 छीलक कहतैं तुष। अरु कृपान कहियै तरिवारि ताकौ ग्यान
 ऐसौ मानियै है। इतनै आत्मा तैं शरीर न्यारौ जानै है। जो
 जैसौ पदार्थ है ताकी तँसी पारण करै। अरु जैन प्रिना पाचौ
 दर्शनमें भ्रम कौ भारत मडि रधौ है—ताकी साखी है। पूछिन
 कौ ध्यान कहतैं तेई साधु कहानै। अरु जिन्ह ही कौ यथार्थ
 ग्यान कहियै ॥ ४६ ॥

अथ सम्यग्रूपत कौ साहम कथन ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

जमकौसौ भ्राता दुख दाता है असाता कर्म,
 ताकै उदै मूरख न साहस गहतु है।
 सुरग-निवासी भू निवासी औ पातालवासी,
 सबनिकौ तन मन कपत रहतु है ॥
 उरकौ उज्यारौ न्यारौ देखियै सपत-भैसौ,
 डोलतु निसकु भयौ आनद लहतु है।

हज सुवीर जाको सासुतौ शरीर ऐसो,

ज्ञानो जीव आरिज आचारिज कहतु है ॥४७॥

अर्थ—अब समकित्तिका साहसिकरूपनौ निर्भयपनौ कहै
—यहा जु ससार में अमाता वेदनीय कर्म है, सो दुरा दाता
सो हाइ यहा उत्प्रेक्षा करै है—जम कौमो आता कहतै भाई
ताकें उदौ होत मूरख जन है सो साहस ग्रहि सकै नहीं ।
रमनिवासी कहतै देवता, भू निरामी कहतै मनुष्य तिर्यच
सो कहतै अरु पाताल वासी देवता, नारकी, ऐसै सब त्रिलोक
सा जीवकौ तन मन है सु जिन अमाता वेदनीयसों कपत
है है । अब ग्यानी जीवकै उरफौ उज्यारा है सो हियैमें
दानी है, सो कैमो है यहु कहै है । मात भयै तें न्यारी ही
, जिन्हि उज्यारैतें सौतौ भय उपजि सकै नहीं । तिन्हकै
भापैतें नि सक भयौ डोलै । अरु आनन्द लहै है । सहजें
वीर कहतें बडौ साहसिक सुभट जाको ग्यानरूपी शरीर
सामतौ है । ऐमौ ग्यानी जीव आर्य कहतें महापुरुष पूज्य
मानियै । ऐमै आचार्यजी कहै है ॥४७॥

अथ सप्तभय नाम ॥ दोहरा ॥

इह भव भय परलोक भय, मरन वेदना-जात ।

अनरक्षा अन गुप्त भय, अकसमात् भय सात ॥४८॥

अथ—अथ सातों भयके नाम कहे हैं—यह भयकौ भय ।
 परलोककौ भय । मरनकौ भय । वेदना उपजनकौ भय ।
 अरक्षाकौ भय । अगुप्त भय । अकस्मात् भय । ये सातों भय
 जानने ॥४८॥

अथ सप्तभय लक्षण कथन ॥ मर्या ३१ मा ॥

दशधा परिग्रह त्रियोग-चिता इह भव,
 दुर्गति गमन परलोक भय मानिये ।
 प्राननि कौ हरन मरन-भे कहावै सोड,
 रोगादिक कष्ट यह वेदना बखानिये ॥
 रक्षक हमारौ कोऊ नाहीं अनरक्षा-भय,
 चौर भै विचार अगुप्त मन आनिये ।
 अनचित्यो अवही अचानक कहावै होइ,
 ऐसौ भै अकस्मात् जगत में जानिये ॥४९॥

अर्थ—अथ सातों भयके लक्षण कहिके न्यारंउ लखावै है—
 और शस्त्र में जो दशनाम परिग्रह कथौ ताकै त्रियोगकी चिता
 रहै, सो इह भयकौ भय कहिये । दुर्गति गमनकौ भय रहै सो

परलाक भय कहियै । प्राण छटिवाकौ भय सो मरण भय कहियै । रोग प्रसूखतैं जो कष्ट भय ऊपजै सो वेदना भय बरानियै । हमारी रक्षाकौ करनहार कोऊ नाहीं दीसत यहु अरक्षा भय कहियै । चोर दुमन आयै मेरै कोऊ जतन नाहीं, ऐसौ भय राखियै सो अगुप्ति भय जानियै । कहा जानियै अरही अनचित्यौ कहा होइगौ ऐमै विचारतैं जो मनमें भय ऊपज्यौ रहै सो जगत्रमें अकृमात भय कहियै ॥४६॥

अथ इह भयभय निवारन कथन ॥ छप्पय-छद ॥

नख सिख मित परवान, ग्यान अवगाह निरखत ।
 आत्म अङ्ग अभग सग, पर धन इम अखत ॥
 छिन भगुर ससार-विभव, परिवार भार जसु ।
 जहा उतपति तहा प्रलय, जासु सयोग विरह तसु ॥
 परिग्रह प्रपच परगट परखि,

इह भव भय उपजे न चित ।

ग्यानो निसरु निकलक निज,

ग्यान रूप निरखत नित ॥५०॥

अर्थ—अब यह भय भय निवारनको मन्त्र रूप छप्य कहै है—पगके नखमो लेकै मस्तककी मिखाली इतने सर्व शरीर प्रमान आत्माको गुन जो ग्यान ताको अवगाद कहतै व्याप्ति याको देखै। ऐसै नख सिख लौ ग्यानमई आत्माको अह अमङ्ग है, याके सग जो पुद्गल है ताको परवन कहतै पर-द्रव्य ऐमे कहै। अरु सर्व ससार क्षणमगुर है। तिम सपारमें बिभव परिवार रूप भार है सोऊ क्षणमगुर है। अरु त्रिदि की उत्पत्ति है तहा विनाश हू है। अरु जाको नश होतु है ताको वियोग हू होइ। ऐसो परिग्रहको श्राय श्राय परिकर, चितमें इह सबको भय या विचार तै उपजै नहीं। याही भांति ग्यानी होइ सो परिग्रह नियोगकी चिता न गयै। निशक रहै। अपनी स्वरूप नि कलक ग्यानमई हा मदा द्यै ॥१०॥

अथ परलोक भय निवारन मन्त्र ॥ छपय छद ॥

ज्ञान-चक्र मम लोक, जागु अलोक मोह-सुख ।
 इतर लोक मम नाहि, नाहि जिस माहि दोष दुख ॥
 पुत्र सुगति दाता पाप दुरगति पद दायक ।
 दोऊ खडित ग्यानि, मैं अखडित नक ॥

इहि विधि विचार परलोक-भय,

नहि व्यापत वरतै सुखित ।

ग्यानी निसक निकलङ्क निज,

ग्यान रूप निररात नित ॥५१॥

अर्थ—ग्यान चक्र कहत ग्यान विस्तार सो तौ मम लोक कहतै मेरो लारु है, मेरो प्रचार है । जासु अवलोक कहतै जाको प्रत्यक्ष रूप दरिद्रा । अरु मोक्ष सुख है । ये दोऊ रूप है । इतर लारु कहत और लारु जु कहियै है सो मेरो नाहीं । मेरो ग्यान-लाफ मेरो भायो है । जाँँ दोष दुख नाहीं । परलोकमें सुगति पाइ तामो दातार पुन्य है । अरु परलोक में दुगति होइ तामो दातार पाप है । ये दाऊ पुन्य पाप आत्माही खडनाही सानि, अरु मैं अगडित रूप हौं । शिव-नायक कहतै सिद्ध रूपा हौं । इहि भातिकै विचारतै परलोक को भय व्यापै नहीं । अरु सुखित कहतै मदा सुखप्रत वरतै । ऐसी भाति परलाक को भय छाडिकै ग्यानी पुरुष होइ सो निःशक धर्मो निःफलक अपनै ग्यान रूपकी मदा निरखत है ॥५१॥

अथ मरन भय निवारन मन्त्र ॥ छप्पय-छट् ॥

फरस जीभ नासिका, नैन अरु ध्रवण अक्ष इति ।

मन वच तन बल तीन, सास उस्वास आउ-थिति ॥

ये दश प्राण विनाश, ताहि जग मरन कहिज्जै ।

ग्यान प्राण सजुगत, जीव तिहु-काल न उिज्जै ॥

यह चित करत नहि मरन भय,

नै प्रवान जिनवर कथित ।

ग्यानी निसक निकलङ्क निज,

ग्यान रूप निरखन्त नित ॥५१॥

अर्थ—अथ मरन भय निवारन रूप कहै है—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, ये पाच अक्ष कहत इन्द्रिय । मनो-बल, वचन बल, काय-बल ये तीन बल । श्वाभोच्छ्वास, आयु-स्थिति ये दश प्राण कहियै याकी विनाश होइ ताकी जगत में मरण कहियै, पै जीव पदार्थ है सोती ग्यानरूपी भाव प्राणता करि सयुक्त है । सोती जीवको ग्यान प्राण तिही कालमें छोजे नहीं । ऐसी विचार मनमें करत मरण भय उपजै नहीं । नय

प्रमाण करिकै ऐसौ जिनेश्वरकौ कथन है । ग्यानी लोक
होइ सोतौ नि मरु थकौ निकलक अपन रूपकौ सदा
निरसत है ॥५२॥

अथ वेदना भय निवारण मन्त्र ॥ छप्पय छद ॥

वेदनवारौ जोय, जाहि वेदत सोऊ जिय ।
यहु वेदना अभग, सु तौ मम अह नहिं बिय ॥
करम वेदना दुविध, एक सुरम मय दुतीय दुख ।
दोऊ मोह विकार, पुदगलाकार बहिर्मुख ॥
जत्र यहु विवेक मन माहि धरत,

तब न वेदना भय विदित ।

ग्यानी निसक निकलक निज,

ग्यान रूप निरसत नित ॥५३॥

अर्थ—अथ वेदना भय निवारण रूप मन्त्र कहै हैं—वेदन
रौ सो जाननहारौ, सोतौ जीव कहियै । अरु जाकौ वेदतु है
ई जीव, इतनै वेदनाप्रत सो ग्यानी जीव, यहु ग्यान रूप
दना जु अभग रूप है । सो तौ मेरौ अंग है । और जो

वेदना कहिये सो भेरो नाही । अरु कर्म रूप वेदना दोइ प्रकार
 को है । एक सुखमई वेदना है, दुजी दुखमई वेदना है । ये
 दोउ मोह विकार है । ऐसे सुख दुखकी वेदना पुट्टलाकार है ।
 पुट्टलकी छाया बाह्य रूप है । जेन यहु निवेक, ऐसौ विचार
 मनमे धरै है तेन वेदनाको भय वेदत नाही । ग्यानी होइ सो
 तौ वेदना भय तै नि सक रहै । ऐमै निकलक अपनौ ग्यान
 रूप सदा निरखत है ॥५३॥

अथ अनरमा भय निवारन मन्त्र ॥ छप्पय उद ॥

जो सुवस्तु सत्तारूप, जगमाहिं त्रिकाल गत ।
 तास विनाश न होइ, महज निहचै प्रवान मत ॥
 सो मम आत्म दरब, सखधा नहि सहाय धर ।
 तिहि कारन रच्छक न कोइ, भच्छक नकोइ पर ॥
 जब यहु प्रकार निरधार किय,

तव अनरच्छा भय नसित ।

ग्यानी निसक निकलक निज,

ज्ञानरूप निरखत नित ॥५४॥

अर्थ—अब अरक्षा भय निवारण रूप मंत्र कहै है—जोई वस्तु कहतै अपनी आत्मा रूप वस्तु सत्ता स्वरूप कहतै द्रव्य पर्यन्त छतौ कटावै है, सो तो जगत में तीनों काल विपै ही पाइयै, ताको कजहौ विनाश न होइ । ऐमौ सहज स्वरूप निश्चै नयकै प्रमाण तैं जानिबौ सोई मेरौ आत्म द्रव्य जो है सो तौ सर्वाथा प्रकारै काहुको सहाय धरै नही, तिहि कारन करिकै या आत्मा द्रव्य को रक्षक कौऊ नाही । पर कहतै और हर कौऊ सोऊ भच्छक नहीं । जगत यौ प्रकार विचार हीयै म निरधार कियै रहै, तत्र तौ अरक्षा भय नास पावै । ऐमै ग्यानी होइ मो अरक्षा भयतैं नि शक थको अपनै निकलक ज्ञान रूप को मदा निरसत रहै ॥५४॥

अथ चोर भय निवारण मन्त्र ॥ छप्पय उठ ॥

परम रूप परतच्छ, जासु लक्षण चिन्मडित ।

पर प्रवेश तहा नाहि, माहि महि अगम अखडित ॥

सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अट्टधन ।

ताहि चोर किम गहै, ठौर नहि लहै और जन ॥

चितवत एम धरि ध्यान जब,
तव अगुप्त भय उप समित ।

ज्ञानी निसक निकलक निज,
ग्यान रूप निरखत नित ॥ ५५ ॥

अर्थ—अब चोर भय निवारन मन्त्र कहै है—जो परम स्वरूप कहायै है अरु मानस ग्यान तँ प्रत्यक्ष हैं, चिन्मडित कहतँ चिन्मय ऐमौ जाको लक्षण है, तिहि स्वरूपमें, तौ पर स्वरूप कौ प्रवेश नहीं । माहिं महि कहतँ आठौं पृथिवी बीचि अगम्य है, अरु असडित है, सो तौ अनूप मेरो रूप । अकृत कहतँ काहूँ नै कियो नाहीं । अनमित कहतँ प्रमाण विना ऐसँ अटूट धन है, ताधन कौ चोर कैसे हरि सकै । और कोउ लोग वाकी ठौर पाइ सकै नाहीं । जब ध्यान धरिबै ऐसी चितवन नरै तनतौ अगुप्तिभय कहतँ उधारै धनकौ जो भय सो भय उपशम जाइ । ऐमै ग्यानी होइ सो अगुप्ति भय तँ निःशक्यकौ अपनै नि कलक ग्यान रूप कौ सदा निरखत रहै ॥५५॥

अथ अकस्मात् भय निवारन मन्त्र ॥ छप्पय छद ॥

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सुसमृद्ध सिद्धसम ।
अलख अनादि अनत, अतुल अविचल सरूप मम ॥

चिद्विलास परगास, वीत विकल्प सुख थानक ।

जहा दुविधा नहि कोई, होई तहा कलु न अचानक ॥

जव यहु विवेक उपजतु तव,

अकस्मात् भय नहि उदित ।

ग्यानी नि सक निकलक निज,

ग्यान-रूप निरखत नित ॥ ५६ ॥

अर्थ—अरु अकस्मात् भय निवारन रूप मन्त्र कहें हैं—

जो कोउ वस्तु शुद्ध हों कैवल अपने स्वरूपमें है, बुद्ध हैं कहतै ग्यानमई है, अवरोधी है, सिद्ध समान ऋद्विवत है, अलक्ष्य है, आदि रहित है, अरु अत रहित है, माकी तुलना कौऊमाँ न होइ । यात अतुल ऐसौ अविचल भेरी रूप है । चिद्विलास कहत ग्यानकौ जो विलास सो जाकौ प्रगाम है । वीत विरल्य कहत अवस्था भेद रहित है अरु समाधि सुखकौ थानक है । जहा कोई दुभाति न पाड्यै, तहा कौऊ अनचीत—अचानक भय सौं बुछ उपनै नही, जातें हियै मी ऐसो विवेक विचार उपजै है, तर तौ अकस्मात् भयजु है सो उदै होतु नाही । ऐसै ग्यानी लोक अकस्मात् भयतें नि सकोचकौ, अपनै नि कलक रूपकौ सदा निरखत रहै ॥५६॥

अथ ग्यानीकी व्यसथा कथन ॥उपप-छदा॥

जो पर गुन त्यागत, शुद्ध निज-गुन गहत ध्रुव ।
विमल ग्यान अ कूर, जासु घट माहिं प्रकाश हुव ॥

जो पुरव कृत कर्म, निर्जरा धार बहावत ।
जो नव बध निरोध, मोख मारग मुख धावत ॥

नि सकतादि जिस अष्ट गुन,
अष्ट-कर्म अरि सहरत ।

सो पुरुष विचच्छन तासु पद,
वानारसि बदन करत ॥ ५७ ॥

अर्थ—अन निर्जरा करत न्यारी की व्यसथा कहै है—जो कोउ पराए गुन को त्याग करै, ध्रुव कहतै निश्चैरूप ऐमै शुद्ध अपने गुनको गहै, निर्मल ग्यानको अकूर कहतै उदय जाके घटमै प्रकाशयत भयो । अरु जो पूर्वकृत कर्मको निर्जरा की धार निषै, निर्जरा की श्रेणी निषै बहायै है । अरु नये बधको निरोध करिकै । इतने निराश्रय होइके मोक्ष मार्ग के सन्धुरा धारै, गुण श्रणिमें दोरै । नि शक्ति प्रमुख जाके आठौं गुन है सो आठौं कर्म शत्रु को सहार करै । सोई विचच्छन पुरुष कहायै । ताके धरणकमल की बनारसीदासबदना करै है ॥५७॥

अथ अष्ट अगके नाम ॥ सोरठाछन्द ॥

प्रथम निससै जानि, दुतिय अत्राछित परिमन ।

तृतीय अग अगिलान, निर्मल दृष्टि चतुर्थ गुन ॥५८॥

अर्थ—अब आठ अग के नाम कहै हैं—पहलें निसमय
 महतें नि सक्रित, दूसरौ समक्रित को गुन अवाठम्पने मन
 रिणाम । तीसरौ अग अगिलानि । चौथे अग निर्मल दृष्टी सौ
 दृढ दृष्टी नहीं ॥५८॥

पुनः सोरठा छन्द ॥

पंच अक्रथ पर दोष, थिरी करन छट्टम सहज ।

सत्तम वच्छल पोष, अष्टम अग प्रभायना ॥ ५९ ॥

अर्थ—पाचमो गुन पर दोष अक्रथन । छिहौ अग
 समक्रित थिरकरन कौ स्वभा । सातमौ गुन अग सयसौ
 वच्छल पनी, अघ्यातम पोषक । आठमौ अग प्रभायना
 गुन ॥५९॥

अथ अग लक्षण सयैया ३१ सा

धर्ममै न ससै शुभ क्रम फलकी न इच्छा,
 अशुभकौ देखि न गिलानी आनै चित्त में ।

साची दृष्टि राखै काहू प्रानीकौ न दोष भाखै,
चचलता भानि थिति ठानै बोध चित्तमें ॥

प्यार निज रूप सौ उछाहुकी तरंग उठै,
येई आठौ अङ्ग जब जागै समकितमें ।

ताही समकितकौ धरे सो समकितवत्,
वहै मोख पावै औ न आवै फिरि इतमें ॥ ६० ॥

अर्थ—अग अग के लक्षण कहै है—धर्मम सदेह नही, यौ
नि मकित गुन शुभ कर्म की फल की इच्छा नही सो नि स्पृह
गुण । काहू को डिगायौ डिगे नही, साच में दृष्टि राखै सो
अमृद दृष्टि गुण । काहू प्रानी कौ दोष न कहै ऐसं दोषाकथन
गुण । चचलता भानि कै ग्यान रूप चित्त में थिति कहतै
थिरता ठानै कहता राखै सो थिरीकरण गुण । आत्म स्वरूप
मौ प्रेम राखै यौ वच्छल गुण । आत्म स्वरूप साधन में उछाह
लहरी लियै रहै यौ प्रभायना गुण । ऐसं ये समकितकौ आठौ
अग जब जागे, तस आठौ गुन सहित समकितकौ धरै, सो
समकितवत् कहावै । अरु वह समकितौ मोक्ष पावै । अरु
ससारमें न आवै ॥६०॥

अथ चैतन्य नाटक कथन ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

पुत्र वध नारी सुतौ सगीत-कला प्रगासै,

नव वध रुधि ताल तोरत उछारिकै ।

निसकित आदि अष्ट अग सग सखा जोरी,

समता अलाप-चारी करै सुर भरिकै ।

निरजरा नाद गाजै ध्यान मिरदग वाजै,

छव्यौ महानंदमें समाधि रीझि करिकै ।

सत्ता रगभूमि में मुकति भयौ तिहौ काल,

नाचै शुद्ध दृष्टि नट ग्यान स्वाग धरिकै ॥ ६१ ॥

अथ--अथ निर्जराधारी चैतन्यकौ नाटक कहियै जैसे पूर्वकाल विपै वध उत्कृष्ट स्थितिमें करत हौ तैमै न करै, अनुत्कृष्ट स्थिति में करै, यै पूर्ववध नास सोती मगीत-कला आलापचारी प्रकासै । अरु नए वधकौ रोधन करै सोई ताल उठले है, ताल तोरै है । निःसकित प्रमुख जो समकित के आठ अग कहैं, सोई सग विपै सखा जोरि कहतैं सहाई की जोरी भई । समता समाधि धारी सो स्वर वाधिकै आलाप करै है । इहा कर्म निर्जरा होतु है सो एरु स्वररूप नाद जै

गानै है । ध्यान में सोह धनि उठै है सोतो मृदग राजै है ।
 इहाँ जो महानदमई ह्वैकै छाक्यौ सौतौ सुख भयो, रीझि भई ।
 अपन आत्म सत्ता सोई रगभूमि कहतै रग मडप भयो ताम
 तिहाँ काल विपै शुद्ध दृष्टि सहित ग्यान रूप स्वाग धरिऊ
 नट रूप चेतन मुक्त भयो नाचै है ॥६१॥

इति समयसार नाटक विपै गालपोधरूप निर्जराद्वार
 सम्पूर्ण भयो ॥

इति निर्जराध्वार समाप्त ॥

जहा शुभ अशुभ करमको गढ़ास तहा,
मोहके विलासमें महा अन्धेर घुप्प हे ॥

फैली फिरै छटा सी घटा सी घन घट वीचि,
चेतनकी चेतना दुहो धा गुप्प चुप्प हे ।
बुद्धिसौं न गहीजाइ वेंनसौं न कही जाइ,
पानीकी तरग जैस पानीमें गुडुप्प हे ॥ ३ ॥

अर्थ—अरु चेतना विना तौ कर्म बध ही न होइ यातें
चेतना अरु कर्म चेतना ये दोउ बरने है—निहि चेतनामें
परमात्मा के कला कौ प्रकाश होतु है, सो तौ धर्म धरती है,
तहा तौ सत्यरूप सूर्य को धूप है । इतनै प्रकाशबत्त ठौर है ।
अरु जिहि चेतनामें शुभ अशुभ कर्म के रसकौ गढाम है, इतनै
शुभ अशुभ कर्म रससौं जो चेतना घुलि रही है, तहा तौ मोह
विलास करै है सो तौ महा अन्धेर घुप्प है, घोरघार है । ऐसी
भाति चेतन पुरूप की जु चेतना कहतै सज्ञा है सो तौ घट घन
वीचि कहतै शरीर रूप भेष वीचि छटा सी फैली फिरै है ।
अरु चेतना परमात्मा कला प्रकाश में, अरु मोह विलास में
दुहोधा कहतै दोऊ तरफ गुप चुप ह्यै है । ये चेतना दोनु

तरफ बँठ है, सो यात्र न तो बुद्धि सों ग्रही जाइ है, न तो वचन सों ग्रही जाइ है। जैसे पानो तरंग है सो पानी में गुड़ुप्प है जाइ है। तैमै चेतना हू दुहों तरफ गुड़ुप्प है ॥ ३ ॥

अथ बध निदान कथन ॥ सत्रैया ३१ सा ॥

कर्मजाल वर्गनासो जगमें न बधै जीउ,

बधै न कदापि मन वच काय जोगसो ।

चेतन अचेतनकी हिंसा सों न बधै जीउ,

बधै न अलख पच-विषै विष रोग सो ॥

कर्म सों अबध सिद्ध योगसों अबध जिन,

हिंसा सों अबध साधु ग्याता विषै भोगसों ।

इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न बधै जीव,

बधै एक रागादि अशुद्ध उपयोग सों ॥ ४ ॥

अर्थ—अत्र बध द्वार विषै बध कौ हेतु कहै है—कोऊ

कहैगाँ कर्मजाल वर्गना सों जगत्र में जीव बधै है, सो 'या' यात्र नाहीं । इतनै कर्म वर्गना जीवके बध हेतु नहीं, ऐसी भाति कदाचित मन वचन काय जोगसों हू जीव बधै नहीं । चेतन

ग्यान-दृष्टि देतु विषै-भोगनिर्साँ हेतु दोऊ—

क्रिया एक खेत साँ तौ वनें नाहि जैनमें ॥

उटै बल उद्यम गहै पै फल कौन चहै,

निरटै दशा न होइ हिरदयकै नैनमें ।

आलस निरुद्धिमकी भूमिका मिथ्यात माहि,

जहाँ न सभारै जीव मोहनीद सैनमें ॥ ६ ॥

अर्थ—अब ग्याता अग्रध वखौ, तौहू उद्यमी हौनो, क्रिया करनी, ऐसो कहै है—नोव है सो यद्यपि कर्मजाल सो न बधै, अरु योग साँ न बधै, अरु हिंसा माँ न बधै, अरु भोग माँ न बधै है, व तथापि कहतैं तौहू जिनेश्वर के वचन मँ ग्याता जीवकौ उद्यमी हो बख्यानी । ग्यान में दृष्टि पिण्ड है । अरु विषय भोगनि हेतु प्यार हू राखै है । ऐसी दोनु क्रिया एक खेत रहत आत्मा विषै करै, याँतौ जैनवानी मँ वनिनापै अरु जो ग्यानी होइ मो, साँ करै जैसाँ सहनन प्रमुख कार्यकौ उद्यम बल है तैसाँ यथा योग्य क्रिया विषै उद्यम गहै, पै फलकौ न चहै हृदयरूप नैन विषै निर्दय दशानत न होइ । अरु आलम, निरुद्धम येतौ मिथ्यात माहि पाइयै, याँत आलस

निरुद्यम की मिथ्यात भूमिका है । जिनि मिथ्यात भूमिका में मोहनीद दलें तो जीव सयन में रहे हैं । अरु अपनी स्वरूप को सभारे नहीं ॥ ६ ॥

अथ—उदय व्यवस्था वर्णन ॥ दाहरा ॥

जब जाको जैसे उदय ।

तब सो है तिस थान ॥

सकति मरोरे जीवकी ।

उदय महा बलवान ॥ ७ ॥

अर्थ—अब जो उदय भाङ्ग क्रिया कहो, ताँ उदय की व्यवस्था कहै—जिहि काल विष जाको जैसे उदय है तिहि काल विष तिहि थान कहतें तिन स्वरूप जीव मोहै । जीव की सकति मरोरि के अपनी सकति प्रगट करै । याँ कर्म उदय महा बलवान है ॥ ७ ॥

अथ—उदय बल वर्णन ॥ स्रैया ३१ सा ॥

जैसे गजराज परौ कर्दमके कु ड वोचि,

उहिम अहटै पैन छटै दख दद सो ।

जैसें लोह कटक की कोरमों उरभ्यौ मान,
 चेतन अमाता लहे माता लहे सदसौ ॥
 जैसें महाताप मिर वाहिस्यौ गरास्यौ नर,
 तकै निज काज उठि सकै न मुञ्चदसौ ।
 जैसें ग्यानरत मव जानै न वसाइ कछु,
 बध्यो फिरै पूरव करम फल फदमौ ॥ ८ ॥

अर्थ—अब अष्टम देव उदय फलका वर्नन करै है—
 जमे कोउ गजराज है सो र्दम के बुड भै पर्यौ तन
 नीमारबन उद्यम अहूट कहते लगाय है, पै दख ददसौ
 छूटै नहीं । औरो राहु भीर नें मच्छ पररिर्वका द्रह में
 लोह कटक डार्यौ, ताते लोह कटक की कोरमों मीन
 रहते मच्छ उरभि गहौ अब मच्छको चेतन बात अमाता
 लहे है, अरु सद कहते छुटियते साता लहे पै छुटि मरु
 नहा । और कोउ नर मनुष्य है सो महाताप जनर, अरु
 सिर घाटि रहते मस्तक की पीर ताते गरास्या कहते
 परानां अरु सो अपनै कार्यकी तरुने चहै

र्य करिवौ पैं अपने सुखमें रहे रहे रहे ।
 नी जीव हय उपादन कर रहे रहे ।
 गे नहीं । पूर्व मखि कर रहे रहे ।
 रयमा बघ्यौ फिरें ॥ ८१ ॥

अथ—यथा यदन्तः ॥ ८१ ॥

जे जिय मोह नहै नहै,
 ते आलमी कहिये कहिये ।
 दिष्टि सोलि नै नै नै ।

तिन्हि आलमी कहिये कहिये ॥८१॥

अर्थ—अथ जैसी ॥ ८१ ॥

है—जे जीव मोह नहै नहै,
 आलमी कहिये निरुपगहै,
 मवीन जागै है तिन्हि आलमी कहिये कहिये ॥८१॥

अर्थ—यथासंख्या ॥ ८१ ॥

काच बाधै सिद्धि नहै नहै,
 जानै न गमार कैं मनि कैं

योंही मूढ भूटे में मगन भूठ ही को दौरै,
 भूठी बात मानै पे न जानै कहा साचु है ।
 मनि कौ परखि जानै जौहरी जगत मांहि,
 साचुकी समुक्ति ग्यान लोचन की जाचु है ।
 जहा को जु वासी सो तौ तहाकौ मरम जानै,
 जाकौ जैमौ स्वाग ताकौ तेसौ रूप नाचु है १०

अर्थ—अब आलसी उदम की जैसी क्रिया है तैसी
 कहै हैं—काचकौ मस्तक निपै बाधै, मली मणि है ताकौ
 पाइ निपै बाधै, गवार लोक असौ न जानै जु मणि वस्तु
 कैमी है । अरु काच वस्तु कैमी है । असै मूढ अज्ञानी
 जीव भूठी बात में मगन रहै । अरु भूटे मरज कौ
 दौरै अरु भूठी बात मानै पे असौ न जानै या कहा साच
 है । मणि रतनको तौ जौहरी होई सोई जगत में परखि
 जानै । अरु साचि समुक्ति ताको कहै जाके ज्ञान रूपी
 लोचन की जाचु है उत्पत्ति है । जो जहाकौ वासी है सो
 तहाकौ मरम जानै । इतनै मिथ्यात भूमिकाकौ वासी

मिथ्यात ही कौ ग्रहै । सम्यक्त भूमिकाकौ वासी ममकित
में साच मानै । इतना परि जाकौ जैसौ स्वाग बन्यौ ताकौ
तैसौ ही नाचु है ॥ १० ॥

अथ—क्रिया तथा फल कथन ॥ दोहरा ॥

बध बढ़ावै अध हूँ ते आलसी अजान ।
मुक्ति हेतु करनी करे, ते नर उद्विग्वान ११

अर्थ—अन जो जैसी क्रिया करै है ताका तैसौ फल
पावै यह कहै है—जो भान अध हूँ कौ बधकौ बढ़ावै
ते अजान आलसी कहावै । अरु जो मुक्ति हेतु क्रिया करै
है सो मनुष्य उद्विग्वत कहावै ॥ ११ ॥

अथ—ज्ञान वैराग्य सहकारन वर्नन । सर्वैया ३१सा
जब लगु जीव शुद्ध वस्तुकौ विचारै ध्यावै,
तबलगु भोगसो उदासी सरवग है ।
भोगमें मगन तब ग्यान की जगनि नाहि
भोग-अभिलासकी दशा मिथ्यात अग है ॥
तातै विषय भोग मे मगन सो मिथ्याती जीव,

भोगसौ उदासी मो समझिती अभग है ।
 ऐसी जानि भोग सौ उदामी ह्वै मुक्ति साधो,
 यह मन चग तौ कठौती माहि गग है ॥१२

अर्थ—जो ज्ञान हे तो वैराग्य है, अरु जो वैराग्य नहीं तौ ज्ञान इ नहीं तर्त ज्ञान वैराग्य का सहचार कहै है—जो जीव है सो शुद्ध वस्तु सो प्रचारै है ध्याये है ताला तो सरव अ ग विषे भागसौ उदासीनपनौ पाइये । अरु अर भाग में मगन है तत्र तौ ज्ञान कौ जागिरो नाहीं जो अरु भाग में मगन ह्वै है तत्र तौ ज्ञान की जगति जा भाग अभिलासा की दशा में बरतिवौ सो मिथ्यातकौ अग है, ताही तै विषय भोगनिमें मगन रहै सो मिथ्याती जीव कहिये । अर जो विषय भाग सौ उदाम रहै सो अभगपन समझिती है । ऐसी जानिअे अहो भव्य लोकौ ! भोगसौ उदाम ह्वै कौ मुक्ति कौ मागौ । याकौ दृष्टान्त कहै है जो यह मन चगा है तौ कठौती माहि गगा है । इतने कठौती में स्नान करना गगा स्नान का फल है ॥ १२ ॥

अर्थ—पदार्थ चतुष्क ऋयन ॥ दोहरा ॥

धरम अरथ अक काम शिव, पुरुपा-रथ चतुरग
कुधी कल्पना गहि रहै, सुधी गहै सरवग १३

अर्थ—अप मोक्ष अधिहार विषे न्यार पदार्थ को
स्वरूप कहै है -धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—पुरुषार्थ क ये
चार अंग है, या पुरुषार्थ विषे कुधी कहते कुमती होइ सो
अपनी मन कल्पना ताको गहि करहे । अरु सुधी कहते
पडित होइ सा सर्ग ग गहै ॥ १३ ॥

अथ-पदार्थ व्यवस्था कथन । सवैया ॥ ३१ मा ॥

कुल कौ आचार ताहि मूरस धरम कहै,
पडित धरम कहै वस्तुके सुभाउ कौ ।
खेयकौ सजानौ ताहि अग्यानी अरथ कहै,
ज्ञानी कहै अरथ दरव दरसाउ कौ ॥
दपति कौ भोग ताहि दुरबुद्धि कहै कहै,
सुधी काम कहै अभिलानु चि चि चि ॥
इन्द्रलोक-थान कौ अज्ञानु कहै कहै
मतिवान मोरस कहै कहै कहै ॥

अर्थ—अथ च्यारौ पदार्थ की न्यारी न्यारी व्यवस्था
 मुमति दुमति को मत आश्रय कै कहै । अपने बुल को
 आचार को मूर्ख होइ सो धर्म कहै । अरु पडित होइ सो
 वस्तुके स्वभावका धर्म कहे । अरु अज्ञानी होइ सो खेहव
 कौ खनानौ सोना रूपा जॉहर द्रव्य है ताकाँ अर्थ कहि
 बतलावे है । अरु ज्ञानी होइ सो द्रव्य के दर्शाव कौ अर्थ
 कहै । इतने पट द्रव्य कौ अर्थ कहै । दुबुद्धि होइ सो स्त्री,
 भर्तार कै भोग सजोग कौ काम कहै है अरु सुधी कहते
 पडित होइ सो अभिलाषाँ चित्तकी इच्छाओं काम कहै ।
 अरु जो इन्द्रलोक है, इन्द्रकौ नाथ है ताकाँ अजान लोक
 मोख कहै । अरु मतिमान् कहतँ पडित होइ सो बन्ध के
 अमाउ कौ कहतँ बधके नाशकाँ मोक्ष कहै ॥ १४ ॥

अथ—पुरुषार्थ चतुष्क अध्यात्मरूप कथन ॥ सर्वैया ३१ सा
 धरम कौ साधन जु वस्तु कौ सुभाउ साधै,
 अर्थकौ साधन विलेच्छि दवे घटमै ।
 यहै काम साधना जु सग्रहै निरास-पद,
 सहज म्वरूप मोख शुद्धता प्रगट मै ॥

अतर-सुदिष्टिसौ निरतर विलोकै बुध,
 धरम अरथ काम मोख निज घटमै ।
 साधन अराधन की सोंज रहै जाकै सग,
 भूल्यौ फरै मूरख मिथ्यात्वकी अलटमै ॥१५॥

अर्थ—अब च्यारा पुस्तार्थ की अध्यात्मरूप कहै है धर्मको साधन यह कहिये जो वस्तुको स्वभाव साधियो । इतने वस्तुमे स्वभाव को ठीक जानियो । अर्थ की साधन यह कहिये जो पद द्रव्य को मिलक्षण करिवो । इतने न्यारो न्यारो द्रव्य लिखिवो । काम साधन यह कहिये जो निरास पद की संग्रह करनो । इतने निस्पृह दशा में रहनो । मोक्ष साधन यह कहिये जो अपनी सहज स्वरूप शुद्धता प्रगट भाव में ररनी । जैसी भाति अंतर दृष्टि सो, सो ज्ञान दृष्टिसौ बुध कहतै पंडित होइ सो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष च्यागो पुस्तार्थ अपने घट में ही निरन्तर देखे । जैसे च्यारो पुस्तार्थ आराधन की जाकै सग, सोंज कहते सामग्री रहै है । तौऊ मूर्ख है सो मिथ्यात्व की अलट में भूल्यो

अथ शुद्धनय उस्तु स्वरूप कथन ॥ सर्वथा ३१ मा
 तिहों लोक मांहि तिहों काल सब जीवनि क
 पूरव करम उदे आइ रम देतु हे ।
 कोऊ दीरघाउ धरे कोऊ अलपाउ मरे,
 कोऊ दुग्गी कोऊ सुखी कोऊ समचेतु हे ॥
 याहि मे जिवावो याहि मारो याहि सुरगी क
 याहि दुखी ऐसी मूढ आप मानि लेतु है
 याहि अह बुद्धिसो न पिनसे भरम भूल,
 यहै मिथ्या धरम कर्मवध हेतु है ॥ १६ ॥

अर्थ—अथ शुद्ध व्यवहार नय उस्तु कौ
 स्वरूप कहै है— तीनों लोकों में जिनमें जगत वामी मर
 निकों पूरव सचित कर्म उदे आदे है । प्ररु अपनौ
 मधुर रम देतु है, तातें काऊ दीरघ आयुषी भागिनि क
 कोऊ अल्प आयु सही मरे है । कोऊ दुखी है, काऊ
 है, काऊ समचेतु है, रहत ममभारमें है, ऐसै आप
 कमाई सों सब जीव सुखी दुखी हैं तापरि मूढ जीव (

जु याही काँ मैं जिवाओं, यारों दुखी करौ याकों सुखी करौ
 ऐसै याही अहँ बुद्धि माँ भर्मतै जुभूलि पर्यौ है । सो या
 भूलि बाकी विनमे नहीं । यौही मिथ्या धर्म मूढको र्म बध
 हेतु है ॥ १६ ॥

अथ मूढताका र्धन । ३१ ॥

जहालों जगतके निवासी जीव जगतमें,
 सबे असहाय कोऊ काँ को न धनी है ।
 जैमी जैमी पुरव करम मत्ता बांधी जिन,
 तैसी तैमी उरैमें अवस्था आइ बनी है ॥
 एतें परि जाँ कोऊ कहै कि मैं जिवाओं मारों
 टत्यादि अनेक विकल्प बात धनी है ।
 सो तौ अहँबुद्धिमौ विफल भयो तिहौ काल,
 डोलै निज आत्म सकति तिन हनी है ॥१७

अर्थ-अन श्रोरो ही मूढको व्यवस्था नहँ है जोलो
 जीव जगतमें निरास धारै है तौलो सब जीव कै असहाय-
 पनौ हैं, कोऊ माहूको सहाई नहीं, न तौ कोऊ काहूका धनी

। अरु जैमी जैमी पूर्वकाल विपै कर्म की सत्ता बाध
 ती है तैमी २ उदै जीवकी अग्रस्था आनरनी है । एतै परि
 फोड कहै है मै वाको जियायो, मै याको मारो
 पादिक अनेक मनके विकल्पकी बात घनी है, साँतै
 ह दुदिसो विकल भयो कहै है । तिहो काल विपै अह-
 द्वे लियै डौलै है, तिन्हि जीवनि शुद्धि ज्ञान शक्ति
 पनी हनी, ए मूढ की अवस्था है ॥ १७ ॥

अव-च्यार प्रकार जीव व्यवस्था कथन ॥ सगैया ३१

उत्तम पुरुषकी दशा ज्यों किस-मिस दाख,
 वाहिज अभितर विरागी मृदु अग है ।
 मध्यम पुरुष नारिअर कैसी भाति लिये,
 वाहिज कठिन हिय कोमल तरग है ॥
 अधम पुरुष बदरी फल समान जाकै,
 वाहिज सों दीसै नरमाई दिल संग है ।
 अधम सों अधम पुरुष पुगी फल सम,
 अतरग वाहिर कठोर सरदग है ॥ १८ ॥

अर्थ -अत्र चारों प्रकार करिके जीवनी व्यग्रथा परि
 च्यारो दृष्टात कहै है— उत्तम पुरुषकी दशा किममिस
 दाख ज्यो है । जैसे किममिम दाख बाहिर कामल माहि
 कोमल तैसे उत्तम पुरुष बाह्य व्यग्रहार में अरु अभ्यन्तर
 व्यवहार में मृदु अंग कहते कोमल है । मध्यम पुरुष
 नारियल ज्यो है, जैसे नारियल बाह्य व्यवहार में कठोर
 अरु माहि कोमल । तैसे मध्यम पुरुष दू बाहिर तें कठिन
 मो हिंयें में कोमल तरङ्ग लियै रहै । अधम पुरुष बेरके
 समान होइ जमें लोगफल बाह्यव्यग्रहार में नरम दीसैं, अरु
 माहि कठोर होइ । तैसे अधम पुरुष बाहिर नरमाई रातौ,
 अरु दिल में सग कहतै पापान दू कसा कठिन । अधमाधम
 पुरुष पुगीफल कहते सुपारीफल समान होइ । जैसे
 सुपारी बाहिर माहि सर्गाङ्ग कठोर होइ, तैसे अधमाधम
 पुरुष माहि बाहिर कठोर ही होइ ॥ १८

अध-उत्तम पुरुष यथा ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

कीचसौ कनक जाके नीचसौ नरेस पद
 भीचसी मितार्ह गरवाई जाके गारसी ।

जहरसी जोग जाति कहरसी करामाती,
 हहरमी होत पुद्गल छवि छारसी ॥
 जालनो जग विलास भाल सो भुवन-वास,
 काल सो कुटम्ब काज लोक-लाज लारसी ।
 सीठ सो मुजम जानै वीठ सो वसत मानै-
 ऐसी जाकी रीति ताहि वन्दत बनारसी ॥१६

अब उत्तम पुस्तकी दशा कहै है — जाके हियेमें
 ऐसी विचार है, कनक रहते सुनर्न, कीचमे जाँ, नरनर
 की पद है सो नीच मो जानै, मित्राई है सो मीचसी
 कहते मोतिसी जाने, गरगाई कइत बडाई, सो गार, लीपन
 सी जान, रसायन प्रमुख द्रव्य जोगकी जाति है सो जहर
 सी जानै । मन्त्र शक्ति से जो करामाति सो कहर सी जानै,
 देशी भाषा में हहर कहाँ, अनर्थता सरीखी होंस है ।
 पुद्गलको छविहै सो छारसी रहत राख ममान जानै । जगत
 का विलास है सो जाल समान जानै । भुवन वास कहत
 घरवास है सो तीरकी भाल समान जानै कुटम्ब कार्य है
 सो काल समान जानै । लोक लान राखिवी सो मुहकी

लाल ममान जानै । सुनम रौ सीठ ममान जानै नाटफूके
मलकों सीठ कहियै । भाग्य उत्यकों विष्टा ममान जानै ।
जागी गेमी रीति है ताहि प्रनारसी ददना कर है ॥ १८ ॥

अर्थ—मध्यम पुत्र यथा मंत्रया ॥ ३१ मा ॥

जैसे कोऊ सुभट सुभाय ठगमूरी राय,
चेरा भयो ठगनिके घेरा में रहतु है ।
ठगोरी उतरि गई तत्रै ताहि शुद्धि भई
परौ परवस नाना स कट सहतु है ॥
तैसेही अनादिके मिथ्याती जीव जगतमें,
डोलें आठों जाम प्रनाराम न गहतु है ।
ग्यान-कला भागी भयो अन्तर उदामी पे
तथापि उदे व्याधिसों ममाधि न लहतु है २०

अर्थ—अथ मध्यम पुत्र की दशा दृष्टात करि
दिखावै है—जैसे कोऊ स्वभावे सुभट है भाको कोऊ ठग
मिन्यो ताहूँन कोई जड़ी मूली खाई, तत्र वा मूरीके खाने
ते ! सुभट हूँ ठाको घेरा भयो अरु ठगनिके घेरा में परौ

रहै । पीठ वा सुभट्टे मूली विकार निरूल ते ठगौरी उतरि गई, तब नाका शुद्धि भई । वा ठगनि कौ दुर्जन करि जानै तैसे ही अनादि कालहीं मिथ्याती जीव जानै प आप परिवम परी, सा नाना प्रकार को सरुट सहियों करै । ससार सें आठों जाम आठों प्रहर विकल भयो डोलै पै विश्राम न पावै । इतनै मे ज्ञान कला भासी तब अन्तर उदासी भया तथापि कहतै तौ पिण्य कमेके उदय रूप ध्याधिसों ममाधि न लहै, आस्रर में रहै ॥ २० ॥

अथ—अधम पुरुष यथा ॥ सवैया ३१ सा ॥

जैसे राक पुरुषके भायें कानी कोडी धन
 उलूवाके भायें जैन सभाई विहान है ।
 कूकरके भायों ज्यों पिडोर जेरवानी मठा
 सूकरके भायें ज्यों पुरीप पकवान है ॥
 वायमके भायें जैसे नीवकी निवौरी दाख
 बालकके भायें दत्त कथा ज्यों पुरान है ।
 हिंसकय भायें जैसे हिंसामे धरम तैसे
 मूरिखके भायें शुभवध निरवान है ॥२१॥

अथ—अथ अधम पुरुष कीसा दृष्टात करि दिखावें
 है—जैसे राक (रक) पुरुषके भायें कानी मोड़ी धन है,
 अरु घूघू के भायें जैसे सध्या है सोई प्रभात है । अरु जैसे
 कूरके भायें पिडोर जिरवानी कहतें गाई भंसरे जेरको
 जलपम सोई दही कौ मठा है । अरु जमें सूअर के भायें
 गुरीप कहते पिष्टा सोई परवान है । अरु जैसे वापस कहते
 काग ताके भायें नीवकी निवोरी सोई दाख मेवा है । अरु
 जैसे बालकके भायें जैसे दतकथा कहतें लौकिक चात मोई
 पुरान है । हिमक के भायें जैसे हिमामें धरम होइ, तैसे
 मूर्खके भायें शुभ उध कहतें पुण्य उध सार्दे निरमान कहते
 माछ जानै । ऐसी अधम पुरुष की दशा ॥ २१ ॥

अथ—अधम पुरुष ॥ मधेया ३१ सा ॥

कु जरको देखि जैसे रोस करि भू मँ श्वान,
 रोस करै निर्धन विलोकि धनवतको ।
 रैनके जगैया कौ विलोकि चार रोस करै,
 मिथ्यामती रोस करै सुनत सिद्धंत को ॥
 हंसको विलोकि जैसे काग मनि रोम कौ

अभिमानी रोस करै देखत महंत को ।

सुकविकों देखि ज्यौ कुकवि मन रोम करै,

ऐसे मन रोम करै दुष्ट देखि म तकौ ॥२२॥

अर्थ—अब अधमाधम पुस्पकी दशा दृष्टांत करि
डिढावै हैं—जैसै कुजर कहते हाथी को देखि रोप करिके
कूकर भूसै । अरु जैसै निर्धन पुस्प घनवतमौ विलौकिके
कै रोस करे अरु जैसी रातिके जागरनहारे का चोकीदारका
देखि चोरलोक रोम करै । अरु जैमे मिथ्याती होइ सा
मिद्धात सुनत रोम कर । अरु जैसे हस कों देखिके काग
मनमें रोम करे । अरु जैमे महतको देखि, बडे पुस्प का
देखिके अहकारी रोम करै । जैसै सुकविकों देखिके कुकवि
होइ सो मनमें रोम करै । ऐसी भाति अधमाधम पुस्प सत
साधुको देखि दुष्ट मन थकी रोम करै ॥

अथ—पुन अधमाधम पुस्प वरनन ॥ म० ३१ ॥

सरलको सठ कहैं वक्ताको धीठ कहै,

विनौ करे तामौ कहै धनीको अधीन है

छमीकों निबल कहैं दमीकों अट्ती कहै,

मधुर वचन बोले तासो कहै दीन है।
 धरमीकों दंभी निसप्रेहीकों गुमानी कहै,
 तिसना घटावै तामो कहै भाग्यहीन है ।
 जहां साधु गुन देखै तिन्हको लगावै दोष,
 ऐसो कुञ्ज दुर्जनको हिरदौ मलीन है ॥२३॥

अथ—अथ वरुण ही अधमाधम को व्यवहार कहै है
 मरल चित्तको मठ मूर्ख कहै, उक्ता वात पंस्त्रको ठीठ रहै
 नेय करनहार को कहै यो ता धनसो आधीन थको
 वेनय करेहै, घमायत को निबल कहै, पाच इन्द्रिय के
 मनहारको अदातार कहै, जो मधुर वचन बोले है ताको
 मधु दीनदमा वनौ है, धरमीको दंभी रूपटी कहै, निसप्रेही
 को अहकारी कहै, अरु वृष्णा छोड़ है ताको भाग्य हीन
 कहै । जहां ऐसो मरलनादिक गुन देखै तामो दोष लगावै,
 ऐसो कुञ्ज दुर्जन को हिरदौ मलीन है । ७ अधमाधम की
 कृति जानिये ॥ २३ ॥

अथ—मित्र्यादृष्टि बरनन ॥ चौपाई छंद ॥

मैं करता मैं कीन्ही कैमी,

अब यों करों कहों जो ऐसी ।
 ए विपरीत भाव है जामें
 सो वरतै मिथ्यात दशामें ॥२४॥

अथ मिथ्यादृष्टि की अहंबुद्धि को वर्णन करै हे-
 में कर्ता हों यह वर्तमान कालमें की सी बात, कीन्ही ए
 अतीत काल में, अतर्हो जैसी कहां तैसी करिहों ए अनागत
 काल में अह बुद्धिपनौ जामें ऐसी भाति विपरीत भाव है,
 मोती मिथ्यात दशा में वर्तता जानयै ॥ २४ ॥

अहं बुद्धि मिथ्या दशा धरै सु मिथ्यावत

विकल भयो ससारमें करे विलाप अनत २५

अर्थ -जो ऐसी अहबुद्धि ह सोई मिथ्यादशा कहियै-
 जो ऐसी मिथ्या दशा धरे सो मिथ्यावत कहियै । संसारमें
 विकल भयो ससारमें फिरतौ दुःख सहतौ अनत विलाप
 करै ॥ २५ ॥

अथ मूढ व्यवस्था रथन ॥ सवेया ३१ सा ॥

रविके उदोत अस्त होत दिन दिन प्रति,
 अजुलिके जीवन ज्यों जीवन घटतु है ।

कालके प्रसत त्रिन छिन छीन हेतु तनु,
 आरेको चलत मानौ काठसौ कटतु है ॥
 एतें परि मूरख न खोजें परमारथ को,
 स्वारथके हेतु भ्रम भारत ठटतु है ।
 लग्यौ फिरे रोगनिसौ पग्योपर जोगनिसौ
 विषै रस भोगनिसौ नेकु न हटतु है ॥२६॥

अर्थ—अब मूढ प्राणीको देखकरिपनो कहें हैं—सूर्य
 उदयसौ लेकरि अरु अस्त कालसौ दिन दिनके विषै
 आजुलीके जीवन कहतें आउपौ घटतु है । अरु क्षण क्षण
 विषै काल शरीरको प्रसै है, तातें शरीर क्षीण होतु है ऐसैं
 न उरको शरीर तरफसो काल प्रसत रहै है । अरु शरीर
 काठ ज्यो कट्यो जाइ है । ऐसी कार्य है रखा है तऊ मूरख
 परमार्थको न खोजें है अपने स्वारथके हेतु भ्रमको भारथ
 ठट्यो राखै है, लग्यौ कहिये पर वस्तु काम क्रोधादिक
 तासौ लग्यौ फिरै, अरु पर जोग कहिये पुद्गल जोग तासौ
 लग्यौ कहै तै रल्लिमिल रखा तातें विषय रमके भोगतै नेकु
 हटतु नाहीं ॥ २६ ॥

अथ-अथ मिथ्याती जीवनि मूढतापर दृष्टान्त, सर्वैय
 जैसे मृग मत्त वृषादित्यकी तपत मांदि,
 तृषावत मृषा-जल कारन अटतु है ।
 तैमें भजवामी माया हीसों हित मानि मानि,
 ठानि ठानि भ्रम भूमि नाटक नटतु है ॥
 आगेंको दुक्त धाय पात्रे वज्जरा चवाय,
 जैसे दृगहीन नर जेवरी वटतु है ।
 तैसे मूढ चेतन सुकृत करतृति करे,
 रोवत हसत फल खोवत खटतु है ॥ २७ ॥

अर्थ-अथ औरों ही मूढ व्यवस्था कहें हैं-जैमें काऊ
 मातौ मृग है सो वृषादित्य कहिये वृष सम्रातिके सूर्य(जेठ)
 की तपतिमें अति तृषावत मृषा कहतै भूठी इच्छासों पानी
 के कारन अटतु है सो भटतु है, तैसी भांति ससारवासी
 जीव है सो परस्वरूप माया जाल ही कों हितकारी मानि
 के मर्कट्य भूमिकामें ठहराव करिके नाटक सो नाचि रह्यो
 है । अरु जैमें कोऊ दृगहीन अध पुरुष है सो जेवरीको

चटु है, तहा गौको बच्छौ ठाढौ है सो उटी जेवरीको चाबि
रघौ है, अरु अघ है सो आगे उटिईका सताधी सो
टुक रघौ है । तैसें मूढ प्रानी है सो सुकृतमी क्रिया कर
है । तब रावत हमत कहतै गऊँ आति रति करि उँटै आगे
खटु है ताहु कीयै कौ फल खाँ है ॥ २७ ॥

अथ—मूढ विषयी वर्णन, संख्या ३१ मा
लिये डिठ पेच फिरे लोटन कदतर सो,
उलटौ अनादिकौ न कहौ सुलटतु है ।
जाकौ फल दुस ताहि सातामो कहत मुख,
महत लपेटौ अमी धारी मी चटु है ॥
ऐसो मूढ जन निज स पति न लखे क्योंही
योही मेरी मेरी निम वासर रटतु है ।
याही ममतामो परमारथ विनिसि जाड,
काजीको परम पाइ दूध ज्यो फटतु है ॥२८॥

अथ—अब औरों ही बधकी कारनहार मूढ विषयी
की व्यवस्था कहें हैं—जैसें लोटन कदतर हाइ सो पांख-
नि उधत डिठ पेच लग्यौ तातैं उलट पलट फिरे, तैसें मूढ

प्राणी अनादि कालकौ कर्म बंध पेचमें पगि गयौ तातें फिरौ
 है, पै किमी भाति सुलटौ न हूँ है । अरु जाकौ फल दुख
 है । ऐसी त्रिपै भोगनितें उपजी जो साता ताकौ सुख कहतु
 है, मानौ सहत सौं लपेटी तरवारिकी धारसी चाटतु है,
 जो सहतकौ मिठास अल्प अरु जीभ कटिवैं तें आगें दुख
 बहुत है । ऐसौ मुरख प्राणी अपनी ज्ञानादिक सपदाकौ
 क्यों हू लखैं नहीं, योही पर वस्तु परि मेरी मेरी मेरी करि
 कैं राति दिन रट रखौ है । याही जु झूठी ममता लगा,
 तिन्हि ममता सौं परमार्थ विनसि जाइ है, जैसे काजीके
 पानीको परस पाइ दूध फटि जाइ, तैसे ममता सौं परमार्थ
 विगड़े है ॥ २८ ॥

अथ पुन मूढ व्यवस्था ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

रूपकी न भांक हिये करमकौं डाक पिये,
 ११ ज्ञान दवि रखौ मिरगाक जैसे घनमें ।
 लोचनकी ढाकसौ न माने सदगुरु हाक
 वालै मूढ राकसौ निसाकति हो पनमें ॥
 टाक इक भासकी डलीसी तामें तीन फांक

तीन कौसों आंक लिखि राख्यौ काहू तनमे
तासो कहै नाक तीकी राखिवेको करै कांक
लांक सौ सडग वांधी वांक धरे मनमें ॥२६॥

अर्थ—अप मूढकी अह बुद्धिकी व्ययस्था कहै है—
आत्माको रूप हिये में न भाव्यौ जातै कर्मका न डार
पीन्हौ । इतने कर्मको रम जोरै च ढ्यौ, तातें आत्माको स्व-
रूप शुद्ध ज्ञान सौ दधि रखा, जैसे मृगाक कहतें चन्द्रमा
घनमें सौ मेघमें दधि रखौ है अरु ज्ञान लोचनपरि मिय्यात
फो डारु आई, तातें सद्गुरुकी हारु कहतें आज्ञा सो- न
मानै । अरु मूर्ख पराधीन थकी राऊ ज्यो बोलै । अरु तिहों
पनमें, सो तिहा काल विपै निसक थकी रहै। अप मूढता प्रगट
दिखावै है—जो नाक है सो ती टाक, एक मासकी डरी
सी है । अरु तामें तीन फाक हैं, प्रत्यक्ष प्रमाण देखिये
है । ए तीनों फाक कौसी नी दीमें हे सो कहै ? तीनको
अ क तीन फा वारो शरीरमें काहूने लिखि राख्यौ है ।
तिन्हि औदारिक अवयव की नाक कहै अरु नाक राखिवै
को कांक कहतें लरारै करै जो मरहिगे पैं नाक राखेंगे ।

ऐसै प्रिचारसो लराई करै । अरु खरग वार्ध ही रहै । अरु
मनमें वारु धरे ही रहै ॥ २६ ॥

अथ — मूढ विषयी वनेन ॥ सर्वथा ३१ मा
जैसे कोऊ कूकर छुधित सूके हाड चावे,
हाडनिकी कोर चिहों उर चुभै मुखमें ।
गल ताल रसना मसूडनिकी मास फाटे,
चाटै निज रुधिर मगन स्वाद सुखमें ॥
तैसे मूढ विषई पुरुष रति रीति ठानै,
तामें चित माने हित माने खेद दुखमें ।
देखें परतत्त बल हानि मल मूति खानि
गहै न गिलानि पगि रहे राग- सुखमें ॥३०॥

अथ—अथ मूढके विषय रागीपनाकी दशा कहे है
जैसे कोऊ कूकरा है अरु भूर्य्यौ थकौ हाड चावे है तब
वा सूके हाडानकी कोर है सो च्यारों तरफ मुखमें चुबै
है, तब वा कूकरके गालकी तालुआकी जीभकी मसूडानि
की मास फाटे, ताँत लोही नीसरै, मुहमें आवै, तब वह

निन्दके मिथ्यात गयो तहा सम्यग्दर्शन भयो ।
 ते सम्यग्दर्शनी नियति-लीन भए—निरचय लीन
 थरु व्यग्रहार सौ मुक्त भए । जामे निरल्प नहीं ।
 नेरनिरल्प, थरु जामे उपाधि नहा यात निरुपाधि
 प्रमादित जे सगुन है के इतने ज्ञानादिक गुनमई हुइ
 उमार्गको डुरुत ह । तेई जीव परम दशामे थिररूप है
 तमीक धर्ममें धुकै पै र्मसौं रकै नाहीं ॥३२॥

अथ—जिप्य प्रश्न र्थन ॥रिचित छदा॥

जे मोह-कर्मकी परिनति,
 वध निदान कहौ तुम सब्ब ।
 तत भिन्न शुद्ध चेतन सौ
 तिहको मूल हेतु कहौ अब्ब ॥
 यहु सहज जीवको कौतुक
 कै निमित्त है पुगल दब्ब ।
 स नवाड शिष्य इम पूछत
 कहै सुगुरु उत्तर सुनु भव्व ॥३३॥

मिथ्या धारै है, अ ह्युद्धि धारिकै । अरु जो ममत्त निवारिके थिर होइ सोई मुनि होइ ॥३१॥

अर्थ—मिथ्यात्व भाव व्यवहार ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

असख्यात-लोक परवान जो मिथ्यातभाव तेई विवहार-भाव केवली उक्ति है ।

जिन्हके मिथ्यात गयो सम्यक-दरस भयो, ते नियति-लीन विवहारसौ मुक्ति है ॥

निरविकल्प निरुपाधि आत्म समाधि, साधि जे सुगुन मोक्ष-पथकों दुक्त है ।

तेई जीव परम-दशामें थिर-रूप है के, धरममें धुके न करमसौ रुक्त हैं ॥३२॥

अर्थ—अब मिथ्यात भावतें व्यवहारसौ असख्यात-पनौ कहै हैं—एक लोकाकाश है ताकी असख्यात पनै कल्पना करियें, याके प्रदेश असख्याता सख्यात कहे, याके प्रमाण मिथ्यात भाव है । जीवके अध्ययसान स्थान है एक व्यवहार भाव केवली उक्त है, केवली कहै है ।

अरु जिन्हके मिथ्यात गर्यो तहा सम्यग्दर्शन भयो ।
 तबतौ ते सम्यग्दर्शनी नियति-लीन भए—निश्चय लीन
 भय । अरु व्यवहार सौ मुक्त भए । जामें पिच्छ नही ।
 यात निरपिच्छ, अरु जामें उपाधि नहा यात निरुपाधि
 ऐसी समार्थित जे सगुन है क इतने ज्ञानादिक गुनमई ह्रद
 के माचमागको दुरुत ह । तेई जीव परम दशामें धिररूप है
 के आतमीक धमेमें धुरै पै कर्मसौ रक नाही ॥३२॥

अथ—शिष्य प्रश्न कथन ॥कृत्त छदा।

जे जे मोह-कर्मकी परिनति,
 वध निदान कहौ तुम मध्य ।
 सतत भिन्न शुद्ध चेतन सौं
 तिहको मूल हेतु कहौ अब्ब ॥
 के यहु सहज जीवको कौतुक
 के निमित्त है पुगल दब्ब ।
 सीस नवाड शिष्य डम पूछत
 कहै सुगुरु उत्तर सुनु भव्व ॥३३॥

अर्थ—अब गुरुकों शिष्य प्रश्न करै है—जे जे मोह
 कर्मकी परिणति है, राग द्वेषादिक है, तेता तुम्ह सगही
 बधको निदान कही । अरु ऐसी सतत रहते निरन्तर
 शुद्ध चेतनसो भिन्न हैं तातें या बधको अत्र मूल हेतु कहो
 यहु जो बध होतु है सो रहा जीमकी सहज कौतुक है,
 कहा याको पुद्गलद्रव्य निमित्त है मस्तरु नमाइके शिष्य
 ऐसे ब्रूकत है । तत्र गुरु कहै है ? हे भव्य प्राणी याको
 उत्तर सुनि ॥३३॥

अथ—गुरु वचन ॥ सपैया ३१ सा ॥

जैसे नाना वरन पुरी वनाइ दीजै हेठि,
 उज्जल विमल मानि स्ररिज कराति है ।
 उज्जलता भासै जव वस्तुको विचार कीजै,
 पुरीकी भलकसों वरन भाति भाति है ॥
 तैसें जीव दरवको पुग्गल निमित्त रूप,
 ताकी ममतासों मोह मदिराकी भाति है ।
 भेदज्ञान दिष्टिसों सुभाव साधि लीजै तहा,
 साची शुद्ध चेतना अवाची सुख साति है ३४

अर्थ—अब गुरु ऊहे हे जैसे सूर्य कात मणि है ऐसे
 झोऊ औरहू कास्मोरी पापान है सो महा उज्जल है महा
 प्रिमल है, अरु ताँरे होठ भाति भाति रगकी पुरी बनाइकेँ
 दीजेँ ताँते भाति भाति रग दीसेँ । या सूर्यकाति वस्तुकेँ
 जय स्वभाव कौ विचार कीजे तय तौ बाकी उज्जलता ही
 भासेँ, अरु दिखाउमें हेठिली पुरीकी भलरु परै है तयतौ
 हेठला रग माफ्फ भाति भाति कौ वरन दीखै है तैसी
 भाति जीय द्रव्यकेँ अशुद्ध अयस्थाकी निमित्त कारन
 पुद्गल द्रव्य है ताकी ममता माँ मोहरूप मदिराकी भाति
 कहतेँ उनमादपनौ है अरु जय जड चेतनकी भेदज्ञान
 दिष्टि दैकेँ चेतनकी स्वभाव साची शुद्ध चेतना ही भासेँ
 अरु अवाची कहतेँ वचनगोचर नहीं, वँसी मुख शांति है ।

अथ—सयोगिक स्वभाव वनेन ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

जैसे महिगडलमें नदीको प्रवाह एक,
 ताहीमें अनेक भाति नीरकी ढरनि है ।
 पाथरको जोर तहां धारकी मरोरि होत,
 काकरकी स्थानि तहा भागकी भरनि है ॥

पौनकी भङ्गोर तथा चचल तरंग उठे,
 भूमिकी निचानि तथा भौरकी परनि है ।
 तैसेँ एक आत्मा अनन्त रस पुद्गल,
 दुहोकी सजोगमें विभावकी भरनि है ॥३५

अर्थ—अब वस्तुके सयोगतेँ स्वभाव भेद होइ ताके
 परि दृष्टान्त कहै है—जैसेँ पृथ्वी मडल उपरि नदीकी
 प्रवाह एक रूप है, अरु ताही नदी प्रवाहमें पानीकोँ ढरि-
 चोँ अनेक प्रकारकीँ है सो कहै है—जहा नदी प्रवाहमें
 बड़े बड़े पाथर आइ अरै है तथा धारकी मरोरि परेँ है ।
 अरु जहा काकरनिकीँ खानि है तथा भागकीँ भरनि उठै
 है । अरु जहा पौनकी भङ्गोर परैँ है तथा चंचल तरंग
 उठै है, जहा भूमिकीँ नीचानि है तथा भौर परैँ है । तैसेँ
 आत्म द्रव्य एक है अरु वाकीँ सयोगी पुद्गल द्रव्य है,
 ताकेँ रस है सो पदगुनी हानि वृद्धितेँ अनन्त है सयोग सेती
 आत्मामें विभाव भरावै है ॥ ३५ ॥

अब—आत्मा शरीर-भिन्नी कथन ॥ दोहरा ॥

चेतन लच्छन आत्मा, जड लक्षण तन, जाल
 तनकी ममता त्यागिकेँ लीजै चेतन चाल ३६

अर्थ—अब आत्मा अरु शरीर एकमेक बधि रहे हैं
 पै लक्षण भेद न्यारौ न्यारौ कहै हैं—आत्माकी चेतना
 लक्षण है । तनु-जाल कहत शरीरको जड़ लक्षण है, ताँतें
 शरीरकी ममता छोरिक्के चेतनकी चालिसा शुद्ध ज्ञानपनी
 सोई गहि लीजे ॥ ३६ ॥

अथ-आत्माकरि शुद्ध परिणति यथा ॥ सर्वेया २२ सा

जो जगकी करनी सब ठानत,
 जो जग जानत जोवत जोई ।
 देह प्रमान पै देहसौं भिन्न,
 देह अचेतन चेतन सोई
 देह धरै प्रभु देहसों भिन्न,
 रहै परछन्न लखै नहि कोई ।
 लच्छन वेदि विचच्छन वृक्षत,
 अक्षनिसो परतक्ष न होई ॥३७॥

अर्थ—अब निःकेवल आत्माकी शुद्ध चालि कहै हैं—
 जोई पदार्थ सब जगतकी करनी करै, है । इतनै चतुर्गति

न करै है अरु जोई जगतफो जानै है, अरु लोचन
 तै देखै है, आप अपनी देही प्रमाण है पै देहमें दूसरो
 देह अचेतन पिंड है, अरु आत्मा चेतन पिंड है, देह
 ते है, प्रभु देहसों भिन्न है या देहमें प्रछन्न कहतै टा-
 ते रहै है । यासों कोऊ न लखै पै याका लक्षण जो है
 हा वेदि कहतै जानिकै निचक्षण पुरुष याकी बूके है अरु
 न कहतै इन्द्रियतै ए प्रत्यक्ष नाही ॥ ३७ ॥

अथ देह व्यवस्था कथन ॥ सर्वथा २३ मा ॥

देह अचेतन प्रेत दरी रज,
 रेत-भरी मल खेतकी क्यारी ।
 व्याधिकी पोट अराधि की ओट,
 उषाधिकी जोट समाधिसौ न्यारी ॥
 रे जिय । देह करै सुख हानि,
 इतै परितो तोहि लागत प्यारी ।
 देह तो तोहि तजैगी निदान पै,
 तू हि तजै क्योन देहकी यारी ॥३८॥

अर्थ—अब देहकी चाल कहै है—देह है सो अचे-
 तन प्रेत दरी है—जड़ता रूप प्रेतकी गुफा । रज कहते
 लोह, रेत कहते वीर्य तासाँ भरी है अरु मल रूप चोत्रकी
 क्यारो है । ज्याधि रोगकी पोरि है, आराध्य कहियै
 आत्मा तिन्दि द्विपाइयैको ओट है और कौसकै जो उपा-
 धी कहियै ताकी जाट कहिये मेलौ है । यामें असमाधिहो
 रहै है । रेजीव ! या देह सुखकी हानि करे है, इतने
 पर तौ तौको दह प्यारी लागै है, रे जीउ ! तू इतनी
 समुक्ति—या देह ताहि तजैगो तौ तूही दहकी यारी क्यों
 तजत नाहीं ॥३८॥

पुन दोहरा ।

सुन प्राणी सद्गुरु कहै देह खेयकी खानि ।

धरै सहज दुख दोषकों, करै मोचकी हानि

अर्थ—सद्गुरु कहै है—अर प्राणी ! देह है सो
 खेयकी खानि है धरि छार है । सहज स्वभावैं वात पित्त,
 कफ रूप दुख देहकों धरै है । मोचकी हानि करै है ॥३९॥

अथ देह वरनन ॥ सवैया ३१ सा॥

रेत-कीसी गढी किधों मढी है मसान कैसी,
 अंदर अ धेरी जैसी कदरा है सैलकी ।
 उपरिकी चमक दमक पट भूपणकी,
 धोसै लागै भली जैमी कली है कनैलकी ॥
 औगुनकी औड़ी महा भौंडी मोहकी कनोंडो
 मायाकी मसूरति है मूरति है गेलकी ।
 ऐसी देहयाही कै सनेह याकी सगति सो,
 ह्वै रही हमारी मति कोल्ह कैसे वैलकी ४०

अर्थ—अब देहकी व्यवस्था वरनन करें है—मानो
 रेतकी गढी बाधी है कै मसान केमी मढी है इतने अप
 त्रित तोरमें हाड मासकी होइ भीतरिली कौरि अवेरी होइ
 जैसे शैल कहिये पहाड़ ताकी कदरा कहिये गुफा
 भीतरी अधेरी होइ । अरु याकै उपरि पट भूपनकी चमक
 दमक होतु है तबतौ धोसै कहतै भूठेही भली लागै है ।
 यापरि दृष्टात कहै है—जैसे कनैरकी कली उपरिते भली

लागै अरु भीतरि निर्गंध उपाटकारी औगुनकी आडी
 ठौर है, ऐसी महा मोडी है। मोहकी कनौडी कहतैं
 माहकी कानी आखि है यातें सुभिवौ नाहो, मायाकी
 मसूरति है कहतैं मायाजालकौ मसूदा है। ऐसी मैल
 की मसूरति है ऐसी यो देह है। अरु या हीके सनेहसौ
 अरु याहीकी सगति सों हमारी मति बुद्धि है सो कोन्ह
 कहिये उप पीलिकाकौ यन्त्र, ताके बँल कीसी है रही है।

पुन सबैया ३१ सा।

‘ ठौर ठौर रक्तके कु ड केसनिके भु ड,
 हाडनिसौ भरी जैसे थरी है चुरेलकी।
 नेकुक धकाके लगे ऐसे फटि जाइ मानौ,
 कागदकी पुरी किधो चादरि है चैलकी ॥
 सूचै भ्रम ठानि ठानै मूढनिसौ पहिचानि
 करै सुख हानि अरु खानि वद-फैलकी।
 ऐसी देह याहीके सनेह याही सगति सों,
 है रही हमारी मतिकोल्हू कैसे वैलकी ॥४१॥

अर्थ—वहुरो देह स्वरूप कहै है—या देहमें ठौर ठौर लोहूके बुँड भरे ई, अरु या देहमें अपवित्र केसनिके झुड पाइये है अरु या देह हाडनिसों भरी है जैसे चुरैल द्यतरीकी थरी कहत धानिक है । चुरैलकी थलीमें हाड़ ही पाइये । योरसे धकाके लागै या देह ऐसै फटि जाइ है माना कागदकी पुरी है, कीधी चैलकी चादर है, जूनी मेली चादर है योरही धकै त फटि जाइ । या देहकी ममता तें भमकी वानि कहतें मिव्या वानी, सूचै कहतें कहै । अरु मूठ लोगनि सोंही पहिचानि परिचय ठान, कहतें राखै अरु देह है सो सुखकी ढानि करै है अरु वद-कैलिकी खानि है ऐसी या देह है । याके सनेह सों अरु याही की सगति सों हमारी मति बुद्धि है सो कोन्हूके वैल की सी हूँ रही है ॥४१॥

अथ—कोन्हूका वैलका अरु तसारी जीव का समान रूप कथन ॥सँवया ३१॥

पाटी बाधी लोचनिसों सकुचै दवोचनि सौ
कोचनिके सोंच सोन वेदे खेद तनकी ।

धायवो ही धंधा अरु कधा माहि लग्यौ जोत,
 वार वार आर सहै कायर है मनकौ ॥
 भूख सहै प्यास सहै दुर्जन की त्रास सहै,
 थिरता न गहे न उसास लहै त्रिनकौ ।
 पराधीन घूमै जैसे कोल्हूकौ कमेरौ बैल,
 तैसोई सुभाव भैया जगवासी जनकौ ॥ ४२ ॥

अर्थ—अप कोल्हूकी बैलकी अस्था और स सारी
 जीवको ताहीके समान कहै ह— जाके सोचन परि पाटी
 बधी है दगोच कहिय पगनिते ठेलिवा ताते सकुचे है ।
 अरु आरिजे कौच कहतै घाचे लागे है ताके सोचसा
 शरीरको खेद, बैठे नहीं दौरै फिरै । अपने धंधा माहि
 धायवो ही करे । अरु कधा माहि जोत लग्यौ रहे, वार
 वार आर सहिवा करै । अरु मनकौ कायर है, भूख भी
 सहै है, प्यास भी सहै है, दुर्जनके त्रासभी सहै है, थिरता
 ग्रहे नहीं त्रणमात्र सुखसो उसास ले सकै नहीं पराधीन
 धमै जैसे कोल्हूकौ कमेरौ कहतै काम-करनहारो बैल

धूमे है अहो भैया ! तू सौ ही स्वभाव जगत्रयवासी लोक
कौ है ॥४२॥

अथ जगत्रयवासा जीव व्यवस्था ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

जगतमें डोलै जगवामी नररूप धरि,
प्रेतकेसे दीप किधौ रेत कैसे थूहे है ।
दीसे पट भूपन आडवर सों नीके फिरै,
फीके छिनमांझि मांझि अ वर ज्यों सूहे है ॥
मोहके अनल दगें माया की मनीसों पगे,
डाभकी अनीसों लगे उस कैसे फूहे हैं ।
धरमकी वृंझि नाहिं उरमें भ्रम माहि,
नाचि नाचि मर जाहि मरी कैसे चूहे हैं ४३

अर्थ—अथ जगवासीकी व्यवस्था कहै हैं—जग-
वासी जीव है सौ मनुष्य रूप धरि कै जगतमें डोलि रहै हैं
ए जीव कैसे है मानौ प्रेत केसे दीप है प्रेतके दीप हुइके
सिताव मिटि जाइ अथवा रेतके थूहे है वस्त्र भूपणके
आडवर सों नीसे फिरत दीसै हैं अरु छन एक माहि

फीरु हुइ जात है जैसे अम्बर आकाशके विपै सार्भ समे
 घड़े कहते वादर है । मोहकी अगनिते दागे ह । अरु
 मायाकी मनी कहते अपना इनसों पगे कहते व्यापि रहै
 है, एरुमै है । डाभकी अनीसा लगी उम कैसे फूहे जैसे
 है सिंदु है धर्मकी वृष्ति नाहीं । अरु भर्म माहि उरभि
 रहै, जैसे मरी उतपातके चूहे नाचि नाचि मरि जाहि है,
 वैसे ए संसारी जीव नाचि नाचि मरि जाहि है ॥४३॥

अथ—नगत व्यवस्था कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥

जाको तू कहत यह स पदा हमारी सो तौ,
 साधनि अडारी ऐसे जैसे नाक सिनकी ।
 जाकौ तू कहत हम पुन्ययोग पाई सो तौ,
 नरककी सार्ड है बडाई डेढ दिनकी ॥
 घेरा माहि परौ तू विचारौ सुख आखिनको,
 माखिनके चू टत मिठाई जैसे भिनकी ।
 एतै परि होहि न उदासी जगवासी जीव,
 जगमें असाता है न साता एक त्रिनकी ४४

अर्थ—अब जगत्प्रासी जीवकी मोहकी व्यवस्था है—अबे प्राणी ! जानों तू कहत है यह सपदा हमारा सा तो साधु लागन ऐसैं टारि दीनी है जैसें नाक सि कहते नाकको मल है । अरु जानों तू कहत है यह पुन्य योग पाई है सो ता नरककी साई, राज्यादिक डेढ दिनकी है । परिवारके घेरामें परो थनौ आखिन सुख विचारै है पै यह परिवार घेरौ कैसौ है ? माखिनिकी चु टी मिठाई, भिनकी कहते भन भनाट में रहै, तैसै परिवार घेरौ है । एतै परि जगत्प्रासी जीव उद होतु नाहीं । अरु माच विचारसे तो जगत में असाता है पै एक चणकी साता नाहीं ॥४४॥

अर्थ—उपदेश व्यवस्था ॥ दोहरा ॥

ए जगत्प्रासी यह जगत इन्हमौ तोहि न व
तेरे घटमें जग वसै तामे तेरो राज ॥४५॥

अर्थ—एजु पूर्वे कहे सो कहे हैं—एसे जगत्प्रासी लोरु हैं, अरु इन्हमौ वास यह जगत्प्रासी है, इन्हि लोग सों इन जगत्प्रासी सों तरौ कार्य नहीं, सम्बन्ध न राखिवा

अब तरेही घटमें जगत्र वासी है तिन्ह जगत्रमें तरेौ राज्यहै

अथ—पिह ब्रह्माड वर्नन ॥ सबैया ३१ सा ॥

याही नर-पिडमें विराजै त्रिभुवन थिति,

याहीमें त्रिविध परिनाम रूप सृष्टि है ।

याहीमें करमकी उपाधि दुख दावानल,

याहीमे समाधि सुख वारिदकी वृष्टि है ॥

या मेकरतार करतूति याहीमें त्रिभूति,

यामें भोग याहीमें वियोग यामे वृष्टि है ।

याहीमें विलास सब गर्भित गुपत रूप

ताहोकां प्रगट जाकै अन्तर सुदृष्टि है ॥४६॥

अर्थ—अब 'जां पिड सो ब्रह्माड' यहु कहावति साचा करि दिखावै है—या मनुष्यके पिडमें कटित नीचे पाताल, लोक, नाभिमें तिर्यच लोक, ऊपरि उर्द्ध लोक, ऐसी त्रिभुवन स्थिति है अरु याही में कई परिनाम उपजति है कई बिलै जात हैं कई थिर है एमे त्रिविध सृष्टि बन है । और याही पिडमें कवहां समाधिसुख जो आवै है सोई

वारिदकी वृष्टि है, दावनल मेघ वर्षा है। याही पिडमें कर्म को कर्ता पुरुष है। याही पिडमें कर्मकी वियोग है। याही धृष्टि कहता, आत्मा धीस पाईये, ऐसी भाति याही पिडमें गभित कहत मध्य त्रिपै गुप्तरूप प्रच्छन्न रूप सब पिलास है पें एतै पिलास कै अन्तर सुदृष्टि है ताही को प्रगट है ॥४६॥

अथ—गुरुपदेश कथन ॥ सर्वैया २३ सा ॥

रे रुचिवत पचारि कहे गुरु
 तू अपनो पद वृभक्त नाहीं ॥
 सोज हियै निज चेतन लक्षण
 है निजमें निज गूभक्त नाही ॥
 सिद्ध सु-दृढ सदा अति उज्जल,
 मायाके फद अरूभक्त नाही ।
 तेरो सुरूप न दुन्दकी दोहीमे
 तोहीमें है तोहि सूभक्त नाही ॥४७॥

अर्थ—अब याही बातको गुरु उपदेश देहै—पचारि

कहते बौलाडके गुरु उन्हें है, रे रचिवत भव्य ! तू अपनो पद कहते स्थानक वृक्षत नाही है अपनो चेतन लघन हीरे में खोजु ए अपना लघन आपमें है गृक्षत नाही सो गुप्त नाँही । तेरौतौ स्वरूप सिद्ध समान है । स्वच्छद कहते अपने याधीन है, सदाई अति निर्मल है । ये माया जाल के फदमें नाही अरुभक्त है, तेरौ स्वरूप तो दु दकी दोही में नहीं, भ्रम जालकी दुग्धि में नाही, तोही में है पै तोहि मूक्षत नाही ॥४७॥

अथ ज्ञान माहात्म्य रथन । सत्रैया ३३ सा ॥

केई उदास रहैं प्रभु कारन,
 केई कहीं उठि जाहि कहींके ।
 केई प्रनाम करै गढ मूरति,
 केई पहार चढे चढि छीके ॥
 केई कहैं असमानके ऊपरि,
 केई कहैं प्रभु हेठि जमीके ।
 मेरौ धनी नहिं दूर देशान्तर,
 मोही में है मोहि सूक्षत नीके ॥ ४८ ॥

अर्थ—अब ज्ञान जागे अपनी ईश्वरता पाईये यह कहै है—इहै तौ अपनो प्रभु पहिचाननका उदासी हूँ बेटा रहे है । ईहै कहीं चेतन कहीं चेतनो उठि जाइ है । केई तो मूर्ति गढिके प्रनाम करै है, तेई तो प्रभु मिलनका पहार चढै है, तेई छोकै चढै है, कइरु तौ प्रभुकाँ असमानके उपरी कहै है । ऐसी श्रद्धा लिये वैशेषिक प्रमुख है । केई तो जमीनके हठि प्रभुकाँ कहै है, ऐसी कुरान वाले की है पै यहु बात निश्चै सों तो यो है जो मेरो धनी कहीं दूर देशातर नाही, माहीसे है, । अरु अनुभव तें मोहि नीके सभतु है ॥ ४८ ॥

अथ दोहा ॥

कहै सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होइ ।
सुधिरचित्त अनुभौ करौ, यहु पद परसै सोइ ४९

अर्थ—सुगुरु कहै है—जो समकिती होइ सो परम उदासीन रूप है तेँ, सुधिर चित्त राखिके अपनौ अनुभव करै तव याके पदकाँ परसै ॥ ४९ ॥

अथ मन स्वरूप कथन ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

छिनमें प्रवीन छिन ही मे मायासों मलीन,
 छिनुकमें दीन छिन मांहि जैसो शक्र हे ।
 लीये दौर धूप छिनु छिनुमें अनतरूप,
 कोलाहल छानन मथान कौ सो तरु हे ।
 नटमो सों धार किधौ हार है रहट-कौसो,
 धारकौसो भोर कि कु भारकौसो चक्र हे ।
 ऐसो मन भ्रामक सुथिर आजु कैमों होत,
 ओर हीको चचल अनादि ही कौ वक्र हे ५०

अर्थ—अथ मनको चंचलता कहिके मन थिर राखिबे
 उपदेश दे हे—यां मन चनमें प्रवीन है रहे, क्षणमें
 मायासों मलीन तो रहै है, क्षण एकमें दीन दशा धारै है
 क्षण एकमें शक्र कहत इन्द्र जैसे हाड़ बैठे है दौर धूप
 कहत दौर धावा करै है, क्षणमें अनतरूप धारै है ।
 ऐसो कोलाहल मचाइ राखै है, मथानीकी छामी मिलोवत
 जैसे कोलाहल करै तैसे । जैसे नट भोपाको धार

क्रिधो अरहटकी मालि घूमि रही, कै नदीकी भोरी यों घूमि
 रखौ कै बुभारकी चारु सौ भमि रखौ, मनतों ऐसो सदा
 आमरु कहतैं भमि रखौ है । सौ ती मन ध्यान ही कैसे
 थिर होत, औरै जातिकी च चल है, अरु अनादि कालको
 वाकी ही चलै है ॥ ५० ॥

अर्थ—मनकी च चलताको और कहै हैं ॥सवैया३१॥

धायो सदा काल पै न पायौ कहो साचौ सुर
 रूपसौ विमुरस दुरस कूप-वास वसा है ।
 धरमको घाती अधरमको स घाती महा,
 कुरापाती जाकी सनिपातिकीसी दशा है ।
 मायाको भ्रपटि गहे कायासों लपटि रहे,
 भूल्यौ भ्रम भोरमें वहीर कौसो ससा है ।
 ऐसो मन च चल पताका कौसो अचल सु,
 ज्ञानके जगसो निरवान पद धसा है ॥५१॥

अर्थ—अब औरै ही मनकी च चलताको कहै हैं—
 सदा काल में दौरी रहै है पै या मनकी कहो साचौ

सुख न पायौ, अपने समाधि रूप सा विमुख भयो । अरु
दुख रूप कूप वासमें वस्यौ है । ए मन धर्मकी घाती है
अरु अधर्मकी संघाती है ऐसी कुरापाती है । जाकी दशा
सनिपाती पुस्पकी सी लगै है, द्रोह प्रपचको कपटि ग्र है,
जापाके मोहसों मगन है रहे, भ्रम-जालमें फस्यौ भूष्यौ
ही फिरै, जैसे कटकी वहीरमें ससली ही जीव आनि
फस्यौ भूष्यौ ही फिरै, ऐसी जो मन है सो पताका कहियै
धुजा ताके अचल वध्र ज्यौ च चल हूँ रहौ है, सो
ज्ञानके जागे तैं निरवान रहियै मोक्ष-मार्ग ताके पथ में
घसै नैठै ॥ ५१ ॥

अथ मनकी च चलताका विशेष लक्षण ॥ दोहरा ॥

जो मन विषय कपायमें, वरतै चंचल सोइ ।

जो मन ध्यान विचार सो, रुकै सु अविचल होइ

अर्थ—जो मन विषय कपाय रूप राग द्वेषमें वर्ते सो
ता मन च चल जानिये । जा मन राग द्वेष छाड ध्यान
विचार नों रुक्या रहै सो अविचल होइ ॥ ५२ ॥

अथ शिवा कथन ॥ दोहरा ॥

ताते विषय कषाय सौ, फेरि सु मनकी बांनि ।
शुद्धात्म अनुभवविषै, कीजै अविचल आनि ॥

अर्थ—ताते विषय कषाय सौ जो जो मनकी बांनि
लगी है सो फेरिकै अपने शुद्धात्माकै अनुभव विषै मनको
अविचल कीजै ॥ ५६ ॥

अथ विचार शिखा कवन ॥ सवैया ३१ सा ॥

अलस अमूरति अरूपी अविनासी अज,
निराधार निगम निरजन निरवध है ।
नाना रूप भेष धरै भेषको न लेश धरै,
चेतन प्रदेश धरै चेतनको खध है ॥
मोह धरै मोहीसौ विराजै तोमे तौ ही सौ,
न तौहीसौ न मोहीसौ निरागी निरवध है
ऐमो चिदानन्द याही घटमें निकट तेरे,
ताहि तू विचार मन और सब धध है ५४

अर्थ—अब मन थिर करिवेकों आत्मा ही कों विचार
करनी ऐसैं कई है । ए आत्मा अलस है, अमूर्ति है,

ए अरूपी है, ए अपिनासी है, ए अज कहतै जायौ नहीं
 याकै कोऊ आधार नहीं ज्ञान रूपी है याकै कोऊ रग नहीं
 याकै कोऊ रघ छिद्र, व्यवहार देखियै तौ नाना प्रकारको
 भेष वारै है । निश्चय में देखिये तौ भेषको लेश हू धरै
 नहीं, चेतनाके प्रदशनिकौ धरै है अरु चेतनाको स्वध
 कठतै पु जरूप है । यहु उपदेश मनको वाद्यात्माको है,
 सो वाद्यात्मा मनमों कहे है । यौ चिदानन्द जो है सो
 मोही मों मो पिंड सो मोहि धारै है । अरु हो मन ! सो
 चिदानन्द तौ मैं तो ही सा विभाजै है पं निश्चै नयतै तोही
 सौ मोही सौं याको मोह नहीं ऐसौ नीरागी निग्रध है ।
 ऐमौ चिदानन्द भगवान है सो अरे मन ! याही घटमें,
 जहा तू रहै है तहा याही रहतु है तातैं या ईश्वरको ही
 विचारिवो करि आर प्रपच सत्र धधरूप है ॥ ५४ ॥

अथ शुद्ध अनुभव शिवा कथन ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

प्रथम सुदृष्टिसो शरीर रूप कीजै भिन्न,
 तामें और सूक्ष्म शरीर भिन्न मानियै ।

अष्ट-कर्म भावकी उपाधि सोई कीजै भिन्न,
 ताहमें सुबुद्धिकौ विलास भिन्न जानियै ॥
 तामें प्रभु चेतन विराजत अखड रूप,
 धरै श्रुत ज्ञानके प्रवान उर आनियै ।
 वाहीकौ विचारि करि वाहीमें मगन हूजै,
 वाकौ पद साधिवे कौ ऐसी विधि ठानियै ५५

अर्थ—वा चिदानन्दकौ जैसे शुद्ध अनुभव होइ तैसी ही शिवा कथन करें—प्रथम तौ सम्यग्दृष्टि सों शरीररूप बाह्यात्मा भिन्न राखियै, ता बाह्य आत्मामें और ही सूक्ष्म शरीर कर्म सन्धी अतरात्मा सोई भिन्न जानियै, तिहि अतरात्मा सों जो परमात्मा सों जो परमात्मा के ज्ञान डरानो, दर्शन डरानो, ऐसै अष्ट प्रकार कर्म भावकी उपाधि लागी सोऊ भिन्न जानियै । अरु तिन्ही अतरात्मामें सुबुद्धिकौ विलास जो भेद ज्ञानादिक सोऊ भिन्न जानियै । ताह सुबुद्धि विलास में चेतनरूपी प्रभु जा है सौ अखड रूपी विराजै है । अरु वह चेतन श्रुत ज्ञानके प्रमान तें हियै

में ठीक ठहराइये । अरे हो मन ! तू वाही कौ विचार में
मगन हुवै अरु वा चेतन पदसाधिने कौ इतने मोक्षसाधिवै
नौ ऐसी विधि करिये ॥ ५५ ॥

अथ—ज्ञाता जीव कथन ॥ चौपाई छंद ॥

यह विधि वस्तु व्यवस्था जानै,
रागादिक निज रूप न मानै ।
ताते ज्ञानवत जग माही,
करम बधकौ करता नाही ॥५६॥

अर्थ—अत्र ज्ञाता जीव कौ स्वरूप कहै है—ऐसी
भांति वस्तुकी व्यवस्था जानै । अरु जो राग द्वेषादिक
भाव है सो अपनौ रूप न मानै । ताते ज्ञानवत है सो
जगत्रयमें कर्मबधनौ कर्ता नाही कहौ ॥५६॥

अथ—ज्ञाताकी क्रिया कथन ॥ सवैया ३१ सा ॥
ज्ञानी भेदज्ञानसों विलेच्छि पुद्गल कर्म,
आतमीक धर्मसो निरालो करि

ताको मूल कारण अशुद्ध राग-भावनाके,
 नासिवैको शुद्ध अनुभो अभ्यास ठानतो ॥
 याही अनुक्रम पररूप सन्वध त्यागि,
 आपु माहि आपनो स्वभाव गहि आनतो ।
 साधि शिव-चाल निस्वध होतु तिहकाल,
 केवल विलोक पाइ लोकालोक जानतो ५६

अर्थ—अब ज्ञाताकी क्रिया कहै हैं ज्ञानी होइ सो
 भेदज्ञान सो पुद्गलीक कर्मको विलक्षण करै कैसें करै ?
 साँ कहै है ~ आत्मीक वर्म तँ पुद्गलीक धर्म न्यारौ करि
 जान, ऐसें विलक्षण करे । अरु तिहिं पुद्गल धर्मको मूल
 अशुद्ध राग द्वेषादिक भाव है ताको नाश करिवको शुद्ध
 अनुभव अभ्यासै, जैसे पूर्वं कही है तैसी भाति अभ्यास राखै
 ऐसी भाति अनुक्रमे । प्रथम सुदृष्टि सो शरीर रूपकी भिन्न
 या रीतिसौं जैसे अनुक्रम कही तैसी भाति पूर्ण संवधसों
 अनादि कर्म बंधको त्यागिके आप माहि आपनौही ज्ञाना-
 दिक स्वभाव गहे । ऐसें शिव पद की साधना को करिके

तिहोंकाल निर्बंधन भए ह तैसैं निर्बंधन होइ केवल ज्ञान
पाइके लोशालोक कौ जाननहार होइ ॥५४॥

अथ—सम्यक्त धारी वैभय वर्जन ॥मवैया ३१ सा ॥

जैसैं कोऊ हिंसक अजान महा बलवान,

सोदौ मूल विरख उखारै गहि वाहसौ ।

तैसैं मतिवान दर्व-कर्म भावकर्म त्यागि,

है रहे अतीत मतिज्ञानकी दशा हूसौं ॥

याही क्रिया अनुसार मिटै मोह अ धकार,

जगै जोति केवल प्रधान सविता हूसौ ।

बृकै न सकति सो लुकै न पुद्गल माहि,

धुकै मोख-थलकौ रुकै न फिरि काहूसौ ५८

अर्थ सम्यक्त धारीश्री पराक्रम कहै हैं—जैसैं कोऊ हिंसक
पुरुष भील प्रमुख है, हिंसके फलकौ अजान है, अरु महा
बलवान है, सो बृचके मूलको खोदिके पीछे अपने भुजबलते
उखारि डारै है, तैसैं मतिमान कहियै सम्यक्ती पडित हैं
सो पुद्गल स्वरूपी द्रव्यकर्म को जैसैं ज्ञानापरनपनी अर

दर्शनाररनपनौ इत्यादिक आठ, रागादि भावकर्मको त्यागिऊँ
 मतिज्ञानकी दशातें अतीत कहत कर्म रहित हो रहै । घन
 घन याही क्रियाकौ अनुसार लियै मोह अघरार मिटै,
 यातें केवल ज्ञानकी ज्योति जागै या ज्योति जो है सो
 मतिज्ञान प्रमुख सनिताहूसों प्रधान है, यातें अनत वीर्य
 प्रगटै, फिरि या संगतिसों चूकै नहीं अरु मोचस्थान कों
 जाय दुकै करु कह सो फिरि रुकै नहीं ॥५८॥

इतिथी समयसार नाटक विषे बधद्वारविषैवाल बोधरूप
 समाप्त भयो ।

इति बधधिकार सम्पूर्णम् ॥

मोक्ष-द्वार ।

प्रतिज्ञा (दोहरा)

वध द्वार पूरौ भयो, जो दुख दोष निदानु ।

अव वरनौ सछेप सों, मोक्ष द्वार सुख थानु १

अर्थ—जो दुखकौ निदान अरु दोषकौ निदान वध है ताकौ द्वार सम्पूर्ण भयो । अत तौ सुखकौ स्थानक जो मोक्ष है ताकौ द्वार सछेपसौ वरनौ हों ॥१॥

अव—ज्ञान विलास वरन ॥ सवैया ३१ सा ॥

भेदज्ञान आरासों दुफारा करै ज्ञानी जीव,

आत्म करम धारा भिन्न भिन्न चरचै ।

अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै,

करम भरम कौ खजानौ खोलि खरचै ॥

योंही मोरा मुख-धावै केवलि निकटि आवै,

पूरन-समाधि लहें मूरत कै परचै ।

भयौ निरदौरि जाहि करनौ न कछु और,
ऐसौ विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै ॥२॥

अर्थ—अत्र माचु द्वारके आदि ज्ञान विलास को नमस्कार करै है—जसैं कौऊ पारखू रूप मुद्रा प्रमुख द्रव्य कौ सुलाकनी आर सों भेदें सो धातु बुधातुकौ ब्यारौ करै तैसैं ज्ञानी जीव है सो भेदज्ञान रूपी आरासों आत्मा पनी, कर्मपनी दुआरा करै । ए दोनु धारा दोनु रीस भिन्न भिन्न चरचै । अरु यामें आत्मीक धारामें तौ अनुभवकौ अभ्यास धारै । तातें परम-धर्म कहतै शुद्ध समाधि ताकौ गहै । अरु जा कर्म भर्म जाल न्यारो जान्यौ है ताकौ सत्तारूप खजानौ खोलि खरचै, सौ विरोरिकैं निज राखै । ऐसैं चपक श्रेणी करिकैं मोक्ष को धावै । तहा केवल ज्ञान निकट आवै । तहा पूर्ण आत्म-स्वरूपके परिचयतै पृथे समाधि पावै । पीछै भय भ्रमणकी दीर छाडि निरदौर भयो कृतकृत्य भयो । जानौ और कछु करनौ न रखौ, तातैं विश्वकौ नाथ भयो, ताहि बनारसीदान अरचै ॥२॥

अर्थ—सुनुद्विपिलासरनन ॥ सबैया ३१ सा ॥

काह एक जैनी सावधान है परम पैनी,
 ऐसी बुद्धि-छैनी घट माहि डारि दीनी है
 पैठी नोकरम भेदि दरव करम छेदि,
 सुभाउ विभाउ ताकी सधि सोधि लीनी है
 तहां मध्यपाती होय लखी त्तिन्हि धारा दोष
 एक मुधामई एक सुधारस भीनी है ।
 मुधामों विरचि, सुधा सिधुमें मगन हूसे,
 एती सब क्रिया एक समे वीचि कीनी है

अर्थ- अथ मुमुक्षुद्विके विलास सौ आत्मास्वरूप मधे
 कहे हैं— काह एक जैनी जैन आगमके जाननहारै स
 धान हैके परम पैनी अति तीखी ऐसी बुद्धि रूप छैनी
 सोनारकी छानी, शस्त्र विशेष, अपने घटमें डारि दीनी ।
 वा मुमुक्षु छैनी नोकरम कहियै आत्म प्रदेशनि विषै श
 रूप जो औदारिकादि वर्गया है तिहि नोकरमको भेदि त
 पुद्गल रूपी कर्मको छेदिके स्वभावता अरु विभावत
 सधि सोधि लीनी है । ताही सधि विषै मध्यपाती क

निहाइत होइकै तिन्हि पुरप दोइ धारा लखी । दोइ भांति लखी । तामें एक मुधा मई कहतें एक अज्ञान-मई, एक सुधारस भीनी कहत अमृत रस भीनी ज्ञान समाधि मई है यहा रागद्वेषादिक की दशा है, सो तौ मुधा दशा है । तातें विरचिकें वैराग्य धारिके सुधासिधु मगन हवै । ज्ञान समाधि रूप सुधा समुद्रमें मगन रहिये दहाजों इहाली इतनी क्रिया कही, एसी सर क्रिया एक समय बीचि करै ॥३॥

पुनः दोहरा

जैसे छैनी लोहकी, करै एकसों दोइ ॥

जड चेतनकी भिन्नता ज्यों सुबुद्धि सो होइ ॥४॥

अर्थ—जैसे लोहकी छैनी होइ सो एरुसों दोइ करै । तैसें जड चेतनकी एकता भाजि भिन्नता करनी, सो सुबुद्धि सों ही होइ ॥४॥

सुबुद्धिविलासकथन सवैया ३१ सा (सर्व लघु चित्रा)

धरति धरम फल हरति करम मल,

मन वच तनु बल करति समरपन ।

भखत असन सित चखति रसन रित,

लखति अमित वित करि चित दरपन ॥

कहति मरम-धुर दहति भरम पुर,

गहति परम गुरु उर उपसरपन ।

रहति जगति हित लहति भगति रति,

चहति अगति गति यहु मति परपन ॥५॥

अर्थ—अब जैसे सुबुद्धिसे विलास होइ तैसे हैं—सुबुद्धि है सो धर्मरूप फलकों धारै है, कर्मरूप को हरै है. या क्रिया विषै मनोबल, वचनबल, कामसमर्पण करै, इतने तीनों बल तिहिं क्रिया विषै लगत असन कहते भोजन, सित कहतें शीतल भखै । रस कहते जीभ सवाद विना चाखै । अमित वित कहतें परिमाण अपनौ ज्ञानादिक धन चित रूप दर्पण वतामें लखै मर्मधुरा कहते मर्मकी बात, जीवकी स्वरूप मर्म पुर कहतें मिथ्या नगर ताकी दह जातै । उपसर्पण कहतें थिरता राखिकै परमगुरु परमात्माकी जगतको हितकारी रहै । तीनों लोककी भगति अरु कहतें मग लड़े इतने सब लोगनिके पानीस

अगति गति कहत जामें और मामान्यमें गमन नाही, इतने
मात्रगति चाहै । ऐसं मतिमें परपन रुद्धते उत्त्थविलास है ।

घाताको विलासवर्जन मर्षया ३१ सा (सर्वं गुरु चित्रा)
राणाकोसो वाना लीने आया साथै वानाचीन्है,
दाना-अगी नाना-रगी खाना-जगी जोधा है ।
मायावेली जेतो तेती रते मेघा रती सेतो
फदाहीको सदा सोदौ सेती कोमो लोधा है ॥
वाधासेती हांता लोरें राधा सेतो नाता जोरें
वादीसेती नाता तोरें चादी कोसो सोधा है ।
जानै जाहि ताहि नीकें माने राही पानी पीकें
ठने वाता डाही ऐसो धारावाहो बोधा है ६

अर्थ—अब ज्ञाता को विलास रुद्ध है—जो जोदा
रहते ज्ञानी है सो राना रुद्धियें राजा पातिमाह ताकी
से माना लोयै रहे है जैसे रानी आत्म-साधन करै,
परपनी मंडल साभि रारै । अरु अयन वानाकी चीन्है
नेगाहदारीमें राखै । दाना अगी होइ, नादान होइ अरु

च्यारौ उपायतैं नाना र ग करै, खाना जगोमें जोधार होइ
 ऐसै ज्ञाता ह आत्म - साधन करै, गुनवाना चीन्है अरु
 त्यागी होइ । कर्मनिर्जरामें नाना प्रकारके र ग धारै, राग
 द्वेष दुर्जन सों लरै, हटाड दे । ऐसे एक पदके दोइ अर्थ
 कहे । जैसे लोहा रतीसों रहै, रतीसां लोहाको रति डारै
 तैसें जितनी तितनी माया बेली कहतै भर्म जाल गज बेलि
 को, मेधा सों बुद्धि, तिहिरुग रती सेती रतै घमि डार अरु
 फदके कवकौ खोदै । जैसे लोधा कहियै क्रिमान खेतकौ
 करनहार, खेत धरतीमें रुद मूल को खादि डारै । बाधा
 कहियै कर्म बन्ध तिन्ह सो हाता जारे, जुदाइगी करे
 राधा कहिये सुबुद्धि तिन्हसों तांता जोरै । गदी कहिये
 अज्ञान भाव तिन्हसों नाता सवध तोरै । जैसे सोना रूपा
 की चादीसौ सोधनहार अस्तु उज्जल करै, जाही ताही
 नीकै जानै सोहे, नयको भी नीको जानै । उपादेय कौ भी
 नीकजानै पै हेयको राही पाही फूस समान, पीक समान
 जानै । ऐसी भाति जाही चारै ठहरावै ऐसौ सम्यक धारा
 कौ बहनहार बोधा ज्ञानी, पंडित ज्ञाता होइ ॥६॥

अथ—ज्ञाता चक्रवर्ता समान ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

जिहिकै दरव मति साधन छखड थिति,
 विनसै विभाव-अरि पकति पतन हे ।
 जिहिकै भगतिकौ विधान एई नौ निधान,
 त्रिगुनके भेद मान चौदह रतन हे ॥
 जिहिकै सुबुद्धि-रानी चूरै महा मोह वज्र,
 पूरै मगलीक जे जे मोराके जतन हे ।
 जिनके प्रमाण अग सोहे चमू चतुरंग
 तेई चक्रवर्ती तनु धरै पै अतनु हे ॥७॥

अर्थ—अब ज्ञाताको चक्रवर्ती समान रुहि दिखावै
 है—जिहि छहों द्रव्य प्रधान करि साधै, सोतौ छहों खड
 साधिलीनै । अरु जिन्हके राद्वेपादिक विभाव चित्त से सोई
 वाके अरि पकति पतन हे कहते शत्रु समूहको नाश भयौ
 अरु नव प्रकारकी भक्तिकी विधान कहतै करतो एई जाके
 नव निधान हे । ज्ञान दर्शन चारित्र रूप जो तीन गुन हैं
 अरु जाके क्षयोपसमा भाषक जो भेद उपजै हैं सो जाके
 चौदह रतन है । चक्रवर्तीको स्त्री रतन होइ, सो चक्रवर्तीके

पट खड साधिवैरुँ राज्याभिषेक समय होइ तत्र वज्र रत्न
 हाथ सौँ चूरिकुँ मुह आगे मगलीक चौक पूरै । तैसेँ
 जिन्हिके सुबुद्धि रूप स्त्रीरत्न महा मोहरूपी वज्र कौँ चूरि
 के मोचके जतन हेतु मगलीक पूरे, मगलीक कार्य करै ।
 अरु प्रत्यक्ष प्रमाण करिकुँ अर्थकौ प्रहै है । ताते जिन्हके
 प्रमाण रूप अग है सोई चतुरंग सेना भई । ऐसेँ ज्ञाता
 चक्रवर्ती शरीरधारी है पै अशरीरी जैसेँ है ॥७॥

अथ—नौधा भक्ति वर्नन ॥ दोहरा ॥

श्रवन कीरत चितवन सेवन वदन ध्यान ।

लघुता समता ऐकता नौधा भक्ति प्रधान ८

अर्थ—पूर्वे जो नौधा भक्ति समारी थी अरु ताकौ
 वर्नन करै है—उपादेय स्वरूपको सुनै । कीरतन कहतै
 कहे । चितवै- ध्यावै । मेराकरे- पूजाकरे । स्तुति करै ।
 ध्यान लगावै । सताव सौ तन्मयता है—समाधि लगावै
 एक मेक होइ । एई नौधा कहतै नौ भेदतै भक्ति
 प्रमान है ॥८॥

अथ—अनुभव वचन ॥ सर्वथा ३१ सा ॥

कोऊ अनुभवी जीव कहे मेरे अनुभौमें,
 लक्षण विभेद भिन्न करमकौ जाल है ।
 जानै आपा आपुकौं जु आपु करै आपु विपै,
 उत्पत्ति नाश ध्रुव धारा असराल है ॥
 सारे विकल्प मोसों न्यारे सरवथा मेरो,
 निहचै सुभाउ यहु व्यवहार चाल है ।
 मैतौ शुद्ध-चेतन अनत चिन्मुद्रा धारी,
 प्रभुता हमारी एक-रूप तिहु-काल है ॥६॥

अर्थ—अब जो ज्ञाता मोक्षकौ उन्मुख भयो
 ताके अनुभव की दशा कहे हैं—चिन्हि आत्मारौ अनु-
 भव पायौ सोई अनुभवी जीव ऐसै कहे हैं—मेरे अनुभव
 में लक्षण भेद करिकै कर्म जाल अब भिन्न दीसन लाग्यौ
 यहा आत्मा ही कर्ता कारक, आत्मा ही करन कारक करि-
 कै आत्मा ही आधार कारक विपै, आत्मा ही कर्म कारक
 को जानै । अरु इहांके पर्यायनिकी उत्पत्ति है नाश है
 अरु द्रव्ये ध्रुवता है ए तीनों ही धारा असराल बहि रही

है, पर ए तीनों धारा विकल्प रूप है, अरु मोसौ तौ चरित्र-
 न्य सर्वथा न्यारे ही है । विकल्प में तौ निश्चय न्यहो ।
 अरु मेरो तौ चेतन स्वरूप निश्चय स्वभाष है । अरु जो
 पूर्व तीन धारा रही सोतौ व्यवहार नयकी चालि नै है
 अब ।सद्वात वचन कहै हैं ततिं मे तौ शुद्ध चेतन
 हों । अरु अतत चिन्मुद्रा धारी कहत अतत ज्ञान के
 हारो हों । ऐसी हमारी प्रभुता तिहों काल विषे
 है ॥६॥

अथ—चेतना वर्णन ॥ सर्वथा ३१ अ ॥

निराकार चेतना कहावै दरशुन
 साकार चेतन शुद्ध ज्ञान गुणन
 चेतना अद्वैत दोऊ चेतना
 सामान विशेष सत्ता ह्यो
 कोऊ कहै चेतना चिह्न अतमाने
 चेतनाके नाश होतु अकार है ।
 लक्षणको नाश न्यन्य भूल

तातें जीव द्रव्यकौ चेतना आधार है ॥१०॥

अर्थ—अब चेतना ही कौ स्वरूप दिखावें हैं—जो आत्मा कौ दर्शन गुण निराकार कहिये है सो तौ निराकार चेतना भई, अरु जो आत्मा कौ शुद्ध ज्ञान गुण सारभूत है, सो तौ साकार चेतना भई, कहिये विशेषता लीये है, तातें साकार है। ऐसं निराकारपनें, साकारपने दर्शन ज्ञान में द्वैत भाव भयो पै चेतनामें तौ अद्वैत-भाव ही रह्यो।

अरु चेतना गुणते चेतना द्रव्य है तातें चेतन द्रव्यमें दोनु समाइ गए। अरु निराकारपनौ तथा साकारपनौ सामान्य विशेष है सो तो सामान्य विशेष चेतन द्रव्यकी सत्ता कौ प्रिस्तार है। काई मूढमति वैशेषिक प्रमुख कहै आत्मा में चेतना चिन्ह नाहीं ? चेतना लक्षण नाहा ? ताको कहिये, अरे मूढ ! चेतना चिन्ह नहीं तौ चेतनाके नाश भयेतें त्रिविधि प्रकार होइगी सो कहै इ-लक्षणके नाश भयेतें वस्तु की सत्ता को नाश होइ, अरु वस्तुकी सत्ताका नाश भये तें मूल रूप वस्तुकौ ही नाश होइ तातें जीव द्रव्य जानिवैकौ तौ चेतना ही कौ आधार है ॥१०॥

पुनः दोहरा ॥

चेतन लक्षण आत्मा आत्म सत्ता मांहि ।

सत्ता परिमित वस्तु है भेद तिहौमें नाहि ११

अर्थ—आत्माकी चेतना लक्षण है सत्ता धर्म आत्मा
ठहरै नाहीं तावें आत्मा सत्ता मांहि है । अरु अपनी सत्ता
पारमानें वस्तु हैइ । वस्तु विचारें देखियें तब तिहो वस्तुमें
भेद कौऊ नाही ॥११॥

अथ—चेतना अग्निनासी यहु कथन ॥सवैया २३ सा
ज्यों कलधात सुनारकी संगति,

भूपन नाम कहै सब कोई ।

कचनता न मिटी तिहि हेतु,

वहै फिरि ओटिकै कचन होई ॥

त्यो यहु जीव अजीव सजोग,

भयो बहु-रूप भयो नहिं दोई ।

चेतनता न गई कबहो,

तिहि कारन ब्रह्म कहावत सोई ॥१२॥

अर्थ—अप्य लक्षणको शारयतपनौ अविनासीकपनी
 जैसे दिढावें है—जैसें कलधौत कहियें सौनौ, सो सोनारनि
 धरिकें भूपन कहों तवतें सब कोई लोग सोनारकी सगति
 वाकां भूपन कहने लागे तोहू वा वस्तुकी कचनता
 मिटी नहीं । तिहि कारन करिकें वही भूपन वस्तु अगनि फि
 रि औटिकें शुद्ध स्वभाव कचन होई । तसै यहु जीव जुहै
 सो अजीवरूप कर्मपुद्गल रागादिक औरहू पुद्गल संयोगतें
 एरु सताणू लाख कुल कडिर्म बहुरूप भयौ तोह दुविधा
 में न भयौ, जातें जीव के बहुरूप भयौ हों चेतनता कवहो
 न गई तिहि कारन करिकें सो सप्र रूपमें ब्रह्मही कहावै है ।
 विस्तार जाकौ बडौ सोई ब्रह्म कहियें ॥१२॥

पुन सवया २३ सा ॥

देखु सरी यहु आपु विराजित,
 याकी दशा सब याही कों सोहै
 ऐकमें ऐक अनेक अनेक मे
 दु द लियै दुविधा न हि दो हैं ॥
 आपु सभारि लखै अपनौ पद,

आपु विसारिके आपहि मोहै ।

व्यापकरूप यहै घट अंतर,

ज्ञानमें कौन अज्ञानमें को है ॥१३

अर्थ—औरों योही अर्थ विशेषपने कहै है—आत्मा की अनुभूति सुसुद्धि सखी सों कहै है, हे सखी ! देखियो, अपनौ ईश्वर विराजतु है । अरु वा ईश्वर की दशा ही कौ सन सोहै । जैसी विरुद्धपनौ और ठौर न सोहै । लक्षण करि एरुतामें देखियै तौ एक रूप है । अरु अनेक अपर सत्तामें देखिये तौ अनेक रूप है । अरु दु द दशामें देखियै अज्ञान दशामें देखियै तब दुविधा, दोई रूप है सो दुविधा कहै हैं । कब हों तौ अपनौ पद, अपनौ स्वरूप सभारिकै आपुही लखें । ऊरहों कि अपनपी विसराइकै आप ही मोहमें परई । हे सखी ! यहु ईश्वर घटके अंतर व्यापक रूप है, तातें जिहिं तिहिं अस्थामें व्यापे है । तब ज्ञान में और कौन है अरु अज्ञानमें और कौन है ॥१३॥

अथ—अथ या वात पर दृष्टात देहै पुनः सर्वथा २३ सा

जो नट एक धरै बहु भेष,
 कला प्रगटै जग कौतुक देखै ।
 आपु लखै अपनी करतूति,
 वहै नट भिन्न विलोकत भेखै ॥
 त्यों घटमें नट चेतन राउ,
 विभाउ दशा धरि रूप विशेषै ।
 खोलि सुदृष्टि लखै अपनो पद,
 दु द विचारि दशा नहिं लेखै ॥१४॥

अर्थ—अब दृष्टांत या बात पर कहै—जैसै कोऊ नट
 सो बहुभेष धारे है । आप अपने भेष की कला प्रगटावै
 तब सब जगत वारों कौतूहल देखै पै वह नट अपनी
 या आप लखै है तिहि भेषकी आपतें भिन्न देखै है । तैसै
 में चेतन राउ रूप नटुआ है, सो विभावदशा धरिकें
 विशेष करै है, पै जब सुदृष्टि खोले है तबती अपनों
 लखै है । अरु दु द विचारकी दशा अपने लेखेमें न
 आवै ॥१४॥

अथ चेतना उपादेय यद्बु कथन ॥ अडिन्ल छद ॥

जाके चेतन-भाव चिदात्म सोड है ।

और भाव जो धरै सु औरै कोइ है ॥

यो चिन्मडित भाव उपादे जाननें ।

त्याग जोग परभाव पराए मानने ॥१५॥

अर्थ—अथ चेतना नदुआ सन भेष में एक रूप है, सोई उपादेय वस्तु है यह कहैं—जाके निषे चेतना भाव है सो चिदात्मा चिद्रूप कहिये । यहा चेतना भावतें और भाव को जोई धारे है सो तौ कोई और ही है । यातें चेतना मडित भाव है सो तौ उपादेय रूप जानिये अपनी करि जानियै । अरु चेतना भावतें जो पर भाव है सो सन त्याग योग्य हैं, पराए करि मानि लीजै ॥१५॥

अथ सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गको साधन कथन । सबैया ३१सा

जिन्हके सुमति जागी जोगसो भए पिरागी,

पर-सग त्यागी जे पुरुष त्रिभुवन में ।

रागादिक भावनिषों जिन्हकी रहन न्यारी,

कवहों मगनहूँ न रहै धाम धन में ॥
 जे सदीव आपसौ विचारै सरवग शुद्ध,
 जिन्ह के विकलता न व्यापे कहुँ मन में ।
 तेई मोख मारग के साधक कहावैं जीव,
 भावैं रहौ म दिर मे भावैं रहौ वनमें ॥१६॥

अर्थ—अरु जो सम्यग्दृष्टि चेतना को उपादेय राखि
 के मोक्ष मारग के साधक भए ताकी व्यवस्था कहै है
 जिन्हके हिये सुबुद्धि जागी, अरु भोग निषय सों जे वि-
 रागी भए । अरु जो राग द्वेषादिक भाव पदार्थ है तिन्हि
 सौ जाकी रहनी न्यारी है, तातैं धाम कहतें घर, और
 जो धन है तामें मगन होइ रहैं नहीं अरु जो सदाई निरचै
 दृष्टि दे के आत्माकी सर्वा गशुद्ध विचार है, तातैं जाके मन
 में विकलता न व्यापै है । जैसी दशा लीए जो जीव रहै हैं
 तेई जीव मोक्ष मार्ग साधक कहावैं, म एतौ भावे मदिर में
 रहौ, भावे वन में रहौ, सब ठौर एक दशामें हैं ॥१६॥

अथ विचच्छन दशा वर्नन ॥ सवैया २३ सा ॥

चेतन म डित आप अरु डित,

शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो ।

राग विरोध विमोह दशा,

समुझै भ्रम नाटक पुद्गल केरो ॥

भोग सयोग वियोग विथा,

अवलोकि कहे यहु कर्मज घेरो ।

है जिन्हको अनुभौ इह भांति,

सदा तिन्ह को परमारथ नेरो ॥१७॥

अर्थ—अब मोक्ष निजीक विचक्षण पुस्तक की दशा कहें हैं—परमात्मा में दृष्टि देकें यहु विचार करें जो मेरो पदार्थ है सो चेतना मडित है । अरु अखंडित अग है, अछेद्य है, शुद्ध है, पवित्र है, यातें जो न्यारा राग द्वेष मोह की दशा बहि रही है ताकों तौ भ्रम रूप मिथ्याजाल रूप पुद्गल को नाटक करि समुझै है । जो पुद्गल जोग तें ही ए भांति उपजै है । अरु पंच इन्द्रियों भाग सजोग, अरु ताही कै वियोग, ऐसी बाह्यात्मक विषय व्यथा अवलोकि कै कहे यहु कर्म का घेरो है, कर्म को उदें है । ऐसौ अनुभव जाके नित्य प्रति रहै है तिन्हको परमात्मरूप, मोक्ष सदा नेरो निजीक है ॥१७॥

अथ—चौर तथा साहू वर्नन ॥ दोहरा ॥

जो पुमान परधन हरेँ सो अपराधी अज्ञ ।

जो अपना धन विवहरे, सो धनपति धरमज्ञ ॥

अर्थ—अब मोक्षते दूर सो तो चौर, मोक्षते निजीक
सोई साहूकार ऐसो कहै है—जो सोई पुमान कहते पुत्र्य
पर-धन हरेँ है सोई अपराधी अज्ञ कहत अज्ञान कहियै
अरु जो अपना ही धनको व्यवहार रामेँ है सोई धनपति
कहते, साहूकार, धमज्ञ कहत धर्मको जाननहार है ॥१८॥

पुन दोहरा ।

परकी सगति जो रचे, वध बढ़ावै सोड ।

जो निज सत्तामें मगन, सहजै मुक्ती होड १९

अथ—अब सहज मोक्ष कहै है—जो पुत्र्य पर कहते
कर्मकी सगति कहते सहवास साथ, रचे है अपना मानि
पेट है वही रघकी बढ़ावै है । अरु जो अपना चेतन जातिकी
सत्ताको अपना शुद्ध स्वरूप माने है अरु अनुमति है वह
सहज मुक्तिका पावै है ॥१९॥

अर्थ—वस्तु सत्ता वर्नन ॥

उपजै विनशै थिर रहे, बहुतो वस्तु वखान ।

जो भरजादा वस्तुकी, सो सत्ता परवान ॥२०॥

अर्थ—अब वस्तु कहा कहियै अरु सत्ता कहा कहियै ताँही व्यौरा कहै—उत्पत्तिवत, विनाशवत, थिरतावत, यो तौ वस्तुकी वखान है । अरु जो वस्तुकी मर्यादा वस्तुकी परिमान है, सोई धर्म सत्ता कहियै । अनुमान प्रमान—प्राप्त है ॥२०॥ अर्थ—सत्ता व्यवस्था वर्णन ॥ सुनैया ॥

लोकालोक मान एक सत्ता है आकाशद्वय,
धर्म दर्श एक सत्ता लोक परिमित है ।

लोक परिवान एक सत्ता है अधर्म द्रव्य,
कालके अणु असस्य सत्ता अगनित है ॥

पुद्गल शुद्ध पवमाणुकी अनत सत्ता,
जीवकी अनत सत्ता न्यारी न्यारी थिति है ।
कोऊ सत्ता काहूसौ न मिलै एकमेक होइ,
सबे असहाय यों अनादिही की थिति है २१

अर्थ—कैसे कैसे द्रव्यही वैसी कैंसी सत्ता सो कहै हैं—आकाश द्रव्यकी मर्यादा लोक अलोक लो एक है, ताते आकाश द्रव्यकी एक सत्ता है। अरु धर्मास्तिकाय द्रव्य लोक परिमान एक रूप है, ताते धर्म द्रव्यकी एक सत्ता है। अरु अधर्मास्तिकाय द्रव्य लोक प्रमान एक-रूप है, ताते अधर्म द्रव्यकी एक सत्ता है। अरु काल द्रव्य के अणू हैं लोकाकाश परिमान असत्तात है, ताते कालाणू की असत्त्व सत्ता है। ए कथन दिग्गतर सप्रदाय में। अरु योग शास्त्रे। अरु लोक विषै पुद्गल-रूपी शुद्ध परमाणू अनत है, ताते परमाणू की भी अनत सत्ता है अरु लोक विषै जीवकी न्यारी न्यारी स्थिति कहते चोगारगाहना है जा कौऊ आप अपनी सत्ता है सा और काहकी सत्ता सों मिलै नहीं। ताते सबही सत्ता असहायपनै बते है। ये अनादि कालकी थिति ऐसी है ॥२१॥

अथ—चेतन सत्ता वर्नन सवैया ३१ सा

एई छहों दर्व इन्हि ही कौ है जगत जाल,
तामे पाच जड एक चेतन सुजान है।

काहूकी अनंत सत्ता काहूसों न मिलै कोइ
 एक एक सत्तामे अनन्त गुन गान है ॥
 एक एक सत्तामे अनन्त परजाय फिरै,
 एकमें अनेक इहि भाति परवान है ।
 यहै स्यादवाद यहै सतनिकी भरजाद,
 यहै सुखपोष यहै मोखको निदान है २२

अर्थ—अब चेतन द्रव्यकी सत्ताको वर्णन करै है—

एई छहों द्रव्य कहे, अरु इनिद्वीकी जगत जाल बरते हैं ।
 तिन्हि छहों में पाच जड़रूपी है, एक चेतन अरूपी जानन
 द्वार है । इहा पुद्गलकी अनन्त सत्ता कही, ऐसी अनन्तपनै
 करिके काहूकी सत्ता काहू सों मिलै नहीं । इतनै न्यारी
 न्यारी अनन्त सत्ता है । अरु हर काहूकी एक एक सत्तामें
 अनन्तगुनको गान है अनन्त गुन कहे है अरु एकएक सत्ता
 में अनन्त पर्याय अनन्त अवस्था भेद फिरै, तातैं जो पूर्वे एक
 में अनेक कहे है सो इहि भाति सों है । इहि प्रमान सो
 स्यादवाद मतमें याही बात प्रमान है । सत पुरुषके वचन

की मर्जादा ही है, यौही मति मुखमें पोपनहार है । यौही बोध मोक्षको निदान है । मूल कारन है ॥२२॥

अथ—एक जीव द्रव्य सत्ता वर्णन ॥ सवैया ३१ सा

साधो दधि म यनमें अराधी रस गथनिमें
जहा तहा अथनिमे सत्ताहीको सोर है ।

ज्ञान भानु सत्तामें सुधा निधान सत्ता हीमें
सत्ताकी दुरनी साभि सत्ता मुख भोर है ॥

सत्ताको सरूप मोर सत्ता भूलै येहे दोष,
सत्ताकै उल्लेखै घूम धाम चिहो और है ।

सत्ताकी समाधिमे विराजि रहै सोई साह ।

सत्ताते निकसि और गहे सोई चोर है ॥२३॥

अथ—हुता है होइगो जो ऐसै वचन सो वस्तुकी ध
ग्रहो जाइ सो सत्ता धर्म कहियै ताते एक जीवकी सत्ता क
है—जो वस्तुमें छती देखियै, जैसै दहीके मथनमें धीर
सत्ता साधियै जैसै ऊपमें मधुर रस है तो ताते वस्तु निप
याते रस मार्गमें सत्ता विना सिद्धि नहीं । ऐसै तहां तह

ग्रन्थनिमें सत्ता ही कौ सौर है, शब्द है । वस्तुमें छतिपनौ सत्ता कहिये शास्त्रमें सत्ता अथे ऐसे ज्ञान रूपी भानुकी उदय जीवकी सत्तामें निपजे सुधा कहते अमृत सोई सत्ता में निधान पिन सत्ता हीमें पाईये । जा सत्ताकी दुरनीकहते छिपवनौ सोई मक्का रूप है अरु सत्ताको मुख है सोई भार कहते प्रमात है । जा जीवकी सत्ताकौ स्वरूप है सोई मोच कहियै । सत्ताका भूलवो सोई दोष रूप है । सत्ताकी उल्लंघना कियै चिहानार कहते चारी तरफ, धाम धूम निपजे वस्तु बिसंस्थूल होइ, जो अपनी सत्ता है सद्गुणपनौ है, ताहामें विराजि रहे सोई साहूकार कहियै । सत्तात निकमक धौरकी सत्ताकौ ग्रह सोई चार कहियै ॥२३॥

अथ---समाधि वर्नन ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

जामे लोकवेद नाहि थापना उद्वेद नाहि,
पाप पुन्य खेद नाहि क्रिया नाहि करनी ।
जामें रागद्वेष नाहि जामें बध मोक्ष नाहि,
जामें प्रभुदास न आकाश नाहि धरनी ॥

जामें कुल रीति जांहि जामें हारि जीति नाहि

1 जामें गुरु सोप नाहि वांख नाहि भरनी ।

आथम वरन नांहिकाह की सरन नाहि,

ऐसी शुद्ध सत्ताकी समाधि भूमि वरनी ॥२४॥

अथ—अब सत्ताकी समाधि बनेन करै है जामें लौकीक वेदवां नाही, अरु जामें थापनाकी उल्लेखि नाही, पाप पुन्यकी खेद नाही अरु जामें कोऊ क्रिया करनी नाही, जामें राग द्वेष नाही, जामें बंध नाही, मोक्ष नाही, जामें प्रभुता नाही, दासपनौ नाही, जामें आकाश नाही, धरनी नाही, जामें कुल रीति नाही, जामें हार नाही, जीति नाही, जामें गुरु की शिवा नाही, जाम वीख भरनी नाही, चाल-सौ हालवां नाही, जामें कोऊ आथम त्योहार नाही, जो कोऊ सरना रूप नाही, एसी शुद्ध सत्ता की भूमिका समाधि रूप वरनी है । इतनै स्वरूप समाधि में ही शुद्ध सत्ता पाईयै ॥२४॥

अथ—मिथ्या दृष्टी अपराधी यहु कथन ॥दाहरा॥

जाके घट समता नहां, ममता मगन सदीव ।
रमता राम न जान ही, सो अपराधीजीव ॥२४॥

अर्थ—अप मिथ्या दृष्टि कों चौर अपराधी कहि
दिखावै है—केवल जानपनों ही समता कहियँ समाधि कहियँ,
सो जाके नाहो । अरु जो मदा ही पर वस्तुकी ममतामें
मगन रहै, अपने घट में अथवा स्वरूप में जो न रामि रह्यो
तिन्हि आत्माराम कौ न जानै । सई जीव अपराधी चौर
कहियँ ॥२५॥

अथ मिथ्यामति वर्नन ॥दोहा॥

अपराधी मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध ।
परको मानै यातमा, करै कर्मको वध ॥२६॥

अर्थ—परदै वस्तु ग्रहै सई अपराधी, सई मिथ्या
मती सई निरदर्दै हारै अंध, सई पररूप पुद्गलकों आत्मा
करिकै मानै एसँ कर्म सै इष्ट करै ॥२६॥

अथ—भूटी क्षण वर्नन ॥दाहरण॥

भूटी करनी जानै, भूटी सुख

भूठी भगति हियै धरै, भूठे प्रभु को दाम ।

अर्थ—जब अपनी रस्तु न जानी, तब तौ जो क्रिया करै, आचरै सो सब भूठी । वाकों जा सुखकी आशा है सो सब भूठी । अपनी प्रभु जान्ये बिना जोग भगति हियै धरै साईं सब प्रभुको पाय बिना दासपना राखै सो सब भूठी ॥२७॥

अर्थ—मूढ व्यस्त्या ॥सवया ३१ सा ॥

माटी भूमि शैलकी सो सपदा बखानै निज,
कर्ममे अमृत जानै ग्यानमें जहर है ।

अपनों न रूप गहे और ही सों आपा कहे,
साता तो समाधि जाके असाता कहर है ॥

कोपके कृपान लिए मान-मद पान किए,

मायाकी मरोरि हिये लोभ की लहर है ।

याही भाति चेतन अचेतन की सगति सों,

साचुसो विमुख भयो भूठमें बहर है ॥२७॥

अथ—अब मूठ लोफकी भूठपनाकी व्यवस्था कहै हैं ए जो मातां धातु ठ मो धरनी पहारकी माटी है, ताका ताँ सम्पदा करि बखानै । अपनी शुभ क्रिया में अमृत जानै अरु ज्ञानमें जहर जानै । इतने क्रिया में मिद्धि जानै जो अपना रूप चिदानदमक्षपनी है ताका ग्रह नार्हा, अरु जो शरीरादिक है ताको आत्म रूपक है । अरु जो साता वेदनी उपजै है ताको ताँ समाधि करि जानै । असातावेदनी कहर, उपद्रव मानै । क्रोधको कृपान कहत खङ्ग सो लियै रहै मान अहकार रूप मदका पीयै रहै । द्वियै में माया नी मरोरि राखै । लोभकी लहर खायची करै । याही भाति सा अचेतनकी संगति सो इतने जड पृद्गलकी संगति सो चेतन है सो साचुसो विमुख मर्या अरु भूठमें रह रहै, याही में तत्पर है ॥२८॥

अथ—मम्यगृष्टि व्यवस्था रुचन ॥दोहरा॥

जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ज्ञान कला घट माहि
परचै आतमरामसों, ते अपराधी नाहि ॥२९॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि साहजिक की व्यवस्था ऊँह है—
जिन्हिने सिव्यापति भाजि गई, घटमें ध्यान कला प्रगटी
आत्मारामकी पहिचान्यौ परिचय पायौ, ते लोक अपराधी
न किये । साहु ऊहियै ॥२९॥

अथ—ज्ञानीकी व्यवस्था कथन ॥सर्वथा ३१ सा॥

जिन्हिके धरम-ध्यान पावक प्रगट भयो,
ससै मोह विभ्रम विरखि तीन्यो डढै हैं ।
जिनिकी चित्तोंन आगें उदै श्वान भू सि भागें,
लागें न करम रज ज्ञान-गज चढै हैं ॥
जिन्हिकी समुझिकी तरंग अग आगम में,
आगममें निपुन अघ्यात्म में कढे हैं ।
तेई परमारथी पुनीत नर आठौ जाम,
राम रस गाढ करै यहै पाठ पढै हैं ॥३०॥

अर्थ—अब ज्ञानीका परिचय कहै है जिन्हिके हियेमें
धर्मध्यान रूप पावक कहतै अग्नि प्रगट भयो, ताँतें सशय,
मोह, विभ्रम ए तीन्यो ही दृष्ट रूप है सो डढै कहतै जल

गये हैं । जिन्हिकी चित्तौन आग कहतें ज्ञान, दृष्टि आग
 उदय रूप कूकर है सो भूसिकें भागै अरु भयान रूपी गज
 राज परि चढे, तातें कर्मरूप रज लागन न पावै । आर
 कों अगम अग है तामें जिह की समुक्ति तरंग लागे ते-
 सें आगम जैनवानी में निपुन भए, अरु अश्यातम ज्ञानम
 कडे, तेई सम्यग्दृष्टि परमार्थक पावनहार पुनीत कहतें
 पवित्र रूप हुई रहै । आत्मारामके अनुभव रसमें आठों प
 हर गाढै, मगन भए याही पाठ पढि रहै है ॥३०॥

पुन सवैया ॥३१ सा ॥

जिन्हिकी चिहुटि चिमटासी गुन चुनिवैकों
 कुकथाके सुनवैकों दोउ कान मढै हैं ।
 जिहिकों सरल चित कोमल वचन बोलै,
 सोमदिष्टि लियै डोलै मन कैसे गढै हैं ॥
 जिहिकै मकति जगौ अलख अरु अशिकों,
 परम समाधि साधिकों मन बढै हैं ।
 तेई परमारथ जूत नर अरु अलख,

राम नाम गाढ करें यहै पाठ पढै है ॥३१॥

अर्थ—औरौ ही ज्ञानीकी अवस्था कहै है—जैसै चिमटा कहतें हातकी चिमटी अथवा चीपी सौ तासां काहू वस्तु छोटी को चुनि लीजै, तै सँ पराए गुन चुनिवैकौ जाकी ऐसी चिहुटी है। अरु कुरुधा, विक्रधा सुनिनेकौ दोऊ कान मढि राखैहै। कपट विना जिन्हि कौ सरल चिन्है निरहकारपने कोमल वचन बोलै है। काम श्लोषादि विकार विना सौम्य दृष्टिऽलियै डौलै है। मानौ मंगरसे घरे कोमल पुस्व है। अपन अलख नादैरु आराधिवैकौ जिन्हिकी सुमति जागी है। अयोग अस्थामे जा परम समाधि होइ है, तिन्हिकै साधिवैकौ जिनिके मन चढै है, तेई सम्यग्दृष्टि परमार्थके पावनहार पनीत कहतें पवित्र रूप हुई रहै है। आत्मारामके अनुभव रस में गाढै मगन भये या ही पाठ पढै रहै है ॥३१॥

अथ—समाधि वर्नन ॥दोहरा॥

राम रसिक अरु रामरस, कहन सुननको दोइ ।

जब समाधि परगटभई, तब दुविधा नहि कोइ ।

अर्थ—अथ समाधिकौ स्वरूप कहै है आत्माराम है
सौ रासक कहतै रस भोक्ता है । अरु राम कहतै रसिबौ
सोई रसै है, एकहिबे सुनिबेकी रसिक अरु रस ए दोइ है
पै अथ याम समाधि प्रगट होतु है तब दुविधा नाहीं दीसती
रसिक रस एक वस्तु है ॥२२॥

अथ—शुभ क्रिया परनन ॥दोहरा ॥

नदन वदन स्तुति करन, श्रवन चितवन जाप
पठन पढावन उपदेसन, बहुविधि क्रियाकलाप ३ :

अर्थ—राम है ओर रसिक अवस्था धारत एती क्रिया
करै है—सौ कहै—न दन कहतै आन द पावे है, वदन
कहतै प्रनाम करै है सुने है, धुति करन कहतै भात माति
गुन स्तुति करै है, जैसे गुन सुनै है, गुन विचारै है, या-
जाप जपै पढ़ै पढावै उपदिशै, ऐसे रसिक अवस्था सें
माति माति क्रिया कलाप है ॥३३॥

अथ—कर्म मार्गसे मोक्ष नहीं होइगी यहु कहै है ॥दोहरा॥

शुद्धात्म अनुभौ जहा, शुभाचार तिहि नाहि ।

कुरममारगविपै, शिवमारग

अर्थ—एजु पूर्वे क्रिया कही तिन्हि करतही जहा शुद्ध आत्माकौ अनुभव होइ तहा शुभाचार हू छूटि जाय, कृत-कृत्यपनाते ए अयोगी दशामें है । कर्म है, सो कर्ममार्गें विषे ठहरै । इतने ससार मार्गमें ही रहै । शुभ कर्म हू ससार मार्ग है । शिव मार्ग है सो शिवमाहि कहतै शुद्ध आत्मा ही में है ॥३४॥

पुन ॥ चौपाई छन्द ॥

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जैसी,

कही जिनद कही में तैसी ।

जे प्रमाद-सजुत मुनिराजा ,

तिन्हिके सुभाचार सों काजा ॥३५॥

अर्थ—जैसी भाति श्री जिनेन्द्र देव वस्तुकी व्यवस्था कही तैसी आगम प्रमान तै कहूकही । अरु जो मुनिराज प्रमाद संयुक्त है इतने दशामें है तिन्हिके सुभाचार शुभक्रियाकौ आलबन लीयाही कार्य सिद्धि होइ ॥३५॥

पुन ॥ चौपाई छन्द ॥

जहां प्रमाद दशा नहि व्यापै,
 तहा अवलंब आपनौ आपै ।
 ता कारन प्रमाद उत्पत्ती,
 प्रगट मोख मारगकौ घाती ॥३६॥

अर्थ—जहां मुनिराजकौ आत्माके अधिकवीर्या श तें प्रमाद न व्यापै है, तहां आपनौ अवलंब आपही ले है । ति-
 हिं कारनत प्रमाद उत्पत्ती है । अर प्रगटपने मोक्षमार्गकौ
 पाती है ॥३६॥

पुनः ॥ चौपाई छंद ॥

जे प्रमाद सजुगत गुंसाई,
 उठहि गिरहि गेंदूके नाई ।
 जे प्रमाद तजि उद्धत होई,
 तिन्हिकों मोख निकट दृग सोई ॥३७॥

अर्थ—गुसाई देशी भाषा है । इतने ज मुनिराज प्र-
 माद सयुक्त है ते तौ गिदूक (गेंद) की नाई तौ दरा कीसी
 रीति लियै उठत है गिरत है पै



प्रमाद छोरिकै अप्रत दशार्ते उठि खरै हूँ है तिन्हिकी तौ
मोच अपनी दृष्टि सो ही निकट है ॥३७॥

पुन ॥ चौपाई छंद ॥

घटमें है प्रमाद जब ताई,
पराधीन प्रानी तव ताई ।

जब प्रमादकी प्रभुता नासै,

तव प्रधान अनुभौ परगासै ॥३८॥

अर्थ—जोनों प्रमाद घटमें रहै है तौलौ प्रानी पराधीन
रहै है । अरु जब आत्माकी शक्ति जागैत प्रमादकी प्रभुता
नासै तब प्रधान अपने अनुभौको प्रकाश होइ ॥३८॥

पुन । ॥ दोहरा ॥

ता कारन जग पथ इत, उत शिवमारग जोर ।

परमादी जगको धकै, अपरमादि शिवओर ३६

अर्थ—तिहि कारन जगतको मार्ग प्रमादकी तरफ भयो ।
अरु अप्रमादकी तरफ मुक्तिको मार्ग है । प्रमादी होइ सौ
जगतको डुकै है अरु अप्रमादी मुक्तिकी तरफ डुकै है ॥३६॥

पुन ॥ दोहरा ॥

जो प्रमादी आलसी, जिन्हकै विकल्प भूरि ।
होइ सिथिल अनुभविषै, तिन्हकौ शिवपथ दूर ४०

अर्थ—जे प्रमादी आलसी है, जिन्हकै भूरि कहतैं
घने विकल्प रहै । अरु अपने अनुभविषै सिथिलपन रहै
हैं, तिन्हका मुक्तिमार्ग दूर रहै ॥४०॥

पुन ॥ दोहरा ॥

जे अविकल्पी अनुभवी, शुद्धचेतनायुक्त ।

ते मुनिवर लघुकालमें, होइ करमसौ मुक्त ४१

अर्थ—अरु जे विकल्प विना अनुभवमें रहै, शुद्ध
चेतना ही में युक्त रहै, ते मुनीश्वर अल्पकाल भाहि कर्म
सौ मुक्त होइ हैं ॥४१॥

मुनः ॥ दोहरा ॥

जे प्रमादी आलसी, ते अभिमानी जीव ।

जे अविकल्पी अनुभवी, ते समरसी सदीव ॥४२॥

अर्थ—जो प्रमादवत हैं, आलसी

रुदिते

अभिमानो जीव ऋहीयै । जे प्रिञ्च्य रहित अपने अनुभव
में है, ते तो सदीय कहतें सदाई समरसी ऋहीयै ॥४२॥

अभिमानो तथा ज्ञानो व्यवस्था कथन कवित्त छंद

जैसे पुरुष रासैं पहार चढि,

भूचर पुरुष ताहि लघु लगौ ।

भूचर पुरुष लगौ ताको लघु,

उतर मिलै दुहोकौ भ्रम भगौ ॥

तैसे अभिमानो उन्नत लग,

और जीवको लघु पद दगौ ।

अभिमानिकों कहैं तुच्छ सब,

ज्ञान जगौ समता-रस जगौ ॥४३॥

अर्थ—अभिमानोकी अवस्था अरु ज्ञानोकी अवस्था
दृष्टाव करि दिखावै है—जैसे कोऊ पुरुष पहार परि चढिके
नीचे दृष्टिदे, तत्र भूचर कहतें तलहटीवारी पुरुष तिहि पहार
वारेको लघु कहतें छाटा सौ लागै । अरु तलहटीवारी प-
रुष तिहि पहारवारेको लघु लखै, देखै तौ पहारवारी छोटा

सौ लागें । पीछे दोनों उतरकें मिलैतव दोहोंको भ्रम भागै
 तसैं अभिमानी पुरुष ऊँची गर्दन राखनहारौ और जीवकों
 लघु पदको दाग है । इतनें छोटै तुच्छ करि जानै और
 पुरुष है सो तिहिं अभिमानी हीकों तुच्छकरि जानै हैं ऐसैं
 आप आपने विचारमें निपमता है सो ज्ञान जागै ही समता
 रूप होइ ॥४३॥

अथ—शुद्धात्म अनुभव प्रशंसा ॥ चौपाई-छंद ॥

जे समकृती जीव समचेती,

तिन्हिकी कथा कहों तुम सेती ।

जहा प्रमाद क्रिया नहिं कोई,

निरविकल्प अनुभौ पद सोई ॥४६॥

अर्थ—अथ शुद्ध आत्माके अनुभवकी प्रशंसा कही है
 जे जीव समकृती हैं, समचेती कहतै गीतरागपरनेचिच समता
 वत हैं, अहो भव्य ! तिन्हिकी कथा तुम्हसों में कही
 हो । जहां कोऊ प्रमादकी क्रिया नाहीं, सोई निर्विकल्प
 अनुभौ पद कहिये इतने अनुभौमें विकल्प नाहीं ॥४३॥

पुन ॥ चौपाई छंद ।

परिग्रह-त्याग जोग थिर तीनों,
करम बध नहि होइ नवीनों ।

जहा न राग द्वेष रस मोहे,
प्रगट मोख मारग मुख सोहे ॥४७॥

अर्थ—जहा परिग्रहको त्याग है, अरु तीनों जोग थिर हैं, तहा नवीन कर्मको बध नहीं होतु है । इतने नये कर्म न प्रधै । अरु जहां जोयको राग द्वेष रस मोहे नाही, सोई प्रगटपने मोक्षमार्गसौ मुख कहतै प्रारम्भ है ॥४७॥

पुनः ॥ चौपाई छंद ॥

पूरव बध उदै नहि व्यापै,
तहा न भेद पुन्य अरु पापै ।

दरवभाव गुन निर्मलधारा,
बोधविना एविविध विस्तारा ॥४८॥

अर्थ—अरु पूर्व जो कर्म बधे तिन्हिको उदै व्यापत नाही । अरु जहा पुन्य पापमें भेद नाही विचारिये, अरु जहां साधुके २८ मूल गुण द्रव्यपने भावपने निर्मल धारा

रायैव है हैं । अरु जहा बोध विना, ए कहते ज्ञानके प्र-
सार भाति भाति विस्तार में है ॥४६॥

पुन. ॥ चौपाई छंद ॥

जिन्हिके सहज अवस्था ऐसी,
तिन्हिकै हिरदै दुविधा कैमी ।

जेगुनि खिपकश्रेणि चढि धाए,
ते केवल भगवान कहाए ॥४६॥

अर्थ—जिन्हिके जैसी सहज अवस्था भई, तिन्हिकै
हियै आत्मा पहिचान पेकी दुविधा जैसे रहै ? एमे ही
में जेई मुनि राजसपर श्रेणी चढिकै उदरे मुख धाए,
तेही केवल भगवान कहते केवल भगवान कहाए ॥४६॥

॥ दोहरा ॥

इहि विधि जे पूरन भए, अष्ट-कर्म वन दाहि ।
तिन्हिकी महिमा जे लखे, नमे वनारसी ताहि ५०

अर्थ—ए भाति करि है अष्ट कर्म रूप वनको जालके
पूर्ण आत्म स्वरूपमें जे भए है अरु तिन्हिकी महिमाका
जी साच पन जानै है, दास

ननन्दा कर्म है ॥ ५० ॥

अथ—मात्र उत्पत्ति वर्तन ॥ छप्पय छन्दः ॥

भयो शुद्ध अकूर, गयो मिथ्यात भूरि नसि ।

क्रम क्रम होत उद्योतसदृजजिम सुफल पक्ष ससि ॥

केवल रूप प्रकासि

भामि सुख रासि धरम भ्रुव ।

करि पूरन थिति आउ,

त्याग गति भाव परम हुव ॥

इह त्रिधि अनन्य प्रभुता धरत,

प्रगट वू द सागर भयो ।

अविचल अखड अनन्य अरुण,

जीव दरव जग महि जयौ ॥५१॥

अर्थ—मात्र पदाथे उत्पत्ति का क्रम कहें हैं— शुद्धतामै अ कूर प्रगट भयो, मूलतें मिथ्यात नाश भयो । क्रमि क्रमि आत्माओं उद्योत हीन लागी, जैसे चाँदने पक्ष में ससि कहतें चंद्रमा क्रमि क्रमि करि उद्योतवत होइ । ऐसैं

क्रमि क्रमि उद्योत होत केवल रूप की प्रकाश होइ । अरु ध्रुव धर्म कहें आत्माही जो जो निरचल धर्म, सुख रासि रहते सुख समूह, मोई भासै । ता पीछै आयु कर्मकी यिति पूरन कर हैं । मनूप्य गतिही भार त्यागकै परमात्मा होइ । ऐसी भाति सौ अनन्य प्रभुता रहते सबते उत्कृष्ट प्रभुता धारै । जैसे यू द-नू द एकठी हांतु समुद्र होइ, तैसे क्रम क्रम सो पूर्ण भयो । प्रगटपर्न भयो । फिर ताकी चिन्तौ नाहीं । खडना नाही । भय नाही । चय नाही, तात अचिचल, अखड, अक्षय । ऐमों जाय द्रव्य अगत भाहि जयवत होऊ ॥५१॥

अथ-अष्ट कर्म नाशने अष्ट गुण प्रकाश वर्नन ॥सवैया॥

ज्ञाना वरनी के गये जानिये जुहे सु सब,
दर्शनावरनके गयेते सब देखिये ।

वेदनी करमके गयेते निरावाध रस,
मोहनीके गये शुद्ध चारित विशेषिये ॥

आयुक्रम गये अग्गाहन अटल होइ,
नाम कर्म गये ते अमूरतीक

अगुरुलघुरूप होइ गोत कर्म गयेँ होतैं,

अनराय गयेँ तें अनत बल लेखियै ५२

अर्थ—अत्र अष्ट कर्मके नाश भएतें जा आत्माके आठ सहज गुन को प्रकाश होइ सो कहै है—ज्ञानावरनीके नाश भए तें जो लोभा लोभ में रस्तु है सो सब जानियै । इतने केवल ज्ञान प्रकाश होइ । दर्शनावरनी कर्मके क्षय गए ते लालालोकके भाव मामान्यपने सब देखियै । इतने केवल दर्शन प्रगटै । वेदनी कर्म क्षय गए ते निरागध रस उपजै । इतन अव्यसाधपनौ अनंत सुख उपजै । मोहनो कर्मक्षय गएते विशेषपने शुद्ध चारित्र हाइ । इतन यथा ख्यात चारित्र स्पष्ट गुन हाइ । आयु कर्म क्षय गएते अवगाहना अटल हाइ । इतन अवगाहना सादि अनत स्थित होइ । नमि कर्म क्षय गए ते अमृतिक पनौ जीव शुद्ध स्वरूप उपजै । गोत्र कर्मके क्षय गए ते अगुरुलघुपनौ गुन उपजै । तति जीव में न गुरु पनौ होइ, न लघुपनौ होइ । अ तराय कर्म क्षय गए ते

अनन्त चल होइ । इतन अन्त वीर्यपनाको गुन उपजै ॥५२
इति श्री समयसार नाटक विपै बालबोधरूप
मोक्षद्वार सम्पूर्ण भयो ॥



सर्वविशुद्धि-द्वार

(१०)

प्रतिज्ञा ॥ दोहरा ॥

इति श्री नाटक ग्रथमें, कह्यौ मोख अधिकार ।
अव वरनों सक्षेप सों, सरव विसुद्धिद्वार ॥१॥

अर्थ—इति कहना सम्पूर्ण नाटक समयसारविपैमोक्ष
पदार्थको अधिकार कह्यौ । अथ १० मों सर्वविशुद्धि द्वार
सक्षेप सों वरनन करों हों ॥१॥

अथ शुद्धात्म दर्शन वर्णन । सर्वया

करम कौ करता है भोगनिकौ

जाकी प्रभुतामें ऐसौ कथन अहित है ।
 जामें एक इन्ट्री आदि पचधा कथन नाहि,
 सदा निरदोष बध मोरसों रहित है ॥
 ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है सुभाउ जाकी,
 लोक-व्यापी लोकातीत लोकमें महित है ।
 शुद्धवश शुद्ध चेतनाके रस अश भरयो,
 ऐसौ ह स परम पुनीतता सहित है ॥२॥

अर्थ—इहा अय उपाधिरहित शुद्ध आत्मा को वर्णन करे है—कर्मको करतापनौ, अरु सुख दुखको भोक्तापनौ, ऐसौ जो लोक व्यवहारमें कथन रहते कहायत है, सोनासी प्रभुतामें ईश्वरताई है । तामें अहित कारी है । अरु जाकी प्रभुताम ऐकेद्री प्रमुख जो पाँच भेद को रहिवी, सोई अहितकारी है । सत्य नाही, मदा निर्दोषहै, जाके निश्चय स्वभावमें बध नाही, तामें मोक्ष नाही, यातें बध मोक्ष रहित है । तौ एक द्रव्य कहा है ? ऐसै प्रश्न पारि कहे है—ए ज्ञान को समूह है, ज्ञान को पुज है । जाकी स्वभाव ज्ञान गम्य है, ज्ञान हीत जानौ जाइ है, ये सब

दौर व्यापि ग्यौ है । लोनातीत कहते चोत्र लोकोत्तै न्यारी
 है अरु लाकमें महित कहते पूजनोक्त उपादेय है । अनादि
 काल कौ याही भाति पाईयै, तातै जाकौ शुद्ध रस है ।
 अरु शुद्ध चेतना के रस प्रदेशानि तें भयों है । ऐसैं जा
 हस है सो परम पुनीत साहित्य कहतै उत्कृष्ट शुद्धता महि-
 त है ॥२॥

पुन ॥ दोहरा ॥

जो निहचै निर्मल सदा, आदि मध्य अरु अता
 सो चिद्रूप बनारमी, जगतमाहि जयवत ॥३॥

अर्थ—जो निश्चय स्वरूपमें सदा निर्मल है । आदि
 अग्रस्था विषै, अन्त अग्रस्था विषे एक रूप है । सोई चिद्रूप
 कहिये बनासी दास स्तुति करै है— ऐसौ भगवान
 जगतमें जयवत हाऊ ॥३॥

अथ—जीव अकर्ता वर्नन ॥ चौपाइ छंद ॥

जीव करम करता नहि ऐसे,

रस भोगता सुभाउ न जैमे ।

मिथ्यामति मो करता होई,

गए अज्ञान अकरता सोई ॥४॥

अर्थ—अब जीव कौ अमोगता-पनौ, अकरता पनौ, ठहरावै है—जेसै जीव कर्मकौ कर्ता न कहियै, तैसँ रस नौ भोक्ता हू न कहियै । जब जीव मिथ्यामति है, तबतौ कर्ता रहवत में मांचौ । अरु अज्ञान गए तै सोई जीव अमर्तपनै है । ४॥

अर्थ—स्वभाव विभाव वर्नन । संवया ३१ सा ।
 निहचै विचारत सुभाउ जाही आत्माको,
 आतमीक धरम परम परगासना ।
 अतीत अनागत वरतमान-काल जाकौ,
 केवल स्वरूप गुन लोकालोक भासना ॥
 सोई जीव ससार अवस्था माहि करमकौ,
 करतासो दीसै लियै भरम उपासना ।
 यहै महा मोहकौ पसार यहै मिथ्याचार,
 यहै भौ विकार यहै विवहार वासना ॥५॥
 अर्थ—अब आत्माको शुद्ध स्वभाव अरु आत्माकौ

विभाज्य ताको वर्नन करै है—निश्चय दृष्टि देखत जिन्हि
 आत्माको आत्मीक धर्म परमप्रकाशरूप ऐसी सदा स्वभाव
 है । इतने निश्चय नयतौ जिन्हिको परम प्रकाश स्वभाव है
 श्रु निश्चय नय तैं अतीत, अनागत काल विषय, वर्त-
 मान काल विषय, लोफालोक भामना की रुग्णहार केवल
 स्वरूप गन है । सौई जीव ससार अवस्थामें भर्म उपासना
 लीयै, इतने मिथ्यात्व ज्ञानकी सेवना लिये कर्मको कर्त्ता
 दीसै है । ऐसी मिथ्यात्व की सेवामें रहना सो मोहको
 पसार है । याही व्यवहार वासना है ॥५॥

अथ—जीव अभोक्ता जनेन । चौपई छद ।

यथा जीव करता न कहावे,

तथा भोगता नाउ न पावे ।

हे भोगी मिथ्यामति माही,

गए मिथ्यात भोगता नांही ॥६॥

अर्थ—अप जीवको अभोक्तापनाके स्वरूपको वर्नन
 करे है—जैसे जीव कर्त्ता कहावे नही, तैसे भोक्ता नाम
 न धगवै नहीं । जैसे मिथ्यातमें कर्त्ता कहावे तैसे भोक्ता

हूँ मिथ्यातमे नाम धरावै । जैसे मिथ्यात गएत कर्ता
नाही, तैसे मिथ्यात गएते भोगता हूँ नहीं ॥६॥

अथ—भागतापनौ अभोगतापनौमौ लक्षण ॥सर्वेया ३१ सा

जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजायबुद्धि,
मुतौ विषय भोगनिकौ भोगता कहायो है ।
समक्ती जीव जोग भोगसों उदासी ताते,
सहज अभोगता गरथनिमें गायो है ॥
याही भाति वस्तुकी समाधि अवधारि बुध,
परभाव त्याग अपनौ सुभाउ आयौ हे ।
निरविकल्प निरुपाधि आत्म आराधि,
साधिजोग जुगति समाधिमें समायौ है ॥७॥

अर्थ—अब भाक्तापनौ कौ लक्षण अरु अभाक्ता
पनौ कौ लक्षण स्वरूप कहि दिखावै है—जगवासी जा
अज्ञानी है, तीनों काल विषय पर्याय बुद्धि हूँ । इतने द्रव्य
बुद्धि नाही । अरु मैं सुखी, मैं दुखी, जैसे पर्याय बुद्धि धारै
है पै शुद्ध आत्म द्र य भिन्न पनै न जानै है सो तौ अज्ञा-
नी जीव निरुपाधि जोगनौ लक्षण कह्यौ है ।

ती जीव ई सो मन वचन काय योगसौं अरु विषय भोग
 सौं उदासीनपनै रहै है । अरु शुद्ध-आत्म द्रव्य के अनु-
 भवमे मगन है । ताते समकृती की शास्त्रनिमें सहज अ-
 भोक्तापने ही गावे हैं । याही भाति बुध कहतें पंडित
 है सौ वस्तुकी समाधि का अवधारि कें, इतने
 वस्तुसौ स्वरूप विचारिकें यासे परभाव जानै
 ताकी त्यागि करिकें अपने सहज स्वभावमें आवै,
 ताते निर्विकल्प कहने सुखी दुखी इत्यादिक विक्ल्प विना
 निस्पाधि कहत कर्म संयोग रूप उपाधि विना । ऐसौ
 आत्मा को आराधि के ज्ञान दर्शन चारित्र रूप जोगकी
 जुगति को समाधि में समायौ सौ सहज स्वरूप में
 समायौ ॥७॥

अथ जीव अभोक्ता वर्णन ॥ सवयो ॥

चिनमुद्राधारी ध्रुव धर्म अधिकारी गून,
 रतन भडारी अपहारी कर्म रोग का ।
 प्यारौ पंडितनको हूरयारौ मोक्ष मारग में,
 न्यारौ पुद्गलसौं उज्यारौ उपयोगको ॥

जानौ निज पर तत्त्व रहै जगमें विरक्त,
गहै न ममत्त मन, वच, काय जोगकों ।

ता कारन ज्ञानी ज्ञानावरनादि करमकों,
करता न होइ भोगता न होइ भोगकों ॥८

अर्थ—अथ अर्भोक्ता जीवकी अवस्थाको वर्णन करै
है—चिन्मुन्द्राधारी कहतै चेतना चिन्हको धरनहार । ध्रुव
कर्म रहतैं निश्चल स्वभाव जो ज्ञातापनी, ताको अधिकारी
ज्ञानादिक जो गुण है, तिहि रत्नको भंडार है । क्रमरूप
रागको अपहारी कहत चिनाशकारी है । पंडितनका ध्यरा
सौ तत्त्वज्ञानीको वल्लभ भयो, मोक्ष मार्गमें हुस्यारी कहतैं
साधन भयो । पुद्गलीक धर्मसौ यारौ रहन लागी । मति-
श्रुतादि उपयोगको उजियारी भयो । अपने पराये सब तत्त्व
जानै । जगतमें विरक्त रहै । मनोयोग को, वचन योग को,
काययोगको ममत्त्व ग्रहै नही, तिहि कारन ते ज्ञानी जीव
ज्ञानावरनी प्रमुख कर्मको कर्त्ता हू न होइ । अरु सुख,
दख भागकों भोक्ता हू न होइ ॥८॥

॥ दोहरा ॥

निरभिलाम करनी करै, भोग अरुचि घट माहि
तातै साधक सिद्ध सम, करता भोगता नाहि ६

अर्थ—निरभिलाष कहतें इच्छा विना क्रिया करै ।
अरु घट पिडमें भागकी रुचि नाही, तांत मुरुविक्री साधक
पुस्त्य सिद्ध समान कहौ । कर्त्ता हू नाही ? अरु भोक्ता हू
नाही ॥६॥

अथ—अह बुद्धि वर्नन ॥ क्वचित् छन्द ॥

ज्यो हिय-अ ध विकल मिथ्यात धर,

मृषा सकल विकल्प उपजावत ।

गहि एकत पक्ष आत्मको,

करता मानि अधोमुख धावत ॥

त्यो जिनमती दरव-चारित्री,

करि करनी करतार कहावत ।

वद्वित मुक्ति तथापि मूढमति,

विनु समकित भव पार न पावत ॥१०॥

अथ—अह बुद्धितै कर्त्तापनी होइ ऐनी—कहे

है—जैसेँ कोऊ हिये अन्ध पुरुष विकल मिथ्यात धारी
 जेते हिये में विकल्प उपजाव, त ते सब मूषा कहते भूठे
 विकल्प उपजावै है । क्रियावादी को एकांत पक्ष गहिके
 आत्माओं कर्त्ता मानिये । अधोमुख कहते नीच गातकों
 धाइ रखौ है । तैसेँ जो जिनमती है, भाग चरित नार्हीं है
 अरु द्रव्य चारित्री है, अन्करनी करै है । अरु क्रिया
 कर्म शुभ क्रियाके कर्त्ता आप कह्यावे हैं, मुर्त्ताको वाछै
 तथापि कहते तोहू मूढमती है । समकृत विना भवकौ पार
 न पावति है ॥१०॥

चौपाई छंद ।

चेतना अ क जीव लख लीन्हा,

पुद्गल कर्म अचेतन चीन्हा ।

वासी एक खेतके दोऊ,

जदपि तथापि मिलै नर्हीं कोऊ ॥११॥

अर्थ—अन निश्चय स्वरूपकी बात कहै है—जीवको अ क
 कहते चिन्ह चेतना लख लीज्यौ । पुद्गल अरु कर्म ए
 दोनू अचेतन कहते जद चीन्दि लीज्यौ । चेतन अ क अ-

चेतन ए दोनू एक खेतके गामी है, एउचेभावगाही है जो पे ऐंम है, तौहु कोऊ काहसो मिलै नाही ॥११॥

टोह्य ।

निजनिज भाउ क्रियामहित, व्यापक व्यापक कोइ करता पुद्गल कर्मको, जीव कहासो होइ १२

अर्थ—पदार्थ है सा आपने भावकी क्रिया सहित रहे है— जामे व्याप रहीये नो वस्तु ध्याप्य कहिये । अरु व्यापनहारो पदार्थ व्यापक कहिये, यातें पुद्गल व्याप्य में जीवकी व्यापकपना नाँह । तातें पुद्गलीक कर्मको कर्ता जीव कहार्त होइ ? ॥१२॥

अथ कर्ता क्वन । सर्वथा ३१ ।

जीव अरु पुग्गल करम रहे एक खेत,

जद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कहिये ।

लक्षण स्वरूप-गुन परजे प्रकृति भेद,

दुहो में अनादि ही की दुविधा ह्वै रही है ॥

एतें परि भिन्नता न भासै जीव करमकी,

जौलौ मिथ्या भाउ तौलौ औधी वाउ. १३

ज्ञानके उदोत होतु एंसी शुद्ध दृष्टि भई,
जीव कर्म पिडकौ अकरतार सही है ॥१३॥

॥ दोहरा ॥

अर्थ - अत्र व्यवहारमें जैसे जीवकों करतापनों ठहराइये है सो कहै है -तिहा आकाश प्रदेशनि विषे पुद्गलीक कर्म अवगाह रहै है, तिहा आकाश प्रदेशनि विषे जीव प्रदेश ह अवगाहि रहै है । ऐसे जीव अरु पुद्गल एक क्षेत्रमें रहै हैं । जो पै ऐसे हैं तोहू चेतन में चेतन की सत्ता । अरु अचेतनमें जडताकी सत्ता ऐसी न्यारी-न्यारी सत्ता कहियै । लक्षण भेद करिकै, स्वरूप भेद करिकै गुण पर्याय भेद करिकै, प्रकृति भेद करिकै, ऐसे अनादि कालकी दूहोंम दुविधा हुइ रही है । एतें परि लक्षण प्रमुख की भिन्नता मिथ्या भाव ते जीवकर्मकी जौली भासै नाही, तौलों ओधी पाउव ही है । समकृती होतें समकृतीकी ऐस शुद्धदृष्टि भई, जो कर्मपिडकौ अकरतार जीव सही है १३

॥ दोहरा ॥

एक वस्तु जैसी जुहै, तासौ मिलै न आन ।

जीव अकरता कर्म सो, यह अनुभौ पखान १

अर्थ—जो एक वस्तु जैसी भाति सोहै, तासीं आन कहतें और स्वरूप वाली वस्तु मिलै नाही । याही तें जीव कर्मको अकर्ता है । यह तौ अर्थ अनुभव प्रमान ही तें पाईये ॥१४॥

अथ—मूढ कर्ता यहु कथन । चौपाई-छन्द ।

जे दुरमती विकल अज्ञानी,
जिन्हि सुरीति पररीति न जानी ।

माया मगन भरमके भरता,
ते जिय भाव कर्मके करता ॥१५॥

अर्थ—अब मूढनीव है सो कर्मको कर्ता यहु कहै है जे जीव दुष्ट बुद्धि विकल है, अज्ञानी हैं, जिन्हि अपनी रीति पराई रीति न जानी है, माया जालमें मगनहैं । भरम के भरता कहतें धनी है तेई जीव भाव कर्मको कर्ता कहतें करनहार हैं ॥१५॥

दोहरा ।

जे मिथ्यामति तिमिरसों, लखें न जीव अजीव
तेई भागित कर्मके, करता होंहि सदीव ॥१६॥

अर्थ—जेई जीव मिथ्यामति अंधकारतें जीव अजीव
मिन्नपनीं न लखें तेई जीव सदीय कहते सदाही भावित
कर्म कर्ता हे । आप आपनै कर्मको स्वभाव, सोई भावित
कर्म कहियै ॥१६॥

दाहरा ।

जे अशुद्ध परिणति धरें, करें यह परवान ।
ते अशुद्ध परिणामके, करता होंइ अजान १७

अर्थ—जेई जीव अशुद्ध परिणतिमौ धरें हैं, अशुद्ध
परिणाम धारें हैं, सब क्रियामें अह-कर्ता ऐसी प्रमानकरै
हैं, तेई जीव अज्ञान थक अशुद्ध परिणामनिके कर्ता
हाय हैं, ॥१७॥

शिष्यको प्रश्न । दाहरा ।

शिष्य कहै प्रभु तुम कह्यो, दुविध कर्मको रूप,
द्वै कर्म पुद्गलमई, भाव-कर्म चिद्रूप ॥१८॥

अर्थ—अब शिष्य प्रश्न करे हैं । शिष्य कहै है—हे
प्रभु ! तुम कहां कर्मस्वरूप दोइ प्रकारसो है एकतौ पुद्गल
मई, सो पुद्गल पिंड रूप द्रव्य कर्म है, दूसरौ भाव कर्म

है सो चिद्रूप कहत चेतना विकाररूप है ॥१८॥

दोहरा ।

करता दरवित कर्मकौ, जीव न होइ त्रिकाल ।
अव भावित कर्म तुम्ह, कहो कौनकी चाल १६

अर्थ—स्वामी ! और तुम ऐसे ऋद्धो जो द्रव्य कर्मकौ
करनहारौ तीनों काल विषे जीव नाही है । हे स्वामी ! तो
ए भावित कर्म है मो तुम कौनकी चाल कहतु हो ? ॥१६॥

दोहरा ।

करता याकौ कौन है, कौन करै फल भोग ।
कै पुद्गलके आत्मा कै दुहोंको मयोग ॥२०

अर्थ—या भावित कर्मकौ कर्ता कौन है ?
और या कर्म के फलकौ भोग जान करै है ? पुद्गल कर्ता
भोक्ता है, के आत्मा कर्ता भोक्ता है, कै पुद्गल आत्माकौ
संयोग कर्ता भोक्ता है ? ॥ २० ॥

अर्थ—गुरु उत्तर कथन । दोहरा ।

क्रिया एक करता युगल, यों न जिनागम माहि
अथवा करनी औरकी, और करै यों नाहि ।

सहजें जीव ही भोगवैं ॥ २५ ॥

अर्थ—एकाती वादी वनन ॥ सर्वैया ३१ सा ॥

कोई मूढ विकल एकत-पक्ष गहें कहैं

आत्मा अकरतार पूरन परम है ।

तिन्हिसों जु कोऊ कहैं जीउ करतार है तासों,

फेरि कहैं करमको करता करम है ॥

ऐसैं मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव,

तिन्हिकैं हियै अनादि मोहको भरम है ।

तिन्हिको मिथ्यात दूरि, करिवेको कहै गुरु,

स्यादवाद परवान आत्म धरम है ॥२६॥

अर्थ—अब साख्यमतवारे एकात वादीही वर्नन

करै है—कोई मूढ मोही जीव, ज्ञान करि विकल एकात

पक्ष गहिके ऐसैं कहै है—ए आत्मा अकर्ता है, परम

पूर्ण है । तिहां एकात—वादी सों जो कोऊ ऐसो कहै

‘आत्मा कर्ता है’ तासों फेरि साख्यमती प्रमुख एकातवादी

कहै है, कर्म को कर्ता कर्म ही है । ऐसैं मिथ्यात में

मगन मिथ्याती जीव ब्रह्मघाती हूँ है, व घात करूँ है ।
जिन्हि के हियै में अनादि कालतें मोह भर्म भरि रह्यौ
है, तिन्हि मिथ्यामतीकै मिथ्यात्व दूर करिवै को स्याद-
वाद रूप जो आत्मधर्म है सो प्रमान करिऊँ कहै है ॥२६॥

अथ—स्याद्वाद कथन । दोहरा ।

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान ।
नहिं कर्ता नहि भोगता, निहचै सम्यक्वान २७

अर्थ—अब जैसे स्याद्वादमें वस्तु स्वरूप है तैसें
कहै हैं—मिथ्यात में मगन अजान थकौ ती चेतन कर्ता
है भोक्ता है अरु समकृती जीव निश्चय नयतें कर्ता ह
नाही भोक्ता ह नाही । २७ ।

अथ स्याद्वाद उपदश कथन । सर्वथा ३१ मा ।

जैसें साख्यमती कहै अलख अकरता है,
सर्वथा प्रकार करता न होइ कवहीं ।

तैसें जिनमती गुरुमुख एक पक्ष सुन,
याहि भाति मानै सो एकत तजो -

जौलौ दुरमति तौलौं करमको करतार,
 है सुमति सदा अकरतार कह्यो सबहो ।
 जाके घट ज्ञायक सुभाउ जग्यो जवहो सो
 सो तो जगजालसो निरालो भयो तवही २ =

अर्थ—अब याही धातु स्याद्वाद की उपदेश करि
 दिव करै है—जैसे साख्यमती अपने मतमें ऐसी प्ररूप-
 ना करै जो अलख पुरुष है सो सर्वथा प्रकार करिके अकर्ता
 है वे कब हो कर्ता होइ नाही । अरु सत्व रज तमो गुण
 रूप प्रकृति कर्ता है । ऐसी भाति ज्यौ साख्यमती कहै
 तैसी भाति कौऊ निनमती हू गुरु के हृखतें निश्चय
 नय कौ एक पक्ष सुनिकें याही भाति मानै । इतने जीव
 अकर्ता माने सो अवतौ एकांत पक्ष छांडौ । श्री जिने-
 श्वर के स्याद्वाद जैसे ठहराउ है, जौलौ दुरमती, दुष्टबुद्धि
 मिथ्यामती, अहंबुद्धिमें है तौलौं जीव कर्मको कर्ता है ।
 अरु सुमति आयै सदा अकर्त्ता कह्यो । जाके घटमें अपना
 ज्ञायक स्वभाव जन ही जाग्यो, सो तौं जगत जात सो
 तन ही निराली ही भयो । अर्थ—पुद्गल परावर्तन
 भादि ससार आनि राख्यो सोनिरालो ही भयो ।

अथ—बौद्धमती वर्णन । दोहरा ।

बोध छिनुकपादी कहै, छिनभगुर तन माहि ।
प्रथमसमय जो जीव है, दुतियसमय सो नाहि २६

अर्थ—अथ औरी एकातपादी बौद्धमतीकी शुद्धिमौ वर्णन करै है—बौद्ध है सो छणिकपादी है, अरु ऐसैं कहै है—शरीरमें जो कोऊ पदार्थ है सो छणभगुर है । अथ याकी अर्थ कहै है । नो कोऊ जीव पदार्थ शरीरमें प्रथम समय है सो दूसरे समयमें न पाईयै, याते सब छणभगुर है ॥२६॥

दोहरा ।

ताते मेरे मत विपै, करे कर्म जो कोइ ।

सो न भोगवै सरवथा, और भोगता होइ ॥३०॥

अर्थ—औरी बौद्धही कहै है—ताते मेर मतमें ऐसी अद्धा ठहरी हैं जो कोऊ कर्मको करै है सो ती कर्मको भोगता नाहीं । छणभगुरपनाते भोक्ता और ही होइ ॥३०॥

अथ—मत मडन उपदेश दोहरा ।

एक एकत मिव्यात पर, दरि करनके काज

चेदपिलास अविचल कथा, भासै श्री जिनराज

अर्थ—अप एकत वादी, बौद्धमतके मत खडपेकी
पदेश प्रार भै है-- यह जो एकत क्षण भगुरपनी सो
ध्या पव है, ताके दूर करिबे सो चिदपिलास अविचल
या महते जीवके अचलपनाकी बात श्री जिनरपर देव
है है ॥३१॥

अथ—दृष्टात रुधन । दोहा ।

लापन काहू पुरुष, देख्यो पुर इक कोइ ।

रुण भयो फिरकै लख्यौ, कहै नगर वह सोइ ३२

अर्थ—अचलपनी समझाइनकी दृष्टान्त रुहे है--
इ पुरुषन वालपने कोऊ नगर देख्यो है, अरु सोई
ज्वान भयो तन तस्नपनामें फिर वह नगर देख्यो,
लख्यौ, तन कहै-- यह तौ नगर जो वालपने देख्यो
है ॥३२॥

दुहोपनमें एक थो, तो तिन्हि सुमिरिन कीय

र पुरुषको अनुभयो, और न जानै जीय ३३ .

अर्थ—अव इहा जीवकी अचलपनाकी समथ दिखा-

वे है—जी दुहों पनमें ऋहते दुहों कालमें जीव एकही थो तो
तिहि पुरुष देख्या नगरको सुमरन कीन्हो जो यह सत्य
है, और पुरुषको अनुभव्यो कहते भोगव्यो कार्य और पुरुष
न जानै ॥३३॥

दोहरा ।

जव यह वचन प्रकटपनै, सुन्यो जैनमत शुद्ध ।
तव एकांतवादी पुरुष, जैन भयो प्रतिबुद्ध ॥३४॥

अर्थ—जव यह प्रवचन प्रकटपनै सुन्यो । अरु शुद्ध-
मत जैनको सुन्यो, तव एकांतवादी पुरुष प्रति बुझिजे जैन
भयो, बौद्धमत छाड्यो ॥३४॥

अथ—बौद्धमती सदर्हना ऋथन । सर्वैया ३१ ।

एक परजाय एक समैमें विनसि जाय,
दूजी परजाय दूजी समै उपजति है ।
ताको छल पकरिके बोध ऋहे समै समै,
नवो जीव उपजै पुरातनकी छिती है ॥
ताते मानै करमको ऋरता है और जीव,
भोगता है और ताके हिये ऐसी मती है ।

मोहकी मरारि सों भ्रम को न छोर पावै,
 धावै चिहो अोर ज्यो वढावै जाल मकरी ।
 ऐसी दुरबुद्धि भूली भूठको भरोखें भूली,
 फूली फिरै ममता जजीरनि सो जकरी ॥३८॥

अर्थ—अब दुर्बुद्धिको विचार कहै है—आपसी प्रति
 विचारी हारि जीति करिकै मायाहीमें गढि रहै, इठ रीति
 लीयै रहै, जैसे हारिल पंखा अपने पाउन लकरी पफरी ही
 राखै, लीन्ही न छाड़ै । तैसे औरहु दृष्टान कहै—जैसे
 कोऊ पोर चंगुन बंध देखि गाइको महिल मंदिर पार
 चलौवै, तिहि बंधना नारि करि के गोह भूमिही गढि रहै,
 तहां अपने पाइ गाढ पै पकरी टेक न छाड़ै । मोह कर्म
 की मरारि लगी, तानें भ्रमको छोर न पावै । इतने भ्रम न
 छोड़े चिहोअोर धावै । जैसी मकरी जान बढावती च्यारी तरफ
 दौरै । ऐसी दुर्बुद्धि भूलिही फिरै, फूली फाली फिरै,
 ममता रूप जजीरनिसे जकरी रहै, भूठके भरोखेभूली रहै ।

पुन । सवैया ३१ सा ।

वात सुनि चाकि उठै वातहीसों भोकि उठै,

वातसौ नरम होइ वातहीसों अकरी ।
 निंदा करै साधुकी प्रशसा करै हिसककी,
 साता मानै प्रभुता असाता मानै फकरी ॥
 मोख न सुहाइ दोष देखै तहा पैठि जाइ,
 कालसों डराइ जैसें नाहरसों बकरी ।
 ऐसी दुरबुद्धि भूला भूठके सरोसै भूली,
 फूली फिरै ममता जजीरनिमों जकरी ॥३६

अर्थ—आगे ही याही बात कहें—कोऊ अध्यात्मकी बात कहै सो सुनिकै चाकि उठै, जो यह कहा बात है। अरु याही अध्यात्म बातसों भोकि उठै। कदायह (कलह) करन उठै। अरु वाजे मन रुखती बातसों नरम होइ रहै। मन मानी बात विना आकरी प्रकृति राखै। मोचमागेके साधक जो है ताकी निन्दा करे। अरु जो हिसातै धर्म कहै है ताकी प्रशसा करै, अपनी प्रभुता, तामें साता सुख मानै असाता उपजी की फकरी करि मानै। मोचके सुहावै नाही। जहाँ कोऊ दोष देखै तामें चतुराईके अमिमान सी पैठि जाइ। काल मृत्युसों ऐसी डरै जैसें नाहरसों बकरी

निरजोग शुद्ध परजोगसों अशुद्ध है ।

वेद-पाठी ब्रह्म कहै मीमांसक कर्म कहै,

शिवमती शिव कहै वाध कहै बुद्ध हैं ॥

जैना कहै जिन न्यायवादी करतार कहै,

छहो दरसनमे वचनको विरुद्ध है ।

वस्तुको स्वरूप पहिचाने माई परवान,

वचनके भेद भेद माने सोई शुद्ध है । ४३।

अर्थ—अप न्यार न्यारे मतकी व्यवस्था कहै है—

जीव वस्तु एक है अरु याक गुन अनक है, रूप अनेक है

नाम अनेक है । निरजोग रहते पराया जाग पिना अपने

स्वभावमें रहौ शुद्ध है । अरु पराए जाग मां अशुद्ध है ।

वेदपाठी प्रभाकर याकौ ब्रह्म कहै । मीमांसक जमिनि-

याकौ कर्म कहै है । शिवमती मो वैशेषिक याकौ शिव

कहै है । बौद्धमती याकौ बुद्ध कहै है । जैनी याकौ जिन

कहै । न्यायवादी नैयायिक याकौ कर्त्ता कहै है । ऐसैं

छहो दर्शनमें शुद्ध जीवके कहिबेमें उचनको प्ररोध है ।

इ ही छहो दर्शनमें वस्तुको स्वरूप पहिचाने सोई प्रवीन

कहावै । अरु उचनके भेदते समभिरुद्ध नय लिये वस्तुको

भेद प्रतीन मानै मोई शुद्ध गत है ॥ ४३ ॥

अथ-मत स्थापन कथन । सर्वथा ३१ मा ।

वेदपाठी ब्रह्म मानि निहचै स्वरूप गहे,

मीमांसक कर्म मानै उदै में रहतु है ।

बौद्धमती बुद्धि मानि सूक्ष्म स्वभाव साधै,

शिवमती शिवरूप कालको कहतु है ॥

न्यायग्रथके पढैया थापै करतार रूप,

उद्दिम उदीर उर आनठ लहतु है ।

पाचो दरसनी तेतो पोपै एक एक अग,

जेनी जिनपथी सरवगी नै गहतु है । ४४ ।

अर्थ—अरु छहों दर्शनके मत स्थापना करै है—

उदपाठी कहतें उदाती सो जीव वस्तुका ब्रह्म मानिके निश्चै

स्वरूपका ग्रहै, तातै निश्चै एरु लक्षण तें अद्वैत मत ग्रहै

है मीमांसक सा यज्ञके करनहारे जीवका कर्म रूप मानै

है, तातै उदय रूप भर्या जो पूर्व कमे सस्कार ताका ग्रहै ।

बौद्धमती जीवका बुद्ध मानिके क्षण-भंगुरपनातै सूक्ष्म

स्वभाव साधै है, तात वस्तु स्वभाव ही नी कर्ता मानै ।
 शिमती वैशिष्टिक जीवका कालरूपी मानिकै शिव रूप
 कर्ता कहै है । न्याय ग्रन्थक पढनहारे इतने प्रमाणादिक
 १६ पदार्थ मानन हारे शुद्ध जीवका ही कर्ता थापिक
 उद्यम नी उदीरणामें हिये आनाद पाइ लह लह हैं । ऐसै
 जो पाचौ दर्शनी है ततो वस्तु स्वभावादिक पाचौनयके एक
 एक अग पोषै हैं । एकात पक्ष ग्रह है । अरु जो जिन
 मार्गी जैन कहावै है मोती सर्वांगी सर्वे नय ग्रहै है । ४४

अथ—मतस्थापना एतत्त्वीकरण । सवया ३१ सा ।

निहचै अभेद अग उदै गुनकी तरग,

उद्दिम को रीति लिये उद्धता सकति है ।

परजाय रूप को प्रवान सूचम सुभाउ,

काल-कोसी ढाल परिनाम चक्रगति है ॥

याही भाति आतम दरवके अनेक अग,

एक मानै एक को न माने सो कुमति है ।

एक डारि एकमे अनेक खोजै सो सुबुद्धि,

खोजी जीवै वादी मरै साचीकहावति है । ४५।

अर्थ—अथ ज्यों मत स्थापना में न्यारी न्यारी बुद्धि कही सो सत्र एकही दिखावै है—सत्र जीव में लक्षण भेद नहीं, एसे निश्चय अग मार्चौ । तरतम जोगे गुनकी तर ग उठि ग्ही है यात उदें अग साचौ । अरु जीवकी उदति सगति है तिहि तिहि विषे प्रवर्ते है तात उद्यम अगतें रूत्तारनाहू मार्चौ । अरु पर्याय क्षण क्षणमें न्यारे न्यार है, ताके रूपका प्रमान सूक्ष्म है तात गौदू सूक्ष्म स्वभाव साधै है, मोउ साचौ । अरु परिनाम की गति है सा फिरते चक्र फीसी गति है, मो काल द्रव्यकी ढालतै है, तातें इहा काल हू रूत्ता साचौ । याही भाति आत्म द्रव्य अनेक अ गते पाइयै । या अ गनिमें एक अ ग मानै अरु एक अग न मानै सोइ उमति कहावै । एसात पक्ष छोटिके एक प्रस्तुमें अनक अ ग खोजें साई सुशुद्धि कहिये । खात्री जीवै वादी मर या कहावति साची है ।

अथ, स्यादवाद स्वरूप अथन ॥ सदैया ३१ सा ॥

एकमें अनेक है अनेक हीमें एक है सो,

एक न अनेक कतु कह्यो न परतु है ।

करता अकरता है भोगता अभोगता

उपजै न उपजति मूए न मरतु है ॥

बोलत विचारत न बोलै न विचारै कछु,
भेसकौ न भाजन पै भेससो धरतु है ।

ऐसौ प्रभु चेतन अचेतन की संगति सो,

उलट पलट नट वाजीसी करतु है । ४६ ।

अर्थ—अन जैसे स्याद्वादकी स्वरूप है सो कहै है—

एक द्रव्यमें अनेक पर्याय है अरु अनक पर्याय में एक द्रव्य है, यात हर कोऊ वस्तु यह एक ही है अथवा अनक ही है, ऐसो मछु कछो न परै है । व्यवहारतें कर्ता है, निश्चयतें अर्कता है । व्यवहारतें भोक्ता है निश्चयतें अभोक्ता है । व्यवहारत उपजतु है, निश्चयतें नाही उपजतु व्यवहारतें मूआ, निश्चयत न मूआ । व्यवहारमें बोले है विचारै है, निश्चय त कछु वालै नहीं, विचारै नहीं अतिकल्पी है । निश्चयते भेषकौ भाजन कहते स्थानक नाही, व्यवहार ते भेषकौ धारनहार है । ऐसो चेतनावत ईश्वर है सो अचेतन पुद्गलकी संगति सो उलट पलट हूँ रह्यो है । नट की सी वाणी करि रह्यो है । ४६ ।

अथ अनुभव व्यवस्था करन । दोहरा ।

नरवाजी विकल्प दशा, नाहो अनुभो जोग ।
केवल अनुभो करन कौ, निरविकल्प उपयोग ४७

अर्थ—अथ अनुभवम आत्म द्रव्य जैसी अवस्था
पाईये सो रुई है—एजु पूर्व उलट पलट आत्माक नट की
सी वाजी कही मा तौ निरल दशा है । यहु दशा अनुभव
म योग्य नाही । नि केवल अनुभव करन कौ निरिकल्प
ही उपयोग देना सो मत्य है ॥ ४७ ॥

अथ—अनुभव दृष्टान्त करन । सर्वथा ३१ सा ।

जैसें कोऊ चतुर स वारीं है मुक्त भाल,
माला की क्रियामे नाना भातिकौ विनान है ।
क्रियाकौ विकल्प न देखै पहिरन वाली,
मोतिनिकी सोभामें मगन सुखवान है ॥
तेसे न करै न भुजै अथवा करै सु भुजै,
और करै और भुजै सब नय प्रवान है ।
यद्यपि तथापि विकल्प विधि त्याग

निरविकल्प अनुभो अमृत पान है ॥४८॥

अर्थ—अब अनुभव विषय निरविकल्प उपयोग देने ताँही दृष्टांत कहे हैं—जैसे काहू चतुर पुस्त्य मोतीयन की माला संवारिक बनाई, उनि माला की क्रिया में भाति भाति को विज्ञान रहै । अब ता माला को पहिरन वाला उहि माला के क्रिया को विकल्प न देखे अरु मोतीयनि की साभा स मगन हुई जाइ । अरु सुख पावै । जैसे मोतीयनि की माला में अनक विज्ञान है । तैस इहा हू अनक विकल्प है जा आत्मा कर्ता नही, भोक्ता नाहीं, अथवा कर्ता हू है, भोक्ता हू है । अथवा राग द्वेष करन हारे और है, अरु भाग्यनहारो और, ए सब नय प्रमान है । जो पै ए सब प्रमान है । तोहू ए विकल्प विधि त्याग योग्य है अरु अनुभव है ना निरविकल्प है, अमृत समान उपादय है ॥४८॥

अथ—कर्ता कथन दोहरा।

दरब करम करता अलस, यह व्यवहार कहाउ ।

नितनी जो नैने नाना नैने नैने

अर्थ—अत्र स्यादवादी आत्मा कौ कर्म को कर्त्ता जिहि नय सौ मानै सौ कहै है—पुद्गल द्रव्य रूप कर्मको कर्त्ता अलक्ष्य पुरुष आत्मा है, यहु व्यवहार में कहनौ बनै है । निश्चय नय में यहु घात है, जैसे जो द्रव्य ह ताका भाव स्वरूप तैसा है । यातै पुद्गल द्रव्य क्रिया पुद्गल ही त होइ । ४६।

अथ—विपरीत बुद्धि कथन । सर्वथा ३१ सा ।

ज्ञान को सहज ज्ञेयाकार रूप परिनिवे,
 यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञान रूप कह्यौ है ।
 ज्ञेय ज्ञेय रूप यों अनादि ही की मरजाद,
 काहू वस्तु काहूको सुभाउ नहीं गह्यो है ॥
 एतै पार कोऊ मिथ्यामति कहै ज्ञेयाकार,
 प्रतिभासनिसो ज्ञान अशुद्ध ह्यै रह्यो है ।
 याही दुरबुद्धि सों विकल भयो डोलति है,
 समुझे न धरम यों भरम माहि वह्यो है । ५०।

अर्थ—अथ जैसे बुद्धि में विपरीतिपनौ भासै है सौ कह्यो है—ज्ञान को सहज स्वभाव है

कहते जानिना याग्य पदार्थ है ताकौ जो आकार है
 तिहि रूप आत्मा को ज्ञान परिनमें । जद्यपि कहते तौ ह
 ज्ञान हे सौ ज्ञान रूप ही कहावै, पै ज्ञेय रूप न रहावै,
 अरु जा ज्ञ य पदार्थ है सौ ज्ञान में परिणयी है, ताहू ज्ञेय
 रूप ही रहावै । यहू अनादि काल की मर्यादा है । कोऊ
 वस्तु और काहू का स्वभाव ग्रहै नाहीं, ऐसी तौ मर्यादा
 बद्ध बात है । एतै परि कोऊ वैशिषिक प्रमुख मिथ्यामति
 कहै हे, ज्ञेय पदार्थ के आकार प्रतिभासन सा ज्ञान
 पदार्थ अशुद्ध हू रखौ है, अथ यह अशुद्धपना मिटैगौ
 तब ही मुक्ति हाइगी । या ही दुष्टि बुद्धि सौ मिथ्यात्व
 मोह सौ विकल भयौ, इत उत मालि रखौ है । धम कहियै
 नस्तु को स्वभाव ताका ए समझे नाही । ताते भर्म में बहौ
 फिरै है । ५० ।

अथ—व्यापक कवन । चौपाई छंद ।

सकल वस्तु जग में असहाई,

वस्तु वस्तु सौ मिले न काई ।

जीव वस्तु जाने जग जेती,

सोऊ भिन्न रहै सब सेती । ५१ ।

अथे—अत्र यावन्ने स्वभाव में सब पदार्थे व्यापि रह
 हैं कहै हैं—जगत में समस्त भाग असहाय पने बते हैं,
 कोऊ काहू की सहाई नाही, यो ही अथ प्रगटपने कहै
 हैं—जा वस्तु है सो और विलच्छन वस्तु सो नाई न
 मिलै । जीव है सो जगतमे जती वस्तु है तेती सब जानै है
 इतने सब ज्ञेय वस्तु जीव क ज्ञान में परिणम है, ताँह
 सोऊ जीव सब वस्तुतें भिन्न ही रहे हैं । अपन ए न्यारे
 लखन तें । ५१ ।

अथ - व्यवहार निश्चय कथन । दाहरा ।

करम करै फल भोगवै, जीव अज्ञानी कोइ ।
 यहु कथनी विवहार की, वस्तु स्वरूप न होइ ५२

अथे—अत्र व्यवहार की कहावति दिखावै है—कोऊ
 अज्ञानी जीव है सो कर्म को करै हू है, अरु वा कर्म को
 फल हू भोगवै है, या कहावति व्यवहार में है, पैं जैमें
 वस्तु को स्वरूप है तेसी कहावति नही है । ५२ ।

अथ—विपरीति बुद्धि वर्नन । कृत्त छद् ।

ज्ञेयाकार ज्ञान को परिणति,

वस्तु स्वभाव मिटै नहिं कोर्ड,

तातै द्वेष करै सठ यो ही । ५५ ।

अर्थ—ज य वस्तुकी आकार प्रतिभासै हे सो ब्राह्मकी मल मानै हे, वा मलका नाश करनकी उद्दिम ठानै, उपाय करै । जिहि वस्तुकी जा जैसी स्वभाव हे मा तौ क्यों हीन मिटै हे ताते सठ रहते मूर्ख लोक या ही भूठो द्वेष करै हे । ५५ ।

। दोहरा ।

मठ मरम जानै नही, गहैं एकत कु पज ।

यादवाद सकग नेमै, मानै दक्ष प्रत्यक्ष । ५६ ।

अर्थ—मूर्ख है सा मर्मकी बात न धूकै, अरु एकात कुपक्ष ही ग्रहें । अरु दक्ष रहतें डाहो पुस्प है सो स्याद-वाद मतक आश्रय तें सर्वा गमयी प्रत्यक्ष पनें मानै । इतने निराकार साकार सब नय मानै । ५६ ।

अर्थ—सम्यक्तकी स्तुति । दोहरा

शुद्ध द्रव्य अनुभौ करै, शुद्ध द्रव्य घट माहि ।

ताते सम्यक्वत नर, सहज उच्छेदक नाहि । ५७ ।

अर्थ—अब स्यादगाद लिये जो सम्यक्ती है तारी स्तुति करे है—सम्यक्ती के हियेमें जो अनुभव है, साईं द्रव्यमौ शुद्ध करे है। हियेमें वस्तु स्वभाव जानिवेसैं शुद्धदृष्टि, है ताते जो सम्यक्वत पुस्प है मौ सहज स्वभाव की उच्छेदक हातु नाही। इतन सहज स्वभावको उच्छेद न माने। ५७।

अथ—अध्यापक द्रव्य कथन। सर्वथा ३१ मा।

जैसे चन्द्र फिरन प्रगटि भूमिसेति करै,

भूम तीन होति मदा जोतिसी रहति है।

तैसे ज्ञान मकति प्रकशै हेय उपादय,

ज्ञेयाकार दीसै पै न ज्ञेयको गहति है ॥

शुद्ध वस्तु शुद्ध परजाय रूप परिनिर्वे,

सत्ता परिवानि मानि ढाहे न ढहति है।

सो तौ और रुप कवहों न होय सरवथा,

निहचै अनादि जिनवानी यो कहति है ॥५८॥

अर्थ—अब पर वस्तुमें पर द्रव्यमौ अध्यापक पनो दृष्टांत करि दिग्याने है जैसे सरद पूर्णिमामीके।

समय चंद्रमाके किरन प्रकाश करिके भूमिको श्वेत रूप
 करै है पे ता चन्द्रमाकी ज्योति भूमि सी होतु नाहि, सदा
 ज्याति रूप ही रहे तैसें ज्ञानका मद्धति ऐसी है जो हेय
 उपादेय वस्तुओं प्रकारें तब तां ज्ञान ज्ञेयके आकार दीसै
 है, पे ज्ञेयके वस्तुओं स्वरूप पनै ग्रह नार्हा । शुद्ध वस्तु है,
 सा शुद्ध पर्याय रूप पनेही परिणामें । अरु जितनी
 अपनी मत्ता है जितन में वस्तु नौ स्वरूप पनें है । जितन
 प्रधान माही शुद्ध पर्यायको परिणामनिम पे यह स्वरूप ढार
 यो न दे है । मा तां शुद्ध वस्तु काहकी सगतिसो सर्वथा
 प्रकारें कब हों और रूप न होय । निश्चय में ए बात है
 अनरदि कानत ऐसो जिन बानी कहतै सिद्धान्त बानी
 उहा कहै है ॥ ५८ ॥

अथ—यथा स्वरूप कथन ॥सर्वथा २३ मा॥

राग विरोध उदै तवलो जवलो,

यहु जीव मृषा-भग धावै ।

ज्ञान जग्यौ जव चेतन को तव,

कर्म-दशा पर-रूप कहावै ॥

कर्म विलेखि करै अनुभौ तहा,
मोह मिथ्यात प्रवेश न पावै ।

मोह गये उपजै सुध-केवल,
सिद्ध भयौ जग माहि न आवै ॥५६॥

अर्थ—अब जैसी वस्तु की जैसी स्वरूप है साडे प्रगट-
पने कहे है—जौलों यह जीव मिथ्यात माग में दारै, धावै
है, तोलों रागद्वेष की उदय है । तातै मत्यमार्ग पाइ न
सकै । जबतै चेतन शुद्ध वस्तुमै ज्ञान न जाग्यौ, तबतौ कर्म
दशा रूप रह्यौ । आत्मा ते भिन्न लखावै । जहां चेतन
की अनुभव रहने मत्याथेपने जानिवा है सो कर्मका पिल
चण करै है । इतने भेदविज्ञानते, भिन्न भिन्न लक्षणपने
जानै है । तहा मोहरूपी मिथ्यात प्रशरु माइ के गए तै
सुख ममधि में केवलज्ञान उपजै । तबतौ सिद्ध भयौ ।
फेरि जगत मं न आवै ॥५६॥

अव-अनुक्रमस्वरूप बदमानता कथन । छप्प-छन्द

जीव कर्म सयोग, सहज मिथ्यात्वरूप धर,
रागद्वेष परिनति प्रभाव, जानै न आप पर-

तम मिथ्यात मिटगयो, भयो समकित उदोतसमि,
रागद्वेष कछु वस्तु नाहि, छिनु माहि गए नसि ॥

अनुभो अभ्यासि सुखरासि रमि,
भयो निपुन तारन तरन ।

पूरन प्रकाश निहचल निरसि,
वानारसि वदत चरन ॥६०॥

अर्थ—अब जैसे अनुक्रम वस्तु स्वरूपमें प्रगटपनै
स्वभाव चढाव हाइ मो रुई है—अनादि कालमें जीवके
कर्मको सयाग है ताते सहज सप्रथे मिथ्यात रूप धारी
जीव है । अस् जीव अरुहा रागमें परनयो रई ताते ए
राग द्वेषकी परिणति प्रभावेत आपा पर पनो न जानै ।
एसे म अरुहा मिथ्यात रूप तम अइते अ धेरो मा मिटि
गयो तहा ममकित रूप ससि रुईत चन्द्रमा री उद्योत
हाते ण खपरि पाई, एजु राग द्वेष है सा कछु वस्तु
नाही । इतने भली वस्तु नाही । तत्र ता याके अनादर तें
राग द्वेष क्षण में भाग गए । जब या पीछे, अपनी
अनभयकी अव्याप्त ल्यागी । तबसे एकरे अनादर तें

रागिमें रगि रह्यौ । ऐसी भाति निपुन भयौ । सर्व ज्ञानी
 भयौ तान तारन समर्थ प्रभु भयौ । अथ ए पूर्ण
 प्रकाश अन्त ऋतलों निश्चल भयौ, ताको ध्याननयनतैं
 निरस्त्रिकें अनारसीदास वा प्रभुके चरण वदे है । ६०॥

अथ—प्रश्नोत्तर कथन सवेया ३१ सा ॥

कोऊ शिष्य कहै स्वामी राग द्वेष परिनाम,

ताको मूल प्रेरक कहहु तुम्ह कौन है ।

पुगल करम जोग किधौ इन्द्रिनीकौ भोग,

किधौ परिजन किधो धन किधो भौन है ॥

गुरु कहै उहो दर्व अपने अपने रूप,

सवनिकौ सदा असहाई परिनौन है ।

काऊ दर्व काहूकौ न प्रेरक कदाचि तातैं,

रागद्वेष मोह मृषा मदिरा अचौन है ॥६१॥

अर्थ—अथ या राग द्वेषके हेतुका प्रश्न शिष्य
 करैह, गुरु उत्तर कहै—कोऊ शिष्य आचार्य को नियम
 परि कहे, अहो स्वामी ! एजु आत्मा कू राग द्वेष
 परिनाम उपजै है सा या राग द्वेष परिनामनिकौ निश्चय

प्रत्येक तुम्हें स्निग्धा कहा है ? आत्माक पुद्गलकी कर्मकी जाग है माउ इहा हेतु है कि अथवा, कहा पच इन्द्रियकी भाग है साइ राग द्वेष परिनामनि की हेतु है । कि अथवा कहा, इहा धन ही हेतु है । अथवा कहा, इहा भौत मंदिर इहा हेतु है । अथ गुरु कहै है—अहा शिष्य ! या परिनामान निपे तू पुद्गल समधी इतु मधुर्क है मा तो भूठे एजु छहो द्रव्य है सा अपने अपने रूप लीया, अपनी मत्ताव है । सब ही द्रव्यकी परिणामन सदा अम-होई है तदा इतुपने मिव्यात कर्म अथवा भाहरूप मंदिरा की अर्चोन कहत पीयता इतुपनी है ॥६१॥

अथ—मुख्य प्रश्न गुरु उत्तर रुधन ।दाहरा।

कोऊ मूरख यो कहै, राग द्वेष परिनाम ।
पुद्गलकी जोगपरीं, वरते आत्मराम ॥६२॥

अथ—अब कोऊ मूरख रागद्वेष परिनामनिकी प्रेरक पुद्गलकी वच है कहै है ताकी उत्तर गुरु कहै—कोऊ मूरख लोग ऐसे कहै है, एजु राग द्वेष परिनाम है सोती आत्माराम क बिपै पुद्गल की जोरावरी है । इतु यहु पुद्गलकी जोर देखिये है ॥६२॥

दोहरा ।

ज्यों ज्यों पुग्गल बल करें, धरि धरि कर्मज भेष ।
राग द्वेष कौ परिनमन, त्यों त्यों होइ विशेष ६३

अर्थ—ज्यों ज्यों कर्मज भेष धारिके, इतना कर्म वर्गना रूप धारिके पुग्गल द्रव्य अपना बल विस्तार करे, त्यों त्यों राग द्वेषकौ परिनाम विशेष रूप होइ सो आत्मा विपै दीसै । ऐसै सारयमती है । ६३ ।

दाहरा ।

यह ही जो विपरीत पर, गहै सरदहै कोइ ।
सो नर रागविरोध सो, कवहो भिन्न न होइ ६४

अर्थ—ऐसी भाति कोऊ साम्पमती सरीखी पुस्त्य विपरीत पक्ष ग्रहे है, अरु सरदहै है सा तौ पुस्त्य रागद्वेष ना ऐसी मरघाते भिन्न कवहा होइ नाही । ६४ ।

दोहरा ।

सु गुरु कहैं जगमे रहे, पुग्गल सग सदीव ।
सहज शुद्ध परिनमनकौ, औसर लहै न

अर्थ—सु गुरु कहैं है—अरे प्राणी

पुद्गल के संयोग जीव सर्व्व रहे हैं, ताते सहज शुद्ध परिनामनि कौ जीव औसर न पावै । इतने अपनौ शुद्ध परिनाम ग्रह नकै नहीं । ६५ ।

दोहरा ।

ताते चिद्भावनि विपै, समर्थ चेतन राव ।

राग विरोध मिथ्यातमे, सम्यक में शिवराव ६६

अर्थ—ताते चेतन राव है सो चिद् भाव विपै कहत ज्ञान भाव विपे समर्थ है । इतने जानपनाका कार्य में समर्थ है । अरु मिथ्यात की मगनताते ज्ञानपना में राग द्वेष परिनाम दीसै है । अरु जीव सम्यक भाव में हो है तत्र शिव भाव उपजै है । ६६ ।

अथ-व्यापकता कथन । दोहरा ।

ज्यो दीपक रजनी समें, चिट्टु दिशि करै उद्योत
प्रगटै घट पट रूप में, घट पट रूप न होत ६७

अर्थ—अब ज्ञान भाव में पुद्गल कौ भाव व्याप्य सकै नहीं । त.त पर भावकौ व्यापकपनौ न कहै । जैसे रात्रिसमै दीपक चिदा दिशि उद्योत करै है, प्रकाश करै

है। या प्रकाश में घट पटादिक पदार्थ प्रगटे है, पै दीपक की उद्योत, घट पट रूप होइ नहीं। ६७।

दाहरा।

त्यों मुज्ञान जानै सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म।
ज्ञेयाकृति णरिनाति विपै, तजै न आत्म धर्म ६८

अर्थ—तैसे मुज्ञान है सो सकल ज्ञेय वस्तुको मर्म जानै है। जानिया योग्य भाव है सो मर्म जानै है। या ज्ञान में जेय पदार्थ की आकार वृत्ति में है, पै जानै है सो आत्मधर्म शुद्धपनौ अई नहीं। ६८।

दोहरा।

ज्ञान धर्म अविचल सदा, गहे विकार न काड।
राग विरोध विमोहमय, कवहौ भूल न होइ ६९

अर्थ—ज्ञान धर्म, सो जानपनी, सदा अविचल है। या जानपना में तौ विकार कोउ ग्रहै नहीं। नो राग डोष मोह में आर है ही हे, ताहू जानपना की तौ कवहा भूलि हाइ नाही। ६९।

दाहरा ।

अैसी महिमा ज्ञान की, निहचै है घट माहि ।
मूरख मिव्यादृष्टि सों, सहज विलोकै नाहि ७०

अर्थ—एसी ज्ञान की महिमा निश्चय स्वरूप घट में है । मूर्ख है सो मिव्यादृष्टि सों सहज स्वरूप विलोकै नहीं है । ७० ।

अव-मूढ स्वभाव कथन । दोहरा ।

पर स्वभाव में मगन है, ठाने राग विरोध ।
धरै परिग्रह धारना, करै न आत्म सोध ॥७१॥

अर्थ—अव जीवकों अनादिकालतें जैसी मूढ स्वभाव है तैसी रुई है—शुद्ध चेतना स्वभाव तें और स्वभाव में है, सो पर स्वभाव है, तातें मगन हुकै राग द्वेष में ही ठहरो रहै । या ही राग द्वेष तें परिग्रह धारना धरै । अरु आत्मद्रव्य को शोधन न करै । ७१ ।

अव-मुद्वि तथा मुद्वि विवरन कथन । चौपाई ।

मूरख के घट दुर्मति भासी,
पडित हियै सुमति परगासी ।

दुर्मति कुवजा करम कमावे,

सुमति राधिका राम रमावै । ७२ ।

अर्थ—अब मूढ के दुर्बुद्धि हैं पण्डित के सुबुद्धि हैं ताकी व्योरी कहें हैं-मूर्ख प्राणी के घट में दुर्मति भासि रही हैं, अरु पण्डित प्राणी के हिये में सुबुद्धि प्रकाशी है । दुर्बुद्धि है सो कुवजा उस की दासी ममान है, सो करम की कमावनहार है । अरु सुबुद्धि है सो राधिका समान है, सो आत्माराम नायक की रमावनहार है । ७२ ।

पुन । दोहरा ।

कुवजा कारी कूबरी, करै जगत में खेद ।

अलख अराधे राधिका, जाने निजपरभेद । ७३ ।

अर्थ—कुवजा दासी, कारी अरु कूबरी, जग में खेद प्रयास, नाम कमावन को बहुत करै । अरु राधिका है सो तो अलख नायक ही को आराधे, खेद न धारै । यहु मर इष्ट नायक है, और पर है ए सो जानै । ७३ ।

अथ बुद्धि यथा । सर्वथा ३१ सा ।

कुटिल कुरूप अग लगी है पराए संग

यातैं मद्बुद्धि रानी राधिका कहाई है ७५

अर्थ—अब सुबुद्धि अरु राधिका को एक सी स्वरूप कहें है—सुबुद्धि होइ मो आत्म रूप की रसीली होइ । राधा हू रूप की रसीली है । अरु भ्रम रूप कुलफ उखेल वैसा कीली कहतें कुर्जा है । सुबुद्धि है सो सीलरूप समुद्र में भीली रहै । राधिका हू ऐसी है अरु सुबुद्धि राधिका ए दोऊ सीली प्रकृत सौं सुखदायक है । ज्ञानरूप भानु कहतें सूर्य ताका उदयको प्राची कहतें पूरे दिशा है, निदान की, ज्याचन हारी नहीं । उतने निःस्पृह पनै । सुबुद्धि अरु राधिका हइ, निरवाची कहतें वचन गोचर नहीं, ऐसे ठौर राची है । जाकी साची ईश्वरताई है । धाम कहतें घर ताकी खबरिदार है, जिनसों रमि रहिए सो राम । इतन अपनी इष्ट ताकी रमनहार है । राधा रस एध सो राधा । रञ्जलभरिके माग में के रम ग्रन्थ में राधा नाम ईश्वरकी प्यारी है । सा सुबुद्धि ही है । ऐसी सत माधुजन की मानी निर्ग्वानी कहतें स्वच्छपनै रहनहारी । अरु नूर कहतें सोभा

ज्ञानिनी । ऐसी सुबद्धि पते है । याते या सुबुद्धियों
विद्य रानी रहिये । ७५ ।

दोहरा ।

ह कुपजा यह राधिका, दाऊ गति मतिवान ।
ह अधिकारनि करमकी, वह विवेककी खानि ७६

अर्थ—यह कुमति तो कुपजा भई, वह मुमति राधि-
। मई । ए दाऊ आप अपनी गति मति लीये रहे है ।
ह कुमति कुपजा तो कर्म बंध की अधिकारिन है । वह
। मति राधिका विवेक की खानि है ॥ ७६ ॥

दोहरा ।

दरम करम पुद्गल दशा भाव-कर्म मति वक्र ।
जो सुज्ञानको परिमन, मो विवेक गुनचक्र ७७

अर्थ—वा ज्ञानारनादिक द्रव्य कर्म है, मो तो
पुद्गल द्रव्य रूप है । अरु मति की जा वक्रता है सो
भाव कर्म रहिये । अरु वा सुज्ञान को परिनाम होइ सो
विवेक गुन को चक्र रहिये । ७७ ।

अर्थ—कर्मचक्र यथा । कवित्त छंद ।

जैसे नर खिलार चौपरिको,
 लाभ विचारि करै चित चाउ ।
 धरै सभारि सारि बुध बलमो,
 पामा जो कुत्र परै सो दाउ ॥
 तैसे जगत जीव श्वास्थ कौ,
 करि उद्यम चितवै उपाउ ।
 लिर्यौ ललाट होइ सोई फल,
 कर्म चक्रकौ यहै सुभाउ । ७८ ।

अर्थ—अप भाग कर्म के चक्र परि दृष्टान्त दिखाव
 है—जैसे काउ चौपरि कौ खिलारी पुरुष चित्तम लाभ
 विचारिके खेलियेनै चाउ राखै, हाम राखै, अपनी बुद्धि
 बलमो जुग प्रमुख को जतन राखिके त्रिक, चोरु प्रमुख
 दाउ परि सारी सभारि के धरै, प दाउ तौ पास क-
 याधीन होतै । जगतवासी जीव उद्यम करिके अपने
 श्वास्थ कौ उपाउ चितवै, पे अपन ललाट मे लिर्यौ
 सोई फल होइ । इतन कर्म उद्यम माफक फल होइ । कर्म
 चक्र जो कुम्ति खेलै है, तामै यहु स्वभाव है । ७८ ।

अथ—विभ्रक चक्र यथा । क्वचित् छद ।
 जैसे नर सिलार सतरज को,
 समुझै मव सतरज की घात ।
 चाले चालि निरखि दोऊ दल,
 मुहरा गिनै विचारै मात ॥
 तैसें साधु निपुन शिव पथमे,
 लक्षण लखै तजै उतपात ।
 साधै गुन चितवै अभय पद,
 यहै सु विवेक गुनचक्र की वात । ७६ ।

अर्थ—अथ विभ्रक चक्रपर दृष्टात कहै ह—तैसें माऊ
 सतरज कौ सिलारी पुरुष सतरज खेल की सब ही घात
 दाव समुझै, अपने पराए दल परि नजरि राखिके चाल
 चाल, अपना अपना पराया बनोर हाथी प्रमुख मुहरा
 गिनती में राखी, मन में परका जीत करना विचारै । तैसें
 साधुलोक पंडित है सो साधुमार्ग में खेल । लक्षण तै
 वस्तु का लख, यामे उतपात रूप कार्य होइ सा छार्ट ।
 अपने गुनको साधन करि विवेक, अभयपद मे

सुविरेरुचक्र की बात है ॥ ७६ ॥

दोहरा ।

सतरज खेलै राधिका, कुवजा खेलै मार ।

याकै निमदिन जीतयो, वाकै निमदिन हार ॥

अर्थ—सुबुद्धि राधिका तौ सतर ज कौ खेल खेल गही है । अरु कुमति कुवजा पाया सारिकौ सौ खेल खेलै है । या सुमति राधिका के तौ विवेरुचक्र में रात दि जीतयो है । अरु वा कुमति कुवजा के कर्मचक्रमें रात दि हार है । ८० ।

दाहरा ।

जाके उर कुवजा बसे, सोई अलख अजान

जाके हिरदै राधिका, सो बुध सम्यकवान ॥

अर्थ—जाके हियेमें कुमति कुवजा बसै सो तौ अलख अज्ञान है । अरु जाके हिये में सुमति राधिका बसै, सोई समन्त बुध कहतें ज्ञानी कहिये । ८१ ।

अर्थ—ज्ञानक्रिया महकार कथन । मपैया ३१ सा ।

जहा शब्द ज्ञानकी-कला उद्योग दीये तदा

शुद्धता प्रवान शुद्ध चारित अश है ।

ता कारन ज्ञानी सब जानै वस्तुमर्म,

विराग विलास धर्म वाकौ सरवस है ॥

राग द्वेष मोहका दशासों भिन्न रहै यातें,

सर्वथा त्रिकाल कर्म जालकौ विश्वस है ।

निरुपाधि आत्म ममाधि में विराजै तातें,

कहियै प्रगट पूरन परमहस है । ८२ ।

अर्थ—अब जहा ज्ञान है तहा शुद्ध क्रिया है है
 ऐसी कहै हैं—जिहि प्राणी विषै शुद्ध ज्ञान की कला को
 उद्यात दीमै है, तिहि प्राणी विषै तिहा काल विषै आत्मा
 की शुद्धता प्रमान करक, शुद्ध चारित्रकौ अश होइ । तिहि
 कारन तें जो ज्ञाता होइ, सो तौ ज्ञेय कहतें हेय उपादेय
 रूप सब जानिकौ योग्य वस्तुकौ मर्म जाने । तब हेय कौ
 छान्ड उपादेय को गहै ऐसैं वैराग्यके विलासकौ स्वभाव
 सबे अश करिक प्रगट होइ । अरु वैराग्य आये राग द्वेष
 मोह की दशा सों प्राणी भिन्न रहै है । वाहीतें पूवले कर्मकी
 निर्जरा अरु वतमान काल विषै कर्म न बधै । जो प्रकृति

छुटी सो आगामी काल पिपे न उर्थगी । ऐसै सर्वथा
प्रकार कर्म जाल कौ पिध्व म होइ । तन ही ती रागद्वेषा-
दिक उपाधि रहित आत्म समाधि में विराजै ताँत पूरन
परमहस प्रगटपन कहियै । ८२ ।

। दोहरा ।

ज्ञायक भाव जहा तथा, शुद्ध चरन को चाल ।
ताँतें ज्ञानविराग मिलि, शिव साथै समकाल ८३

अर्थ—जहा ज्ञायक भाव है, तथा शुद्ध चरित्र का
चालि पाइये, ताँतें ज्ञान अरु विराग मिलिकै समकाल
शिव भाग माध ॥ ८३ ॥

दोहरा (फल छपी पुस्तकमें)

जहा अ धके कथ पर, चटै पगु नर कोइ ।
याके दृग वाके चरण, होय पथिक मिलि दोइ ॥

दोहर ॥

जहा ज्ञान किरिया मिले, तथा मोप मग सोइ ।
वह जानै पदको मरम, वह पदमें थिर होइ ८४

अर्थ—ज्ञान अरु किरिया ए 'दोऊ एगठे हुइ रहै तथा

मोक्ष को मार्ग होइ । यह ज्ञान तौ वस्तु को मरम जानें
प्रकृ बड़ क्रिया त अपने वस्तु स्वभासमें बिर होइ । ८४ ।

अथ ज्ञान क्रियाको स्वरूप कथन । दोहरा ।

ज्ञान जीवकी सजगता, कर्म जीवकी भूल ।

ज्ञान मोक्ष अ कूर है, कर्म जगत को मूल । ८५ ।

अर्थ—अथ ज्ञान को जैसा स्वरूप है अरु क्रिया को
जैसा स्वरूप है सो कहे है—ज्ञान जा है सो तौ जीवकी
सजगता इतने जीवसो जागिरा है । कर्म रहते क्रिया-
कार्य करने सो जीव की भूलि है तहा ज्ञान सो मोक्ष को
अ कूर है । इतने मोक्ष को हनु है । क्रिया कार्य करने
सो तौ भय भ्रमन सो मूल है । ८५ ॥

दोहरा ।

ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम ।

कर्मचेतनामे वसे, कर्मबधपरिनाम । ८७ ।

अथ—चेतना दोइ प्रकार की पूर्वे रही है तामें ज्ञान
चेतना के जागिरते केवलराम प्रगटे । अरु दूसरी कर्मचेतना
रही है, तामें आत्मा के कर्मबध के परिनाम उपजै है ॥ ८७ ।

अथ ज्ञानक्रियाकौ प्रभाव भिन्न २ कथन । चौपाई
 ज्वलग ज्ञान चेतना भारी,
 तवलग जीव विकल ससारी ।
 जव घट ज्ञान चेतना जागी,
 तव समकित्ती सहज वेरागी ॥८८॥

अर्थ—अथ ज्ञानकौ प्रभाव अरु क्रियाकौ प्रभाव भिन्न २
 कहि दिखावै है—जौलौ क्रिया परनति करवै ज्ञान चेतना
 भारी भई । तौलौ तौ इतन कर्म चेतना रूप भई । ससारी
 जीव विकल रूप दृढ़ रखौ । अरु जवलौ घटमे ज्ञान-
 चेतना जागृत रूप हाड तवतो समकित्ती कृहावै । अरु
 सहजै वेरागी कहावै ॥ ८८ ॥

पुन । चौपाई ।

सिद्ध समान-रूप निज जानै
 पर स योग भाव पर मानै ।
 शुद्धात्म अनुभौ अभ्यासै,
 त्रिभिधि कर्मकी ममता नासै ॥८९॥

अथ—अरु ज्ञान चेतना क जागिवतै अपने रूप को

निश्चै सिद्ध ममान जानै । अरु जा पर पुद्गल के संयोगतै
भाय उपजै सो तो पर रूप माने । शुद्धात्माके अनुभव की
अभ्यास राखै । द्रव्य कर्म भायकर्म, नो कर्म, ऐसै तीनों
कर्म की ममता गमावै । ८६ ।

अथ- ज्ञाता पूर्वकृत आलोचना कथन । दाढरा ।

ज्ञानवत् अपनी कथा, कहै आपसो आप ।

मे मिथ्यात दशा विषै, कीने बहुविधि पाप ६०

अर्थ-अब ज्ञाता होयके जो पूव कालविषै कर्म किय है
ताकी आलोचना ले अरु अपनी गीतराग वात कहै-ज्ञानवत्
अपनी कथा आपसो आपुही कहै, म पूर्वकाल विषै मिथ्यात
दशा भाहि रहुभाति के पाप कीने । ६० ।

। सदैवा ३१ सा ।

हिरदै हमारेँ महामोहकी विकलताहो,

तातेँ हम करुना न कीनी जीव घात को ।

आप पाप कोनै औरन को उपदेश दीगै,

हुती अनुमोदना हमारे याहा वातकी ॥

मन वचन काय में मगन हो कमाये कर्म

धाये भ्रम जालमे कहाए हम पातकी ।
 ज्ञान के उदै भए हमारी दशा ऐसी भई,
 जैसे भानु भासत अवरथा होत प्रातकी ६१

अथ—हमार हियेमे पूर्वजाल त्रिपें महामोह की
 विकलता होती ताँ हम जीव घात की कस्या न कीनी
 निर्दय दशा राखी, अपनी जायते में यापु ही पाप कीने
 अरु आरनिहैं। वचन करिके पाप के उपदेश टॉन, आर
 कों पाप करतौ देखि वाकी हम अनुमोदना करते रहे ।
 ऐसी भाति मन वचन काया के अशुद्ध व्यवहार में मगन
 हुडके कर्म कमाए । मिथ्या जाल में ऐसी भाति दीरे,
 ताँ हम पातकी कहाए । अथ ज्ञान के उदय होते
 हमारी दशा ऐसी भई, जैसे भानु कहत सूर्य तिन्दि के
 भासन तें जैसे प्रभात जाल की अरस्था उद्योतवत होइ ।
 तैं सैं हमारी हू ऐसी अरस्था भई ॥६१॥

अथ—ज्ञाना ज्ञान प्रभात कथन । मर्वैया ३१ सा ।
 ज्ञान भानु भासत प्रवान ज्ञानवान कहै,
 करुना निधान अमलान मेरो रूप है ।

कालसौ अतीत कर्म चालसों अतीत जोग,
 जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है ॥
 मोहको विलास यहै जगतको वासमे तो,
 जगत सों मुन्य पाप पुन्य अध कूप है ।
 पाप फिनि कियौ कौन करै करि है सु कौन,
 क्रिया कौ विचार सुपने की दौर धूप है ॥६२॥

अर्थ—अप ज्ञाता ज्ञान के प्रभाव तैं जैसी अपनी
 अस्थि जाने तैसी रुई है—ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश
 होतु प्रमान, ज्ञानवान कहत ज्ञाता पुरुष एमे रुई मरो
 स्वरूप कस्ना निधान है । सर को आप रूप जानरु सरकौ
 हित अच्छल है । अरु अमलान पहते निर्मल है । काल
 सों अतीत रहत काल के बश नहीं । इतने शायत है ।
 कर्म चालिग्री जाकै भय नाहीं । इतन जाई स्वभार
 कर्म गमाड सकै नाहीं । मन बचन माय योग के जाल सों
 जो अजीत है । इतने जोग जाल जाका जड करि न
 सकै । ऐसी जाकी महिमा अद्भुत है । अरु यही जगत
 कौ नाम है सो तो मोह कौ विलास है । ये मेरो विलास

नाही । जगत रहिये भव भ्रमन ताते में ती शून्य कहते
 रहित हैं । गति रुम जगत करै है । मेरे स्वरूप मं पुण्य
 पाप अन्धरूप समान है । याते पाप पुण्य किनि कीन्हौ,
 अबहु कौन करै है, आग कौन करेगी । यहु जा क्रिया
 सौ विचार देखे में आवै है, मा ता सुपनाको दोर धाप
 समान मिथ्या च्यपहार है । ६२॥

अथ—मिथ्या परिनाम वनन । दोहरा ।

मैं यों कीन्हौ यो करौ, अब यहु मेरो काम ।
 मन वच काया में वसै, ए मिथ्या परिनाम । ६३

अर्थ—अब मिथ्या परिनाम का वर्नन करै है—मैं
 एसै कीन्हौ अब एसै करौ है । अब यहु मेरो काम है सो
 करि हा । नान चेतना जाग रिना मन वचन काया म ये
 मिथ्यात परिनाम वसे है ॥६३॥

दाहरा ।

मन वच काया करम फल, करम दशा जडअंग ।
 दरवित पुद्गल पिडमय, भावित भरम तरग ६४

अथ—ए जो मन वच काय योग है सो कर्मको जाल

है। अरु क्रम दशा जटारूप अग है। ये जा मन
वच मया है सो पुद्गल द्रव्यसौ पिड है, तामें ए मिथ्यात
तरग भावित उपजे है ॥६४॥

दाहरा ।

तातें भावित कर्म सौ, धर्म स्वभाव अपूठ ।

कौन करावै को करै, कौमल है सब भूठ ॥६५॥

अर्थ—तातें आत्माकै भावित धममा इतने शुद्ध जान-
पना सौ, ए मिथ्यात तरग रूप कर्म स्वभाव उलटौ है ।
तातें करावै कौन अरु करे कान, इतने अनुमोद कौन, ए
तौ मन प्रपच भूठ है ॥६५॥

अथ—क्रिया की निंदा कथन । दोहरा ।

करनी हितहरनी सदा, मुक्तिवितरनी नाहि ।

गनी बध पद्धति विपै, सनी महा दुखमाहि ॥६६॥

अर्थ—अब जोगतें क्रिया होय ताकी निन्दा करें
है—करनी क्रिया है सो सदा हित की हरनहार है ।
मुक्ति वितरनी रहै मुक्ति की देनदारी क्रिया नाही ।
ये क्रिया कौ आगम में बध पद्धत विपै ही

स्वरूप में है ॥१००॥

पुनः । मवैया २३ सा ।

सम्यक्वन्त कहै अपन गुन,

मै नित राग विरोध सो रीतो ।

मै करतूति करो निरवञ्जक,


मोहि विषै-रस लागत तीतो ॥

शुद्ध सु चेतन कौ अनुभो करि,

मै जग मोह-महातम जीतो,

मोख समीप भयो अब मो कहँ,

काल अनन्त यही विधि वीतौ ॥१०१॥

अथ—समकृती जीव अपने गुन रुई है—मैं जा हा
सा नित्य प्रति राग द्वेष ना रीतौ रहने रिक्त हा । इतने
राग द्वेष रहित हों न जा क्रिया करों सो राग द्वेष पिना
वात्रा रहित करों जा ये विषय रम है मो मोहि तीतो
कहतै तिक्त लागै है, रुडरु लागै हे । शुद्ध अपने चेतन
मैं अनुभव करकै मै जगतमें मोहरूपी महा सुभट जीता ।
अब  स्वरूप के पापे तैं मोरू मान

भवौ । अर मोरु एमी भाति मेती अनत काल रोतौ ।
अनत काल ला ऐसै ही रहौ, ये आसना है ॥१०१॥

दाहरा ।

कहै विचञ्चन में सदा रह्यो ज्ञान रस रात्रि ।
शुद्धात्म अनुभूति मा सलित न हाऊ कदाचि १०२
अर्थ—विचञ्चन ज्ञानी पुरुष आसना करिँ कहेँ मैं
सदा हूँ ज्ञान रस में रात्रि रह्यो । अरु मैं शुद्ध आत्मा के
अनुभूति कहतेँ अनुभवमा कदाचित् ज्ञान विषै खालत
मात हाउ, ये आसना है ॥ १०२ ॥

दोहरा ।

पुण्य करम विष तरु भए, उदै जाग फल फूल ।
मैं इनका नहि भागता, सहज होइ निरमूल १०३
अर्थ—य पूर्वकृत पुण्य पाप कर्म ह मों विपुत्र भए
हैं अरु कर्म क उदय के भोग हैं मो वा वृत्त क फूल
फल ह मैं इन्हि उदय भोग को भोक्ता नहा । राग द्वेष
रहितपनातेँ ये अनादि काल के साथ लगे उदय भोग
हैं, सो निमूल हाउ ॥१०३॥

अर्थ बेराग्य महिमा रथन दाहरा । ।

जो पूरव कृत करम फल रुचि सौ भु जै नाहि ।

मगन रहै आठो पहर शुद्धात्म पद माहि १०४

अर्थ—अर उदामीनता बराग्य कहिये ताही महिमा
रुहै है—जा पूरव कान म कर्म कीन ताफो फल उदय
मयो सो फल रुचि लगाय भाग्यै नही । आठा ही पहर
शुद्ध आत्म स्वरूप में मगन रहै ॥१०४॥

दाहरा ।

सा बुध कर्म दशारहित पावै मोक्ष तुरन्त ।

भुंजे परम समाधिमुख आगमकाल अनन्त १०५

अर्थ—साई बुध कहतें पण्डित कर्म दशारहित दुष्कै
तुरन्त मोक्ष पावै । ता पीछ अगामी काल विष अनन्त
काल लो परम समाधि को सुख भाग्यै ॥१०५॥

अर ज्ञानी पुरुष की महिमा रचन ॥ छप्पय ॥

जो पूरव कृत करम, विरस-विष फल नहिं भु जै ।

जोग जुगत करज करत, ममता न प्रजु जै ॥

रागविरोध निरोध, सग विकल्प सन न्रडै ।

शुद्धात्म अनुभो अभ्यासी, शिवनाटक मडै ॥

जो ज्ञानवत इहिमग चलत, पूरन हा केवल लहे ।
सो परम अतीन्द्रिय सुख विषे, मगन रूप सततरहे १०६

अथ—जानी पुस्त की जैसी क्रम क्रम महिमा बढै
सा कहै है—जो ज्ञाता हो के पूरनरुत क्रमे वृद्ध के विप-
फल भोगवै नहीं । इतने इष्ट फल तै ताँ रति न उपनै ।
अनिष्ट फल तै अरति न उपनै । एमे भोग नाही । एमे
चाता है, मा मन रचन काया जाग रहि जुगत है । ताँ
जाग की जुगति तै कार्य करै है । परं रायें विप
ममता प्रयुज नहीं । एमे राग द्वेष का निराध करि क
जाग संगति तै नो विरुध्य उठै है सो सत्र छाडै । शुद्धा-
तम के अनुभव को अभ्यास करिके शिव नाटक कहतै
जासो जीव मुक्त हाइ ऐसो नाटक माडै । जो ज्ञानवत इहि
मारग चालै मा पूर्ण स्वभाव पाय के कवलज्ञान पावै ।
पीछै जामो केवल पाय के इन्द्रिय गोचर नहीं सो अती
न्द्रिय कहिये । ऐसो जो परम रहतै उत्कृष्ट अतीन्द्रिय
सुख है ताके विषे मतत कहतै निरतर मगन रहै ।

अथ शुद्ध आत्म द्रव्य वर्णन सर्वथा ३१ सा ।

निरभै निराकुल निगम वेद निरभेद,

जाके परगासमें जगत भाइयतु हे ।
 रूप रस गंधफास पुद्गल को विलास,
 तासो उदवास जाकोजस गाइयतु है ॥
 विग्रह सौ विरत परिग्रहसौ न्यारौ सदा,
 जामें जोग निग्रह चिहन पाइयतु है ।
 सो हे ज्ञान परवान चेतन निधान ताहि,
 अविनासी ईस मानि सोस नाइयतु है ॥१०७॥

अथ—अथ ही शुद्ध आत्म द्रव्य है ताको वर्नन कहे
 है— जो निर्भय कहावै है, निराकुल कहावै है, निगम कहते
 उत्कृष्ट अर्थ कहावै है, निर्भेद कहते जाको भेद नाहा औसो
 प्रकाश वत पदार्थ है । जामें सब्र मावै है । जो ए रूप
 रस गंध स्पर्श विना पदार्थ है । रूप रस गंध जो स्पर्श है
 सौ तौ पुद्गल तौ विलास है तासो उदय वश कइते
 रहित जाको जस गाइय है । विग्रह कहते शरीर तामो
 विरत कहते रहित । अरु द्रव्य भाव परिग्रह तौ न्यारो है ।
 जामें सदाई जाग विग्रहते तीनों जगतें विरदिवरदाके
 चिन्ह लक्षण पाइये है । महा ज्ञान है तहां वह पद ३ :

ताते सो ज्ञान प्रमाण है । अरु चेतना की निधान है,
तिन्हि को अग्निनासी ईश्वर, मानिकै सीस रहत मस्तक सो
नमाइयै है । १०७॥

पुन सख्या ३१ सा

जैसे निरभेदरूप निहचै अतीत हुतो,
तैसे निरभेद अब भेद कौन कहैगौ ।
दीसै कर्म रहित सहित सुख समाधान,
पायो निजथान फिर बाहिर न वहैगौ ॥
कवहों कदाचि अपनौ सुभाव त्यागि करि,
राग रस राविकै न परवस्तु गहैगौ ।
अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो,
याही भांति और हू अनत-काल रहैगौ १०८
अर्थ—औरी ही शुद्धात्म द्रव्य सिद्धिकी उन्नत करै है—
अतीत काल में शुद्ध आत्म द्रव्यमै निश्चय नयते जैसे
अभेद रूप हुतौ सोतौ अब केवलरूप पायें, निजभेद कहत
भेदरहित ही जानिये । अब या दशामें कौन मूर्ख भेद
ठहरावैगौ । नैयायिक ज्यों नैयायिक की प्ररूपना में समाधि

जोगः तें आत्माओं कर्म रहित मानिकें ससार में अपतार
 मानै है, तिन्हिकों तिरस्कार करै है। जो कर्म रहित भयो,
 अपने धानक पायौ तौ फिरि बाह्य सकट में क्यों परैगौ ?
 कबहों काल विपै कदाचित जो अपनी स्वभाव प्रगट भयौ है
 ताकौ त्यागि करके मिथ्यातीकी कहवति, मैं जैसे घरती
 सौ भार उतारन को ईश्वर अपतार कसौ दूषवै है। शुद्ध
 हुडकें फेरि रागके रस राधिकें पर वस्तु को ग्रहै नाहीं।
 अम्लान-ज्ञान कहते जो ज्ञान फेरि कुमलावै नाहीं। ऐसौ
 ज्ञान विद्यमान काल विपै प्रगट भयौ, सोती आगामीकाल
 विपै अनंत काल कां रहैगौ ॥१०८॥

सवैया ३१ सा

जवहीतै चेतन विभाउ सौ उलटि आप,
 समौ पाय अपनी सुभाउ गहि लीनौ है।
 तत्र हीतैं जो जो लेन जोग सो सो सब लीनौ,
 जो जो त्यागजोग सो सो सब छानि दीनौ है
 लेवे को न रही, ठौर त्यागिवेकों नाही और
 उवरौ जु कारिज नवीनौ है।

सग त्यागि अ ग त्यागि वचन तरग त्यागि,

मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनी हे

अर्थ— अब फेरि अवतारके कारन जो अभाव कहै है—अनादि कालतँ चेतन मिथ्यात भावरूप विभाव में रगि रहौ है । सो समय प्रस्ताव पाइकै जबहीतँ विभाव सो उलटि कै उपराठौ हुईकै अपनी शुद्ध स्वभाव हुतो, सो आपहि गहि लोनी । तर हीतँ जा ज्ञान दर्शनादिक भाव लैन जोग हुतौ सो तौ ली हो । अरु जो ना राग द्वेषादिक भाव त्याग जोग हुतौ सा सब छाडि दीन्हौ, तब तौ लेर कौ मोऊ और ठौर रही नहीं । अरु त्यागिवेकौ और ठौर रही नाहीं । अने शहाँ वासी नयौ कारिज कहा उपरचौ है । जो कारिज करिवै कौ फेरि अत्र तारि लीजै । जो उपाधि सग हुतौ सो सब त्यागिकै, अह्न त्यागि कहतै काय योग त्यागि कै । वचन तर ग त्यागि कहतँ वचन योग त्यागि कै, मन त्यागि कहतै मनोयाग त्यागिकै, बुध त्यागि कहते विकल्प त्यागिकै आत्माकौ शुद्ध करि लीन्हौ ॥१०६॥

। अर्थ—एसाँत द्रव्यलिग की निदा कथन । दोहरा ।

शुद्ध ज्ञानके देह नहि, मुद्रा भेष न कोइ ।

तातैं कारन मोक्षकौ, द्रव्यलिंग नहिं होइ ११०

अर्थ—अब बाह्य भेष धारिबौ सो द्रव्य लिंग कहियै
सौ एकातपने मोक्षकौ कारन नाहीं, यहु कहिये है—आ-
त्मा तौ शुद्धज्ञानमई है । अरु शुद्ध ज्ञान कै देह नाहीं है ।
अरु जब देह नाहीं, तब तौ ज्ञान कै मुद्रा भेष कोऊ नाहीं ।
तातैं मोक्षकौ कारन द्रव्य लिंग होइ नाहीं, इतने भेष लीने
मुक्ति नाहीं ॥ ११० ॥

दोहरा

द्रव्यलिंग न्यारौ प्रगट, कला वचन विज्ञान ।

अष्ट महारिधि अष्टसिधि, एऊ होहिं न ज्ञान १११

अर्थ—ज्ञान तैं द्रव्य लिंग प्रगट न्यारौ है । अरु
कला, विज्ञान, वचन विज्ञान सोऊ ज्ञानतैं न्यारो । आ-
चार १ श्रुत २ शरीर ३ वचन ४ वाचना ५ बुद्धि ६-
उपयोग ७ संग्रह शीलता ए अष्ट महा अद्वियां हैं । अरु
अणिमा १ गरिमा २ महिमा ३ लघिमा ४ प्राप्ति ५
प्राकाश्य ६ ईशित्व ७ वशित्व ए अष्ट सिद्धि है, सो ज्ञान
नाहीं ॥ १११ ॥

अथ ज्ञान अभाव स्थान कथन । सर्वथा ३१ सा ।

भेषमें न ज्ञान नहिं ज्ञान गुरु वर्तनमें,
 मन्त्र यन्त्र तत्र में न ज्ञान की कहानी है ।
 ग्रथ में न ज्ञान नहिं ज्ञान कवि चातुरीमें,
 वातनिमें ज्ञान नहिं ज्ञान कहा वानी है ॥
 तातें भेष गुस्ता कवित्त ग्रथ मन्त्र वात,
 इनतें अतीत ज्ञान चेतना निसानो है ।
 ज्ञान ही मे ज्ञान नहि ज्ञान कहीं और ठौर,
 कहों जाके घट ज्ञान सोई ज्ञानकौ निदानी है ११२

अर्थ—अब ए महिमावत स्थानक हैं तीऊ ज्ञान की
 ठौर नाहीं सो कहै है—भेष में ज्ञान न पाईये । अरु
 गरुवाई है साऊ ज्ञान को ठौर नाहीं । अरु मन्त्र जत्र तत्र में
 ज्ञान की कहानी नाहीं । ग्रथ शास्त्र पढवैतें ज्ञान न पाईये ।
 अरु कविता चातुरी में ज्ञान न पाईये, वात चातुरी में ज्ञान
 नाहीं । अरु जो वानी है सो कहाँ ज्ञान है? इतनै वानी ह
 ज्ञान नाहीं । तातें भेष, — कविताई, ग्रथाम्यास,

मत्र, यत्र, तत्र वात इन समही ते अतीत कहते न्यारी
ही ज्ञान वस्तु है। सो चेतन की निसानी कहते लक्षण
है। जाके घट में ज्ञान प्रगटी है सोई ज्ञान की निदानी
कहते मूलहेतु है ॥११२॥

अथ—भेषादि धारक मूढ यहु कथन सवेया

भेष धरि लोगनिकौ वचे सो धरम ठग,
गुरु सो कहावै गुरुवाई जाहि चहिये ।

मत्र तत्र साधक कहावै गुनी जादूगर,
पंडित कहावै पडिताई जामें लहिये ॥

कवित्तकी कलामें प्रमीन सो कहावै कवि;
वात कहि जाने सो पवारगीर कहियै ।

एतौ सब विपैके भिखारी मायाचारी जीव,
इन्हिको विलोकिकै दयालरूप रहियै ॥११३॥

अर्थ—अत्र जो पूर्वभेष प्रमुखके धारक कहे ताकी मूढ़ता
करि दिखावै है—भेष धारिकै लोगनिकौ भरमावै सो धर्म
ठग, कहावै, जाकी गुरुवाई की चाहना होइ सो गुरु कहावै

मत्र जत्र तत्र कौ साधक जो गुनी होय सो जादूगर कहत
 तोनागारो कहावै । जामें पंडिताई पादयें सो पंडित कहत
 कवि कलामें चातुरी जो प्रवीन होइ सो तो कवि कहत
 पात बताइ जानै सो पसारगीर ठहराईयै । एती अवस्थ
 धरनहार है, सो मय त्रिपयके भिखारी कहवें इन्द्रिय त्रि
 के जाचनहार, भिखारी मायाधारी जीव है । इन्दि
 त्रिलोकिमें मनमं ऐसी न्याह्यै । अहो ए कहा अपनी स्त
 पोषै ह । ऐसैं वाके परि दयालरूप रहियै ॥११३॥

अथ—अनुभव याग्यता कथन । दाहरा ।

जो दयालता भावसो, प्रगट ज्ञानको अंग ।
 पै तथापि अनुभव दशा, वरते विगत तरंग ॥११४॥

अर्थ—अब जीवके अनुभव कौ योग्य दशा है सो
 है जो आत्मा शुद्ध पायै दयाल भाव प्रगट है, सोता ज्ञान
 का अङ्ग प्रगट भयो जानियै । जो यह ज्ञान अङ्ग प्रगट
 जानियै । तौह अनुभव दशा है सो विगत तरंग क
 विकल्परहित बतें ॥११४॥

दाहरा ।

दरशन ज्ञान चरन दशा करै एक जो काह ।

थिरहूँ साधे मोख मग, सुधी अनुभयी सोइ ॥११५॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्रकी दशाको जो एक विकल्प रहित आत्मा कौ लखै । याही भाति थिररूप हूँ कै मोक्ष मार्ग कौ साधै । सोई सुधी कहतें सुशुद्धिवत अनुभय व त कहाने ॥११५॥

अथ अनुभय महिमा कथन । सर्वैया ३१ सा ।

जोई दृग ज्ञान चरनात्ममें वैठि ठौर,
 भयो निरदोर परवस्तुको न परसै ।
 शुद्धता विचारे ध्यावै शुद्धतामें केलि करै,
 शुद्धतामे थिरहूँ अमृत धारा वरसै ॥
 त्यागि तन कष्टहूँ सपष्ट अष्ट करम कौ,
 करि धान भ्रष्ट नष्ट करै ऊर करसै ।
 सोई विकल्प विजई अल्प काल माहि
 त्यागि भौ विधान निरवान पद दरसै ॥११६॥

अर्थ—अथ अनुभय कहिये नितदेह शुद्ध स्वरूप-पाश्र्वी ताकी महिमा रुहै है—जो काऊ दर्शन ज्ञान

आत्मा विषै ज्ञानकी ठौर ठहराइके ठाट बांधे, तहां निर-
 दोर हुइके । इतने सशयरहित, हुइके पर वस्तुकी परस न
 करे । तहां निरचय नय गहिके शुद्धताही विचारें, शुद्धताही
 ध्याये, अप्रमादी हूँके शुद्धता केलि करै, शुक्ल ध्यानके
 प्रथम पाये में बैठिके शुद्धतामें थिर होइ, महाआनदरूप
 अमृतधारा बरसाये । यहा अन्वय्यरूप लक्षण है । ताते श
 रीर के कष्टको त्याग है । लीनताते शरीर कष्ट न जानै ।
 सब स्पष्ट हुइके वीर्य फोरिके आठों 'कर्मकी स्थान अष्ट
 करै । इतने सचाते चलावै । अरु नष्ट करे, कहते
 निर्जरावै । ऐसे और ह करमे कहते खेच खेच, निर्जरावै
 सोई विकल्प जालही विनय पाइके अल्प कालमें भव वि-
 धान कहते भवकी श्रेणि बाधनी, सो त्यागिके निर्वाण पद
 कहते मोक्ष पद सो देखै ॥११६॥

अथ—अनुभव शिवा । चौपाई—छन्द ।

गुन परजै, में दृष्टि न दीजै

निरविकल्प अनुभो रस पीजै ।

आपु समाइ आपु में लीजै ।

तनपौ मेटि अपनपौ कीजै ॥११७॥

अर्थ—शिष्य बूझे ए अनुभव पाइवौ महाप्रिय है, ता परि गुरु शिक्षा देह—आत्माके गुन पर्याय अनेक है पे तामे दृष्टि न दीजै । निबिकल्प द्रव्यकी अनुभव रस पीजै आत्मा आधार त्रिपै आत्मा की समान करि लीजै । इतने में लगाइयै । आप शरीर धारी है, या दशाकौ शाय जाग पनौ जा है सो मेटि आत्मा स्वरूप करियै ॥ ११७ ॥

दोहरा

तजि विभाव हूजै मगन, सुद्धात्म पद माहि ॥
एक मोरग मारग यहै, और दूसरो नाहि ॥११८॥

अर्थ—आत्म स्भाव विना और रस सन ही विभाव है । तिन्हकी छाडिके शुद्ध आत्माके चिदानंद स्वभाव माहि मगन हूजै । एक कहते अद्वितीय मोरगको मारग यो ही है । यारें दूसरी और कोऊ माच मार्ग नाहीं ॥ ११८ ॥

अथ—द्रव्यलिगी व्यवस्था कवन । सदैया ३१ सा ।
कोई मिथ्या दृष्टी जीव धरै जिनमुद्रा-भेश ।
इन्धियामें मगन रहे कहे, हम जती

अतुल अखण्ड मल-रहित सदा उदात्त,
 ऐसे ज्ञान भाउसौ विमुख मूढमती है ॥
 आगम सभालै दोष टालै विवहार भालै,
 पालै व्रत जदपि तथापि अविरती है ।
 आपुको कहावै माख मारग के अधिकारी,
 मोखसौ सदीव रुष्ट दुष्ट द्रमती है । ११६ ।

अर्थ—अत्र शुद्ध आत्मा स्वरूपके अनुभव पिना महा-
 व्रती हू द्रव्यलिगी जानियै यह कहियै है—केई जीव
 मिथ्यादृष्टि है । अरु काहू आचार्य के उपदेश रसते जिन
 मुद्रा भेष धारी है अरु साधुकी क्रियामें मगन रहे है ।
 अरु अपने मनसो अधवा काहूके धूके सों ऐसे कहे !
 'हम जती हैं' इतने महाव्रती है । अरु जो अतुल कहता
 जाकी तुलना नाही । अखण्ड कहते सपूर्ण विभावमल
 रहित सदा प्रकाशवत्, अपना अपना अनुभव स्वरूप तो
 ज्ञान भाव है, तासो विमुख है । याही तै मूढ मती है ।
 अरु क्रिया तो ऐसे करे है, आगम सिद्धांत सभारै है ।
 अरु आहारादिक के दोष टालै है, व्यवहारमें दृष्टि राखै

है। ऐसे यद्यपि महाप्रत पाले है तौऊ निश्चय नयते ए
 अविरति कहिये। एमे जु है सो आपुको मोक्ष भागके
 अधिकारी लोकमें रुढ़ावे है, वह मोक्ष सों सदा रूठी ही
 रहै। इतने अभव्य को भी क्रियाके बलमौ नवमा प्रेयेरु
 ली गति रुही। पीछे ए दुष्ट दुर्गतिमें परै ॥ ११६ ॥

दोहरा ।

जे व्यवहारो मूढ वर, परजैवुद्धी जीव ।
 तिन्हिको वाह्य क्रियान को, हे अवलव सदीव ॥

अर्थ—जैसे मीऊ मनुष्य व्यवहार में ही रहै है।
 अरु जे जीव पर्याय बुद्धि हैं। जो शुभ सगति सौ जीव
 होइ तो भलो, ऐसे पर्याय बुद्धि धारै है तिहि को ती
 वाह्य क्रिया की अवलवन सदा ही बह्यौ है ॥ १२० ॥

अर्थ—महामूढ वर्णन । चौपाई—छंद ।

जैसे मुगध धान पहिचानै ।

तुप तदुलको भेद न जानै ॥

तैसे मूढमती विवहारी ।

लसे न धध मोख विधि न्यारो ॥१२१॥

अर्थ व्यवहारी की महा मूढताकी वर्णन

—जैसे काऊ मुग्ध कहते मनको भोलो पुरुष है सो धानको
 तौ पहिचानै पै तुष अरु तदूल कौ वामें भिन्नता है सो न
 जानै । केवल ब्रीहि धान जानै । तैसे जो व्यवहारी मूढ-
 मती है सोती बध विध अरु मोच विधि न्यारी न्यारी लख
 सकै नाही ॥ १२१ ॥

दोहरा

कुमतीवाहिज दृष्टिसौ, वाहिज क्रिया करत ।
 मानै मोख परपरा, मनमें हरस धरत ॥ १२२ ॥

अर्थ—कुमति होइ सो पर्याय बुद्धि तै साता वेदन
 कौ समाधि सुख जानि के गकी हेतुरूप वाद्य क्रिया करै
 अरु वाद्य क्रियामें मगन होतौ याही तै निर्जरा मानि मोच
 परपरा मानै । अरु मनमें आनन्द पावै ॥ १२२ ॥

दोहरा

शुद्धात्म अनुभौ दशा, कहै समकितौ कोइ ।
 सो सुनिकै तासो कहैं, यहु सिवपथ ज होइ १२३

॥ अर्थ—यहां कोऊ समकितौ शुद्ध आत्माकी अनुभ
 दशा मोचकौ कारन कहै है, तदा सो वचन गुनकै तास

ऐसं कहे है यहू तौ मोक्ष मारग होइ नहीं ॥१२३॥

५१

ऋषिच छंद

जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर,
 मुनि मुद्रा धरि क्रिया प्रवानहि ।
 ते हिय अध वध के करता,
 परम तत्व को भेद न जानहि ॥
 जिन्हके हिये सुमतिकी कनिका,
 वाहिज क्रिया भेष परमानहि ।
 ते समकितौ मोखमारगमुख,
 करि प्रस्थान भयस्थितौ भानहि १२४

। अर्थ—जिन्हके घटमें देहबुद्धि रहे है । इतने देहधारी देहकी भिन्नपनी न जानै है । अरु मुनीश्वर की मुद्रा धारिके क्रिया ही सी प्रमाण करै है ते हिये के अन्ध है । अरु वधके करन द्वारै है । अरु परम तत्व कहतै मोक्ष तत्व तिहुको भेद न जानै । अरु जिन्हके हिये में सम्यग्दृष्टि लिये सुबुद्धिनी रुनी जागी, सो तौ चाह्य क्रियाकी भेष

रूप प्रमान करै, ते तौ समकृती कहिये । अरु मात्र मारग
सन्मुख प्रस्थान करि कहता प्रमान करिकै भव स्थिति कहतें
ससार स्थिति भानहि कहतें भाजै ॥१२४॥

अथ—मोक्षकौ उपदेश सचोपमात्र । सबैया ३१^१ मा
आचारज कहैं जिन वचन कौ विसतार,
अगम अपार है कहेंगे हम कितनौ ।
बहुत बोलिवेसौ न मुकसूद चुप्प भली,
बोलिये सुवचन प्रयोजन है जितनौ ॥
नानारूप जलपसों नाना विकल्प उठै,
तातैं जितौ कारिज कथन भलौ तितनौ ।
शुद्ध परमात्मकौ अनुभौ अभ्यास कीजै,
यहै मोक्ष पथ परमारथ है इतनौ ॥१२५॥

अर्थ—अथ सचोप सौ नि. केवल उपादेय रूप मोक्ष
मारग कौ उपदेश दे है—आचारिजी शिष्य सौ । कहै है,
यहा बहुत बोलवै सौ हमारे मुकसूद नाहीं, यातैं चुप्प ही
भली । अरु जितनौ एक प्रयोजन है इतनौ ही बोलिवी
भलौ नाना प्रकार सौ जो जल्प कहतै मोक्षतौ करिये तौ

नाना प्रकार के विकल्प उठें ताँतें जितौ एक कार्य है तेतौ ही रुथन भली । शुद्धपरमात्म द्रव्यके अनुभवकौ अभ्यास कीजै । योंही मोक्ष मार्ग जानियै । सब रातमें इतनौ ही परमार्थ है ॥ १२५ ॥

दोहरा ।

शुद्धात्म अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर ।
मुक्ति पथ साधन अछैं वाग जाल सब और ।

अर्थ—जिन क्रियातैं शुद्ध आत्माकौ अनुभव हाइ सोई क्रिया । अरु शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दृष्टिही दौर मुक्ति पथकौ कारण है । और सब वाग् जाल रहते वचना-द्वार है ॥१२६॥

अथ—शुद्धजीवद्रव्य वर्णन । दाहरा ।

जगत चक्षु आनन्दमय, ज्ञान चेतना भास ।
निरविकल्प सासुत सुधिर, कीजै अनुभवौ तास ॥

अर्थ—अब शुद्ध जीव द्रव्यकौ वर्णन करै है—जो पदार्थ, सर्व जगत्में चक्षुरूप है अरु आनन्दमई है ॥ जाकी भास रहते ज्योतिमान अरु चेतना है । नामें सोऊ

न्य नहीं, भेद नहीं । सासुतों है स्थिर है । ते पदाथकौ
अनुभव कीजे, तम मुक्ति पाइयै ॥१२७॥

दोहरा ।

अचल अखडित ज्ञानमय, पूरन वीतममत्व ।
ज्ञानगम्य वाधारहित, सोहै आत्म तत्व ॥१२८॥

अर्थ—जो कहूँ अपने सुभायते चलै नहीं ऐसो अख-
डित ज्ञानमई है, पूरन कहतै पूरन समाधिबत । अरु
ममत्व रहित, इन्द्रिय प्राद्य नहीं तातै ज्ञान गम्य है ।
अछेय, अभेय है, तातै वाधा-रहित है, सोई आत्मतत्व
कहै है ॥१२८॥

दाहरा ।

सर्वविशुद्धिद्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपथ ।
कुन्दकुन्द मुनिराज कृत, पूरन भयौ गरथ ॥

अर्थ—जिस द्वारमें आत्माकी सर्व विशुद्धि पाइये सो यह
द्वार कह्यौ, सो प्रगट मोक्षमै मारग कह्यौ । श्री सीमन्धर
स्वामीकी बानी सुनकै श्री कुन्दकुन्दाचार्य यह ग्रथ कीन्हौ

ऐसी सम्प्रदायवात है, सो ग्रन्थ सपूर्ण भयो ॥१२९॥

इति नाटक समयमार भाषा अथ के विषे सर्वविशुद्धि
द्वारमें बालबोध रूप अर्थ सम्पूर्ण भयो ।



अथ ग्रन्थव्यवस्था कथन । चोपाई ।

कुन्दकुन्द मुनिराज प्रवीना,

तिन्ह यह ग्रथ यहालौ कीना ।

गाथावद्ध सुप्राकृत वानी,

गुरु परम्परा रीति बखानी ॥१३०॥

अर्थ—अथ ग्रन्थके करनहार को नाम कहें अरु ग्रन्थ
की महिमा कहे हैं कुन्दकुन्द नामै मुनिराज कहते आचार्य
सो अध्यात्ममें प्रवीन भये तिन्ह आचार्य इहु सर्व विशुद्धि
द्वार लौ यह ग्रन्थ कीन्हौ, सो ग्रन्थकर्ता पाछे प्राकृत गाथा-
वद्ध वानी प्रकाशी यह वानीको गुरु सम्प्रदायते अमृतचद्र
आचार्य बखानी ॥१३०॥

-चीपाई छन्द

भयो गरथ जगत विख्याता,
 सुनत महासुख पावहि ज्ञाता ।
 जे नव-रस जगमाहि वखाने,
 ते सब समयसार रस साने ॥ १३१ ॥

अर्थ—'वा ग्रथधरुं टीका व्याख्यान करनत कुन्दकुं
 आचार्यरुं कीन्हों ग्रथ जगतमें विख्यात भयो, वाको सु
 ज्ञाता होइ तो महासुख पावै । जगतमें जे नव रस वख
 ई ते सब ही नव रस समयसार रसमें साने कहते सम
 हैं ॥१३१॥

दोहरा ।

प्रगटरूप संसारमें, नव रस नाटक होइ ।
 नवरस गर्भित ज्ञानमें, विरला जाने कोइ

अर्थ—प्रगटरूप संसारमें यहू बात प्रगट रूप है
 नाटक होइ सो नव रस मय होइ । पै शात रसमें जो

। अथ नवरसके नाम । कपित्थ छन्द ।

प्रथम सिगार-वीर दूजौ रस, १ । १

तीजौ रस करुना सुखदायक ।

हास्य चतुर्थ रौद्र रस पचम,

छट्टम रस वीभच्छ विभायक ॥

सप्तम भय अष्टम रस अद्भुत,

नवमो शात रसनिकौ नायक ।

ए नव रस एई नव नाटक,

जो जह मगन साइ तिहि लायक ॥

अर्थ—अथ नव रसकौ वर्णन करै है । अथ नव रसके नाम कहै है—प्रथम शृ गार-रस, दूसरौ वीर रस, तीसरौ करुना जगतमें सुखदायक है । चौथौ हास्य रस, पाचमौ रौद्र रस, छटौ वीभत्स रस विभाय कहत चित्त भगकौ करनहार है । सातमौ भय रस, आठमौ अद्भुत रस । नवमौ शात रस, सब रसमै नायक है । ए नव रस कहिये, एई नव नाटक होइ । जो जिहि रसमें मगन हूँ रखी है सो रस तिनके लायक है ॥१२३॥

अथ नररस अरस्था रुचन । सदेया ३१ सा
 सोभामें सिगार वसै वीर पुरुपारथमें, ।
 कोमल हिएमें करुना रस वखानिये ।
 आनन्दमे हास्य रुण्ड मुण्डमे विराजै रुद्र,
 वीभत्स तहां जहा गिलानि मन आनिये ।
 चितामें भयानक अथाहतामें अदभुत,
 मायाकी अरुचितामें शात रस मानिये ।
 येई नव रस भवरूप एई भावरूप, ।
 इनिको विलेछिन सुदृष्टि जागै जानिये ॥

अर्थ—अब नर ही रसके स्थाई भाव कहै है—सोभा
 विभूपामें अगाररमकौ वास है । अर्थ—साधनरूप पुरुपारथमें
 वार रसकौ वास है । हृदयके कोमलपनामें करुना रमकौ
 वास है । रन—सग्राम विपै रुण्ड मुण्ड निखरे होइ तहा रौद्र
 रसकौ वास है । कोई सुगामणी ठौर देख, मनमें ग्लानि
 जानिये, तहां विभच्छ रसकौ वासु है । चितामें भय रसकौ
 वासु है । जो कोऊ अथाह अथटमान वस्तु जानिगै तहा

अद्भुत रसकौ वास है । जहा मायाकी अरुचि होइ तहां
शांत रसकौ वास प्रमाण करिये । एई नर रस है सो
नररूप कहते समाररूप ह । अरु एई नर रस भावरूप
कहते भले भाग ह । उन नर रसको विलेखित कहते विभेक
सो तौ जगतमें सुन्दरि तै जानिये ।

अथ—नवरस ज्ञानगमित एकीभूत कथन । छप्पय ।

गुन विचार सिंगार, वीरउद्यम उदार रस ।
करुणासम रस रीति, हास हिरदै उच्चाह सुख ।
अष्टकरम दल मलन, रुद्र वरत तिहि ध्यानक ।
तन विलेख वीभच्छ, दुन्द मुस दशा भयानक ।
अद्भुत अनतवल चितवन, सात सहज वैराग्य ध्रुव
नवरसपिकास परगासतव, जव सुबोध घटप्रकट हुव

अथ— नर रस भावरूप ज्ञानमें गमित ह मा एरु
ठौर दिखावे है जानादिक गुणमें आत्मा विभूषित देखिये,
तहाँ तो अ गार रस उपज्या । अरु आत्माके निर्जरा प्रमुख
को उद्यम देखिये तहा ता उदार प्रधान वीर रस है । नर
याके उपशम रसके रीति देखिये तव तें याको करना रस

समता जानिये । जब याके अनुभव में उछाह अरु सुख उपजे है सो तो हिये मे हास्य रस उपज्यो । महा बलवाने आठ कर्मके अनतप्रदेशी दल है ताको महा मल करतो देखिये तो आत्मा रोद्र रस-मई होइ रह्यो है । जब तन पिलेछि कहता शरीर-स्वरूप विचारे है तब याके ग्रीभत्य रस है । जब तो आत्मा अपना स्वरूप न पाये है अरु दु द दशाम र्योहै तब तो भय रसमें देखिये । याके अनत वीर्य को जब चिंतवन कीजै तब तो आत्मा अद्भुत रस मय पाइये । जब तौ राग द्वेष निवारिके सहज वैराग्य कौ ध्रुव निश्चल धारे है तब तौ शात रसमय पाइये । जब भाव रसके विलासको प्रकाश तवाहि होइ जब घटमें सुबोध प्रगट हाइ ॥१३५॥

अथ ग्रथस्तुति । चौपाई छंद ।

जब सुबोध घटमें परगामे,

तब रस विरस विपमता नासे ।

नव रस लखें एक रस माहो,

तातै विरस भाव मिट जाही ॥१३६॥

अर्थ—अरु दकु द आचार्यकृत ग्रथको स्तुति करै
है, अरु प्रशंसाकी बात कहै है—जब तौ घटमें सुबोध
प्रकाशै है, तबतौ ए रस सहित है, ए विरस है ऐसौ जा
विषमता भाव है सो सब नाशै । याको हेतु यहै नर रम
है सो- तौ एरु भार रस ये ही लखै । ताँत विरस भाव
मेटिकै, एक ही रसमें याको रहिवौ होइ ॥१३६॥

दोहरा

सवरसभित एक रस, नाटक नाम गर थ ।

जाकै सुनत प्रवान जिय, समुझे पय कुपथ १३७

अर्थ—सबही नवही रसमें गभित एक रस मई भयो
समयसार नाटक नाम गर थ श्री कृ दकु द आचार्य जीन
कीन्हो जाकै अर्थ भाषका सुनत ब्रमाण जीन है सो मार्ग
कुमागे को समुझे । १३७ ।

चौपाई

वरतै ग्रथ जगत हित काजा,

प्रगटै अमृतचन्द्र मुनिराजा ।

तन तिन्हि ग्रथ जानि अति नी

अर्थ—तां यहू ग्रथ अति ही सोभा पावै । वह
ग्रथतो मन्दिर भयौ याकै परि यहू स्वाद्वाद का विस्तार
कलशरूप होइ । तन अपन चित्तमें अमृतवचन गढ़िकै
खोलै सो दोष रहित धरै, श्री अमृतचन्द्र आचार्य ऐसै
वालै ॥ २ ॥

दोहरा ।

कुन्दकुन्द नाटक विप, कह्यो दरव अधिकार ।
स्याद्वाद नय साधिमें, कह्यो अवस्था द्वार ॥३॥

अर्थ—श्री कू द कु द आचार्य के कौन्हां नाटक ग्रथ
विषे जीव अनीव द्रव्यक अधिकार कह्यो । अब म स्याद्वाद
नयकी अवस्थामै द्वार कहो । अरु साध्य वस्तुकी अवस्था
की द्वार कहो । २ ॥

कहों मुक्ति पदको कथा, कहों मुक्ति को पथ ।
जैसै घृत कारज जहा, तह कारन दधि मथ ॥

अर्थ—साध्य सरूप मोक्ष पद और साधक, स्वरूप
मोक्ष मारग का कथन करता हूँ । जिस प्रकार कि घृतरूप
पदार्थ की प्राप्तिरु हेत दधि मथन कारण है ॥ ४ ॥

चौपाई ।

अमृतचंद्र बोले मृदुवानी,
 स्याद्वाद की सुनो कहानी ।
 कोऊ कहै जीव जग मांही,
 कोऊ कहै जीव है नांही ॥ ५ ॥

अर्थ—श्री अमृतचंद्र आचार्य ऐसे कोमल बानी
 बोलै अहो शिष्य ! स्याद्वादकी क्या कहानी सुनो । कोऊ
 अस्तित्वादी तौ ऐसै कहै है—जो जगत में जीव वस्तु है ।
 कोऊ नास्तिवादी, ऐसौ कहै हैं जु जीव वस्तु है नाहीं । ५ ।

दोहरा ।

एक रूप कोऊ कहै, कोऊ अगनित अग ।
 छिनभगुर कोऊ कहै, कोऊ कहै अभग ॥ ६ ॥

अर्थ—कोऊ अद्वैतवादी ब्रह्म एक रूप ही कहै ।
 कोऊ नैयायिक वैशेषिक जीव अगनित पनै कहै । कोऊ
 बौद्धमत लिये जीवको क्षणभंगुर कहै । कोऊ सांख्यमत
 लिये जीवको सर्वथा अभग ही कहै ॥ ६ ॥

दोहरा ।

न अनन्त इहि विधिकही, मिलै न काह् काइ ।
जो सब नै साधन करै, स्यादवाद है सोइ ॥ ७ ॥

अर्थ—अथ समझिनामै मार्ग मो नय कहियँ । सो
इहि विधि अनन्त नय कहा । यामें काऊ नय साहू नय मो
मिल नाही विराधी है अथ इहा जा सबही नय सबही
नययो साधन करै । इतने सबही नय भाची कहि दिखावे
सोई स्याद्वाद जानियँ ॥ ७ ॥

दोहरा ।

स्याद्वाद अधिकार अथ, कहौ जैनको मूल ।
जाके जाने जगत जन, लहै जगत जल कूल ॥

अर्थ—तिहि स्याद्वाद को अधिकार कहौ हौं । यहू
स्याद्वाद जैन आगमनमै मूल है । तिहि स्याद्वादके अन्त
प्रमान नगतवासी लोग हैं सो जलधिमै मूल कहतैं तट
सोई लहैं ॥ ८ ॥

अथ—प्रश्नोत्तर कथन । सर्वथा ३१ सा ।

शिष्य कहै स्वामी जीव साधीन कि पराधीन

जीव एक है किधौ अनेक मानि लीजिए ।
 जीव है सदीय किधौ नाहीं है जगत माहि,
 जीव अविनश्वर कि नश्वर कहीजिए ॥
 सतगुरु कहै जीव है सदीय निजाधीन,
 एक अविनश्वर दरव दृष्टि दीजिए ।
 जीव पराधीन छिनभगुर अनेकरूप,
 नाहीं जहा तहा परजै प्रमान कीजिए ॥ ६ ॥

अब—अब नयक जालतै शिष्यक। सदह उपज्यौ—
 तप प्रश्न करै है, शिष्यको गुरु रुहै है—शिष्य ब्रूम है
 है स्वामी! जीव है सो स्वाधीन रहत आप वश है कि
 पराधीन रहते परवश है। अरु चीय एक है कि गिनती
 से अनेक है, ये कैये मनमें मानिय। अरु जीव कहावै सो
 जगतमें सदीय कहत सदाही है कि है हो न हि। ये अस्ति-
 पनाका संदेह है, अरु तो जीव अस्तिपनै है—तो अविन-
 श्वर कहतै अविनाशी है कि नश्वर कहतै विनाशी कहिय है
 अब ऐमै प्रश्न पर सद्गुरु कहै है—ह शिष्य ! वम् --
 तम है इतनै नास्ति न कहियै। अरु जीव

है। अरु एक कहतें गिनती यद्यपि अनरु है तोऊ लक्षण तै एरु है—अविनाशी है। द्रव्य दृष्टि दीजै तब तौ ऐसे है। अरु जा पर्याय नय प्रमाण करिये तौ यो जीर पराधीन है कर्माधीन है। अरु आनीचीमरण देखेतै चणभगुर है। गत्यादिक देखेतै अनेक रूप है। अरु जीर पदार्थ स्थापना अपेक्षा पै नाही है—नहां पर्याय प्रमाण है तहा यो है ॥ ६ ॥

अथ—द्रव्यक्षेत्रकालभाव अस्ति नास्ति कथन ।

द्रव्यक्षेत्र काल भाव च्यारो भेद वस्तु ही में,
 अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये ।
 परके चतुष्क वस्तु नास्ति नियत अग,
 ताको भेद दर्व-परजाय मध्य जनिये ॥-
 दरवतौ वस्तु खेत सत्ताभूमि काल चाल,
 सुभाव सहज मूल सकति वरानिये
 याही भाति पर विकल्प वृद्धि कल्पन,
 विवहार दृष्टि अश भेद परवानिये ॥१०॥

अथ - अत्र द्रव्य क्षेत्र काल भाव करिके सब वस्तुकी अस्ति नास्तिपनी कहै है—द्रव्य १ क्षेत्र २ काल ३ भाव ४ ए चारों भेद सब वस्तुमें विचारियै तब तौ सब वस्तु अस्तिरूप है । अरु पराये व्याप तें वस्तुकी नास्ति स्वरूप निपजै है । इतन परद्रव्य १ परक्षेत्र २ परकाल ३ परभाव ४ तें सब नास्तिरूप है । नियत अग रहतें ए निरचय नपतें अस्ति नास्ति है, ताहीं भेद द्रव्य पर्यायमें जानिये । इन्दि चारों भेदमें द्रव्यते अस्तु कहिये, वस्तुकी सत्ताकी भ्राम-क्षेत्र कहिये, वस्तुके परिणाम चालतो काल कहिये, सहजकी मूल शक्ति सो स्वभाव कहिये । याही भाँति पुद्धि कल्पना करिके परद्रव्य क्षेत्रादिकके विकल्प कहिये, जैसे घट वस्तु ग्रह तें परादिकके द्रव्य, क्षेत्र काल, भावकी कल्पना तें नास्तिपनी होइ । ए व्यवहार दृष्टितें वस्तुके अश भेद प्रमाण होइ ॥१०॥

अथ स्याद्वादकी मात भग । दोहरा ।

है नाहीं नाहा सुनै, है है नाहीं नाहि ।

यहु सरवगी नय धनी, सब मानै सब माँहि ११

अर्थ—है नाही या कहियै में सद्रव्यादिककी

पनो गहिकें, परद्रव्यादिकरौ केवल नास्तिपनो ही ग्रहिये
 नाहीं स्रहै या कहिये में प्रथम पर द्रव्यादिकरौ नास्ति
 पनो ग्रहिकें पीछें स्व द्रव्यादिकरौ अस्ति-पनो ग्रहिये ।
 है कहिये में केवल स्व द्रव्यादिकरौ अस्तिपनो ही ग्रहिये
 नाही नाही कहिये में पर द्रव्यादिकरौ केवल नास्तिपनो
 ही ग्रहिये । याही तं गु भग उपजै है । यहा सर्ग
 नयके धनी स्याद्वादी सर्ववस्तुमें सर्व भग मानै है । १

अथ चतुर्दश नय एकांतपञ्चकवन नाम गणना
 ज्ञानको कारण ज्ञेय आत्मा त्रिलोकमय,
 ज्ञेयसौ अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छाही है
 जौलौ ज्ञेय तौ लौ ज्ञान सर्व द्रव्यमें विना
 ज्ञेयक्षेत्र मान ज्ञान जीव वस्तु नाही है
 देह नसै जीव नसै देह उपजत लसै,
 आत्मा अचेतन है सत्ता अश माही है
 जीव छिन-भ गुर अज्ञायक सरूपी ज्ञान,
 ऐसी ऐसी एकान्त अवस्था मूढ माही है

अथ—अथ १४ नयके भेदतैं एकांतपञ्चकी जै

ऋथनी है तैमी कहै है—चौदह नयकी नाम स्थापना करै
 है, ज्ञेय वस्तुतें ज्ञानउपजै है तार्त ज्ञानकी कारण ज्ञेय है,
 ए नाम है १ तीनलोकप्रमाण आत्मा है, तार्त त्रिलोकमय
 ये नाम २, जैसे अनेक ज्ञेय है तैसे ज्ञान इ अनेक है,
 अनेक ज्ञान ए नाम ३, ज्ञानमें ज्ञेयकी छाया है सो मेल
 है—मेल ज्ञेय ए नाम ४, जौलों ज्ञेय है तौला ज्ञान है
 ज्ञेय उपरान्त ज्ञान नाहीं जौलों ज्ञान ए नाम ५, सर्वद्रव्य-
 मई विज्ञान है यो ही नाम है ६, नेय क्षेत्रके प्रमाण ज्ञान
 है, ज्ञेय क्षेत्र मान ए नाम ७, जीवस्तु जगतमें है नाहीं
 नास्ति जीव ए नाम ८, देहके नाश होत जीवकोऊ नाश है
 अरु देह उपजतै जीव हू लसै कहतै पिराजै । देह नासै
 जीव नाश ए नाम ९, देहोत्पाद जीवोत्पाद ए नाम १०,
 आत्मा है सो अचेतन पदार्थ है, अचेतन नाम ए नाम
 ११ मत्ताकी अशुको जीव कहिये है, पै आत्मा अशु
 मात्र ए नाम १२, जीव है सो चण भगुर है—चणभंगुर
 ए नाम १३, ज्ञान है सो ज्ञायक स्वरूपी नाही अज्ञायक
 ज्ञान ए नाम १४, ऐसी ऐसी एरान्त अस्था मूढ़
 लोगनि के पासै है । १२ ।

अथ—ज्ञानकी कारण ज्ञेय प्रथमनय कथन—

कोऊ मूढ कहै जैसे प्रथम सवारी भीति,
 पाछै ताकै ऊपरि सुचित्र आछो लेखियै ।
 तैस मूल कारण प्रगट घट पट जैसो,
 तैसो तहा ज्ञानरूप कारज विसेखियै ॥
 ज्ञानी कहै जैसी वस्तु तैसोही सुभाव ताको,
 तातें ज्ञान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखियै ।
 कारण कारज दोऊ एक ही में निहचै पै,
 तेरो मत साचो विवहार दृष्टि देखियै ॥१३॥

अर्थ—अब ज्ञान की कारण ज्ञेय प्रथम नय कथन—

कोऊ भीमासक सौ मूढ ऐसैं शिष्य लोगका समझावै है
 कहै है, जैसैं पहलें भीति संभारी होइ तो आछी परि आछै
 चित्र, आँधुरी परिपुरी होइ, तैस नानकी उत्पत्तिकी मूलकारण
 जैसो घट पट प्रमुख पदार्थ होइ तैसोई तहा ज्ञानरूप कार्य
 विशेष होइ । जो घट पदार्थ जानिना योग्य होइ तो घट ज्ञान
 होय, तातें ज्ञान की कारण ज्ञेय है । अब स्याद्वादी ज्ञान

ऐसै कहै ? अहो भैया । जो जैसी वस्तु है तामै तैसो ही स्वभाव है । जो ज्ञान पदार्थ है तामै तौ स्वभाव जानि-वाही कौ है । ज्ञेय है सो जानिना योग्य है, या अर्थ भेद तें ज्ञान अरु ज्ञेय ए दोऊ न्यार पद देखिये ह । यहा जा ज्ञेय करनपनै कहौ सोई ज्ञानविस्मय कहौ घटपटादिकु जड पदार्थ दूर रहौ । अरु ज्ञान है सोई सामान्यपनै ज्ञान है, तातें निश्चय तो ज्ञानही में ज्ञान ज्ञेय पाइयै । पं जो व्यवहार दृष्टि दीजै तौ तेरो ही मत साचो है ॥ १३ ॥

अथ—द्वितीय नय आत्मा त्रिलाक प्रमाण यह कथन
सैया ३१ सा

कोऊ मिथ्यामती लोकालोकव्यापी ज्ञान मान,
समुझे त्रिलोक-पिंड आत्म दरव है ।
याहीतें सुखद भयो डाले मुखसों न वालै,
कहै या जगतमे हमारौही परव है ॥
तासौ ज्ञाता कहै जीव जगतसों भिन्न पे,
जगतविकासी तोहि याहीतें गरव है ।
जा वस्तु सो वस्तु निरालौ सदा,

परिनयो ज्ञानिके मत भूलं । ज्ञान ई सो अगम्य वस्तु है
 अग्राध्य है, निराबाध रस सी भरौ है, ज्ञानकी ज्ञायक
 स्वभाव है, ताते यद्यपि पर्याय शक्तितै ज्ञान अनकरूप भयो
 है तौह ज्ञायक स्वभाव तै ज्ञानमी एगता है, ति ह
 एगत्व सौ ज्ञान टरौ नाहीं ॥ १५ ॥

अथ—चतुर्थे, मेल ज्ञेय छाया यहु कथन । सवेया ।

कोऊ कुधी कहै ज्ञान-माहि ज्ञेय को अकार,

प्रतिभासि रह्यो हे कलक ताहि धाड़्यै ।

जव ध्यान जलसौ परारिके धवल कीजै,

तत्र निराकार सुद्ध ज्ञानमई हाड्यै ॥

तासो स्यादवादी कहै ज्ञान को सुभाव यहै,

ज्ञेयको अकार वस्तु माहि कहा सोइयै ।

जैसे नानारूप प्रति विवको भलक दीखे,

जद्यपि तथापि आरसो विमल जोइयै १६

अर्थ—अब चौथी नय मेल ज्ञेय छाया याको प्रपच

कहि दिखाव है—कोऊ कुबुद्धि कहतें मिथ्यामती बंशेपिकमत

वालो ऐसो कहै जा जगत वासी चीरके ज्ञान माही ज्ञेय

को आकार प्रतिभासौ हे तो आकार निराकार, ज्ञान के कलक उपजै है। तासौ धोयो जोइये । तातें यहा निराकार को ध्यान लगावनौ सोई जल भयो, तासौ पस्वारिबे ज्ञान को उज्जल कीजै तव निराकार शुद्ध ज्ञान होइये । अथ इहा स्याद्वादी तासौ कहै है- अहो भैया ! ज्ञानका यहै स्वभाव है जो ज्ञेयको आकार वस्तु माही प्रतिभासै, इहा आकार खोखोको कहा मखगद है । जैसे आरसीमें यद्यपि नानारूप प्रतिबिम्बकी झलक दीसै, तथापि कहतै ताहू आरसी निमल कहते निर्मल ही जोइयै । प्रतिबिम्बको कलक कोऊ न कहौ ॥ १६ ॥

अथ—पंचमनय जालां ज्ञेय ताली ज्ञान यहु कथन—

सवैया ३१ सा

कोऊ कहै ज्ञेयाकार ज्ञान परिनाम,

जोलौ विद्यमान तौ लौ ज्ञान परगट है ।

ज्ञेय के विनाश होत ज्ञान को विनाश होइ,

ऐसी वाके हिरदै मिथ्यातकी अलट ३ ॥

तासौ समकितवत कहै अनुभौ

परजै प्रवान ज्ञान नानाकार नट हे ।

निरविकल्प अविनश्वर दरवरूप,

ज्ञान ज्ञेय वस्तु सौ अव्यापक अघट है १७

अथ—अत्र पंचमी एकांत - नय कहै, जौलौं ज्ञेय तौलौं ज्ञान, याकौ प्रपंच कहै है—कोऊ अज्ञ कहत अज्ञान पुरुष ऐसौ कहै है, जैसौ ज्ञेयकौ आकार तेंसोई ज्ञान परिनाम होइ, तांत ज्ञेय विद्यमान जौलौं होइ तोलौं ज्ञान हू प्रगट रहै । अरु ज्ञेय क विनाश भये ज्ञानकौ हू विनाश होइ । ऐसी या मिथ्यातीके हिये में मिथ्यातफी थलट लगी रहै है । अब तासों सम्यकवत स्याद्वादी अनुभरफी कया कहै है । अहा भया ! जैसे कोऊ नट है सो नाना प्रकारके भेष धारिकै नाना प्रकार नाम धरावे, तैसैं ज्ञानरूप नट हैसो नानाआकार धारिकै परजाय प्रभाणै बहुरूपी है । जैसैं नट द्रव्य एरु तैसे नान वस्तु निरिगुण्य है, द्रव्यपते अविनश्वर है । अरु ज्ञान वस्तु ज्ञेय वस्तु सौ अव्यापक है । इतने ज्ञेय वस्तु ज्ञानमें एकमेरु न होइ । ज्ञान ज्ञेयकी एतता अघटती है ॥१७॥ । ।

अथ-पृष्ठ सर्वद्रव्यमय आत्मा यहू रुचन, सत्रैया
 कोऊ मन्द कहे धर्म अधर्म आकाश काल,
 पुद्गल जीव सब मेरो रूप जगमें ।
 जानै न मरम निज माने आपा परवस्तु,
 बाधै दृढ करम धरम सोवै जग में ॥
 समकित्ती जीव सुद्ध अनुभो अभ्यासै तातैं,
 परकौ ममत्व त्याग करै पग पग मे ।
 अपने सुभावमे मगन रहै आठौ जाम,
 धारावाही पथिक कहावै मोरु मगमें ॥१८॥

अर्थ—अब लहौ एरान्त नय सबद्रव्यमयी आत्मा
 यासौ प्रपच कहि दिखावै है—कोऊ मन्द कहते मूसै ब्रह्मा-
 द्वैतवादी ऐसौ कहै, जो काहूके मतमें धर्म, अधर्म,
 आकाश काल पुद्गल जीव ए उर्हा द्रव्य कहावै है सो
 सब ही ब्रह्म है, यातैं मेरो ही रूप और सर्व जगतमें अवस्तर
 रहौ है, और पदार्थ कोऊ नाहीं । यहा गुरु गिरा...
 अहो शिष्य ! ये जा ब्रह्माद्वैतवादी मू...

अपना मरम न जानै है अरु परवस्तु है ताका आत्मा
 जान है या मिथ्यात तै ये दृढ कमे बाँवै है । अरु
 अपनी अशालमें बसे खावे है । अपना सुभाव गमावै है ।
 सम्यक्त्री जीव होइ सोती सोह बीजके ध्यानतै शुद्ध अनु
 भवका अभ्यास करे, तात आत्मतत्त्व न्यारी ही पावै । तातै
 परवस्तुको पग पगमे त्याग करे । अरु अपने शुद्ध, स्वभाव
 में आठा जाम मगन रहै । यातै ज्ञान धारामें पहनहारा
 साक्षमार्गमें परिकर कहते बटाऊ कहावे ॥ १८ ॥

अथ सप्तम ज्ञेय क्षेत्र प्रमाणान यद्बुद्धयः । सर्वेषां ।
 कोऊ सठ कहै जेतौ ज्ञेय रूप परवान,
 तेतौ ज्ञान तातै कहो अधिक न और है ।
 तिहौ काल परक्षेत्र व्यापी परनयौ मानै,
 आपा न पिछाने ऐसी मिथ्यादृग दीर है ॥
 जैनमती कहें जीव सत्ता परवान ज्ञान
 ज्ञेयसौं अव्यापक जगत मिरमोर है ।
 ज्ञानकी प्रभामें प्रतिवित्त विविध ज्ञ य,
 जद्यपि तथापि यिति न्यारी न्यारी ठौर है १९

अथ—अत्र मातृमां एजात नय ज्ञेय क्षेत्र प्रमाण
 ज्ञान याकौ प्रपञ्च रुद्धि दिखावै है—कोऊ सठ कहत मूर्ख
 ऐसी कहै है जितना एरु वस्तुका आकाररूप कौ प्रमाण
 है, इतने ज्ञेय^१ जितना एरु छोटी चडौ प्रमाण है ते
 तौही ज्ञान^१ प्रमाण है। तात अधिकौ और प्रमाण नाहीं
 ऐमें ज्ञानकी तीनों काल विषे पर क्षेत्र व्यापी, अरु परसौ
 परिनयौ इतने ज्ञेय सौ एकमेरु भयौ ज्ञान माने पे ज्ञान
 कौ आत्मरूप पिछानै नाहीं। ऐसी मिथ्यादृष्टि की दौर
 है। अत्र यामौ जैनमती स्याद्वादी कहै है अहो भैया !
 जितने आकाश क्षेत्र में जीमसत्ता है, तितने ही प्रमाण
 ज्ञान है। अरु ज्ञान है सा घट पटादिक ज्ञेय पदार्थ सौ
 अरुपापक है। अरु इह जगतके मस्तरु मुटुट समान है
 यद्यपि कहतें जा ज्ञानकी प्रभामे विविध रुद्धतें नानाप्रकार
 ज्ञेय पदार्थ प्रतिनिमित्त है रहे है। तथापि कहतें तौह
 ज्ञानकी धिति न्यारी, अरु ज्ञेयकी धिति न्यारी। अरु ज्ञान
 की आत्मा ठौर है। अरु ज्ञेयकी पृथ्वी प्रमुख ठौर न्यारी

अथ—अष्टम नास्तिकवादो वस्तु नाहीं यहु कथन

सवैया ३१ सा

केई सुन्नवादो कहैं ज्ञेयको विनाश होत,
ज्ञानको विनाश होइ कही कैमें जीजिये
ताते जीवतव्यताकी थिरता निमित्त अथ,
ज्ञेयाकार परिनामनिकौ नाश कीजिये ।
सत्यवादी कहै भैया हूजै नाहीं खेदखिन्न,
ज्ञेयसौ विरचि ज्ञान भिन्न मानि लीजिये ।
ज्ञायक सकति साधि अनुभो दशा अराधि
करमको त्यागिकै परम रस पीजिये ।२०।

अर्थ—अथ आठमी नास्तिक-वादी की वस्तु नाहीं
यह एकान्त नय है ताको प्रपच कहि दिखावै है—केई
बौद्धके भेद शून्यवादी ऐसे कहै है—ज्ञेय छतें ज्ञान उपजै
है । अरु ज्ञेयके विनाश भये ज्ञानको हू विनाश होइ ।
अहो प्रतिवादी । तुम कहते हो ज्ञान जीवमौ रूप है तो
ज्ञान के विनाश भये यातें जीवको कैसे होइ, तातें

जीवत्वव्यताम्नी, विरताके कारन इतने शास्वत जीव
 राखिया, निमित्त ज्ञानमें जो ज्ञेयाकार परिनाम उपजै
 ताही को नाश कीजे तो जीवमी धिरता होइ। अथ यासां
 मत्पयादी जैन कहै है। अहो भैया। ऐसै खेद ग्विन्न
 कइत आनुल व्यानुल होइये नाहीं। ज्ञेय सौ विरचिके
 उदासीन है के, ज्ञान वस्तु भिन्न ही मान लीज। या ज्ञान
 मी ज्ञायरु शक्ति है, तिस शक्ति को साधन करिके
 अनुभय दशा में, या ज्ञायरु को आराधिके, या आराधिय
 तें कर्मको त्यागिके परम रस पीजिये।

अथ नम नय, देहके नाश होत जीवमी नाश, यों कथन

सवैया ३१ सा।

कोऊ क्रूर कहै काया जीव दोऊ एक पिड,
 जब देह नसैगी तनहि जीव मरेंगो।
 यायाकोसौ छल किधो मायाकोसो परपच,
 कायामे समाइ फिर कायाको न धरेंगो ॥
 सुधी कहे देहसों अव्यापक सदीव जीव,
 समौ पाय परको ममत्त्व परिहरेंगो।

अर्थ—दशमी एकात नय दह उपजै जीव उपजै
 याकौ प्रपच कहै है—कोऊ दुष्ट बुद्धिकौ धरन हारो,
 हकीमत वारो ऐसै कहै है—पहलै जीव हतौ नहीं, यामे
 पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारभूतके मिलाप, सां देह उपज्यौ,
 यामे ज्ञान शक्ति अरु जीव हुआय उपज्यौ, अब जीवों देह
 धरतै है तौलौ देहधारी नाम धराई है। अब फेरि देह नसैग
 तन अलख पुरुष जातिरूपी है तौ जोति में समाइ जाइगौ
 अब सद्बुद्धी कहै है अहा भैया ! जीव अनादिकालक
 देहधारी है, इतने नयौ उपज्यौ नाहीं । अरु ए जीव कहे
 काल पाइके ज्ञानी होइगौ, तमतो देहादिक परवस्तु त्यागि
 कै अपनौ स्वरूप भजैगौ । ऐसै कर्म नसाडके परम पद
 पावैगौ ॥ २३ ॥

अथ एकादश नय आत्मा अचेतन नय यहु कथन । सबया
 कोऊ पक्षपाती जीव कहै ज्ञेयके अकार,
 परिनयौ ज्ञान तातै चेतना असत है ।
 ज्ञेयके नसत चेतना कौ नास ता कारन,
 आत्मा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है ॥

पडित कहत ज्ञान सहज अखडित है,
ज्ञेयको अकार धरे ज्ञेय सो विरत है ।

चेतनाके नाश होत सत्ताको विनास होइ,
यातें ज्ञान चेतना प्रवान जीवतत है ॥२४॥

अर्थ—अब ग्यारमों एकात्मनय आत्मा अचेतन याकी प्रपच कह है—कोऊ पक्षपाती कहतैं हटवादी नीव कह है, ज्ञान है मो ज्ञेयके आकार परिणयी होइ । अरु आकार पारनाम असत है । ताते चेतना हू असत है । अब असत पना को हतु कहै है—जा ज्ञेय को नाश होत छूत चेतना को नाश हाइ । जा सत वस्तु हाइ ताकी तौ विनाश रुवहुं न हाइ, तिस कारनतै चेतना असत भर । अरु चेतन असत भए तीनोंकाल विषै आत्मा अचेतन भयो, मेरे मत विषै । अब पडित स्याद्वादी कहै है । अहो भैया ! ज्ञान वस्तु सहज स्वभावे असडित है । अरु ज्ञेयकी आकार धरे तोह ज्ञेय मों विरत कहतै न्यारो है, जैसे आरसीमें भासे तोह आकार रूप आरसी न होइ ।

गण मानियै तो जीवकी

तो जीव वस्तुह्र असत होइ । याहीते जीव तत्व है, मो ज्ञान
चेतना प्रमाण ते ही मानिये ॥ २४ ॥

अथ—द्वादशम नय अ श प्रमाण सत्ता यद्गु ऋधन
सवैया ३१ सा

कोऊ महामूर्ख कहत एक पिंड माहि,
जहांलौ अचित्त चित्त अ ग लहलहे है ।
जोगरूप भोगरूप नानाकार ज्ञेयरूप,
जेते भेद करम के तेतैं जीव कहे है ॥
मतिमान कहै एक पिंड मांहि एक जीव,
ताहीके अन त भाव अ श फैलि रहै है ।
पुगलसौ भिन्न कर्म जोगसों अखिन्न सदा
उपजै विनसै थिरता स्वभाव गहै है ॥२५

अर्थ—अथ चाग्दमी एकांत नय अ श प्रमाण जीव
सत्ता याकौ प्रपच कहै है—कोऊ चौद्धमती महामूर्ख ऐसैं
कहै है, एक शरीर मांहि जहांलौ केई अचित्त अ ग कहतै
घट पटादिककै अचित्त विकल्प अथवा नर अमर तिर्यचादि
चित्त अ ग सों सचित्त विकल्प लहलहे है । योग्य परि

नामसौ योगरूप, भोग परिणाम सौ भोग्यस्य इत्थं ज्ञेयके
 नाना आकार रूप जिते कर्मक, क्रियाके नद इष्टं ई देवदा
 जीव के हैं, इतने जीव सत्ता अशु प्रकृष्ट न्द । अत्र नति-
 मान कहते बुद्धिवत स्यादगादी ऐसे कहे है—अयो भेषा ।
 एक पिंड मांदि एक ही जीव है । अत्र तिस्र जीव के ध्यान
 परिणाम करिके अनत भाव वामनरूप अशु प्रकृष्ट रहे है,
 ये जीव है सो पुद्गल सौ मित्र है । अत्र कर्म जोग सौ
 अस्मिन्न कहते निराकुल है । या ने नाव अशु अनत
 उपनै है अरु अनत विनये है, पं ज्ञाना विरता म्यरूप ही
 गहि रहौ है ॥ २५ ॥

अथ—त्रयोदशम नर वचन गुण जाव यद्गु कथन—
 सर्वथा ३१ वा

कोऊ एक दिनवादा कहे एक पिंड मांदि,
 एक जीव ज्यन्त एक पिनसत है ।
 जाही समय अतर नवीन उत्पत्त होए
 ताही समै प्रसन्न पुरातन वसतु है ।
 सरवागवादी कहे जैसे जल वस्तु

सोई जल विविध तर गनि लसतु है ।
 तैसे एक आत्म 'दरव गुण परजैसों',
 अनेक भयो पै एकरूप दरसतु है ॥२६॥

अथ—अब तरहमी एकात्म नय अन्नभंगुर यात्री,
 प्रपच रुद्धि आर्वादि है—काऊ अन्नभवादी ऐसे कहै है—
 एक पिंड मादि एक जीव उपजै है, एक जीव नहीं है,
 निम समय पिंड मादि एक जीव की उत्पत्ति होइ, तिस
 समय प्रथम पुरातन कहत पहिली जीव है सोई वसै है
 पीछे यह भिनसै है, असे अखंलावद्ध उपजै भिनसै है ।
 अब सर्वांगवादी जनमती ऐसे कहै है—अहो भैया ।
 जैसे ताल प्रमुख जलाशय विपै जल वस्तु एक है, सोई
 जल विविध तरगनि करिके लसतु है, विराजतु है । तैसे
 एक आत्म द्रव्य है सो गुण पर्याय सों अनेकरूप भयो है
 तोह एक रूप ही देखिये है ॥ २६ ॥

अथ—चतुदश नय अज्ञायक ज्ञान यह कथन ।
 सबैया ३१ सा

कोऊ बाल बुद्धि कहै ज्ञायक सकति जौलौ

तौलो ज्ञान अशुद्ध जगत मध्य जानिये ।
 ज्ञायक सकृति काल पाइ मिटि जाइ जत्र,
 तत्र अविरोध बोध विमल वखानिये ॥
 परम प्रवीन कहै ऐसी तो न वनै वात,
 जैसे विन परगास सूरज न मानिये ।
 तैसे विन ज्ञायक सकृति न कहावै ज्ञान,
 यहू तो न पक्ष परतक्ष परवानिये ॥२७॥

अर्थ—अर चौदमी एकांत नय ज्ञान अज्ञायक यात्री प्रपन्न कहि दिखावै है—जात्रे बालककी सी तुच्छ बुद्धि है, ऐसै कोऊ शून्यवादी तथागत कहै है—जौलो ज्ञायक शक्ति है तौला जगतमें ज्ञान अशुद्ध कहावै । यात्री यहू परमाथे है जो ज्ञायकपनो मो विकल्परूप है । अरु विकल्प तें ज्ञान अशुद्ध होइ । यात्रें निविकल्प ज्ञान शुद्ध है । जत्र ही भवितव्यताके पक्षमें अपनी समय प्रस्ताव पाइक ज्ञायक शक्ति है सो मिटि जाइ, तत्रही अविरोध रहतें विकल्प के विरोध सो रहित ऐसी बोध रहतै ज्ञान सो

साध्यसाधक द्वार



अथ—प्रतिज्ञा दोहरा

स्याद्वाद अधिकार यह, कह्यो अल्प विसतार
अमृतचंद्र मुनि अथ कहै, साधक साध्य द्वार

अथ—श्री आचार्य ऐसे कहे हैं यह फल स्याद्वाद
का अधिकार अल्प विस्तारसों ही क्यौ। अथ या पीठ
श्री अमृतचंद्र आचार्य नामों साधक द्वार कहै हैं ॥१॥

अथ—साध्य साधक स्वरूप कथन । मवया ३१ ।

जाई जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरलबु,

अभोगी अमूरतीक परदेशवत है ।

उत्पत्तिरूप नाशरूप अविचलरूप,

रतनत्रयादि गुण भेदसों अन त है ।

साई जीव दख प्रमान सदा एक रूप,

ऐसो शब्द निद्रचै मभाव विग्नत है ।

स्याद्वाद माहि साध पद अधिकार कह्यौ,

अब आगे कहिवैको साधक सिद्ध त है २

अर्थ—अब साध्य वस्तु अरु साधक वस्तुको स्वरूप
कहे है जो कोई जीव वस्तु है सो द्रव्यत अस्तित्व, प्रमेय
पन, अगुलघु पन, अभोगी पन, अमृति पन, प्रदश
त पन वने है । सो नास्तित्व, नही याते अस्तित्व पने
ज्ञान ग्रहिके योग्य यात प्रमेय पन, अपुद्गलीक पनात
अगुलघुपनो इत्यादिक धमवत है । उत्पत्तिरूप पर्याय
त विनारारूप पर्याय नय ते, अत्रिचलरूप ते, ज्ञान दशन
चारित्र ए रत्न त्रय कहिये इत्यादिक गुणके भेद सा
अन त पनौ लिया वने है । सोई जीव इत्य एक रूप ही
सदा प्रमाण है । सा एकरूप-पना अस्तित्व प्रमेयत्वादिक
धर्म करि आगे कहा ही है । शुद्ध निश्चय नयते याकी
ऐसौ स्वभाव दृष्टांत है सोई साध्य पद कह्यौ । इतने सा-
धवा लायक वस्तु सो स्याद्वाद अधिकार में कह्यौ । अब
आगे याके साधिवैकी सिद्धांत साधक है । २ ॥

। दाहरा ।

साध्य सुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महन्त ।

साधिक अविरत आदि बुध, छीनमोह परजत३

अर्थ—शुद्ध केवली-दशा, सो साध्य वस्तु कहिये ।
अथवा महत मिद्वपनौ, सो साध्य वस्तु है । चौथा अविरत
गुणस्थान प्रमुख चारमौ छीन मोह गुणस्थान पर्यन्त ए नी
गुणस्थान के धनी, बुध कहतें पडित ए सब साधक
कहिये ॥ ३ ॥

अथ—साधक अवस्था कथन । सबैया ३१ सा ।

जाकौ अथो अपूरव अनिवृत करनकौ,
भयो लाभ भई गुरुवचनकी वोहनी ।

जाके अन तानुवधी क्रोध मान माया लोभ,
अनादिमिथ्यात्व मिश्र समकित मोहनी ॥

सातौ परकिति खपी किवा उपशमी जाके,
जगी उरमाहि समकित कला सोहनी ।

सोई मोख साधक कहायौ ताकै सरवग,
प्रगटी सकति गुनथानक अरोहनी ॥४॥

अर्थ—अथ अवृतादि साधक की अवस्था कहै है—

जिन्हि जीवनही अधो कहता अध प्रवृत्त करनकौ, अरु
 अपूर्व करनकौ, अनिवृत्तकरनकौ लाभ भयौ । इतनेँ सम्यक्त
 प्राप्तिके ए तीन करण कारण हैं । अरु जिन्हिके गुरु वचन
 की मोहनी भई—इतनेँ गुरुउपदेश कौ लाभ भयौ । एन्हि
 भयतै जाकेँ अनंतानुबधी क्रोध १ अनन्तानुबधी मान २
 अनंतानुबधी माया ३ अनंतानुबधी लोभ ४ अनादिकी
 मिथ्यात माहनी, मिश्र मोहनी, सम्यक्त मोहनी ए
 सातों ही प्रकृति जाकेँ क्षय भई अथवा सातों में कुछ
 खपी, कुछ उपशमी ऐसैं जाकेँ हिये में सुहावनी समकित
 कला जागी सोई जीव मात्त की साधक रहतै साधनहारौ
 कहावो । ताकेँ सरव अ ग—इतनेँ वाद्य अभ्यतर अ गमें
 गुन धानक अरोहनी कहतै गुणस्थान चढवाकी शक्ति
 प्रगटी ॥ ४ ॥

सोरठा ।

जाको मुकति समीप, भई भवस्थिति घटगई ।

ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता वचन ५

अर्थ—जासौ भवत्व परिपाक तैं मुक्ति समीप भई,
 भवस्थिति घट गई है तिन्हि पुरुषकी मनसा सीप समान

भई । तहा सद्गुरु मय समान भयी । ताके वचनका मनसा
सीपमें भातीछ अमोलिक भयै ॥ ५ ॥

अथ—गुरुप्रशंसा । दोहरा ।

ज्यां वरपे वरपासमै, मेघ अखडित धार ।
त्या सद्गुरु वाणी खिरे, जगत जीवहितकार ॥ ६ ॥

अर्थ—अत्र सद्गुरुका मेघ उपमाकरिके कहै है जैसे
वर्षा कालमें मेघ होइ सो अखडित धारायें वर्षै । तैसें
सद्गुरु हाइ सो जगत-पामो जीवका, हितकारक अमृत-
वानी खिरे ॥ ६ ॥

अथ—उपदेश कथन । सर्वथा २३ सा ।

चेतनजी तुम जागि विलोकहु
लागिरहै कहा मायाके ताई ।
आए कहींसौं कहीं तुम जाओ,
माया रहैगी जहाई, तहाई ॥
माया तुम्हारी न जाति न पातिन,
वसकी वेलि न असकी भाई ।

दासी किये विन लातान मारत,

ऐसी अनीति न कीजे गु साई ॥ ७॥

अर्थ—अब सद्गुरुको उपदेश आजेपनी धर्मकथा कहे है—अहो जीव ! चेतन तुम माह निद्रा छडिबै जागी । अरु सत्य स्वरूप देखो । मायारूप सम्पदासा रुदा लागि रहे हो । पृथ्वी प्रमुख अटारह भाग दिशि तामे तुम कहीं सा आये हो अरु कहीं दिशि नो आओगे । अरु जिन्दि सों तुम राचि रह्यो हो, सो तौ माया जाल सम्पदा जहाकी तहा ही रहेगी । ये माया तुम्हारी जाति नाहीं, पात नाहीं । अरु ए माया तुम्हारी बश की बेल नाहीं । अरु तुम्हारे अश एरु देश की भाई नाहीं । ताँतै तुम्हारे अरमाया के सम्बन्ध तौ काऊ नाहीं । अर तुम अपनो कर जानौ हो । ताँतै ये कहावत माची करौ हो । दानी दिया रिना ही लातनि मारौ हो तौ याँतै उतपात हाइगो । ताँतै ह बडे पुरुष ! ऐसी अनीति न कीजे ॥ ७ ॥

। दाहरा ।

माया छाया एक हे , घटै वटै छिन

इन्हकी संगति जे लगे, तिन्हहि कहूँ सुख ना

अर्थ—माया अरु छाया एक सी है, चणमें वड़
चणमें घट है तातें इस माया की संगति सों जो ल
रहे है तिन्ह का कदा ही सुख हाव नाहीं ॥ ८ ॥

। सर्वथा २३ सा ।

लोगनि सों कछु नातौ न तेरौ न,

तो सों कछुड लोगनि कौ नातौ ।

एतौ रहै रमि स्वारथ के रस,

तू परमारथ के रस भातौ ॥

ये तनसों तनमे तनसें जड,

चेतन तू तिनसों नित हातौ ।

होतु सुखी अपनी वल फोरिकै,

तोरकै राग विरोध कौ तांतौ ॥ ९ ॥

अर्थ—अजु पुत्र कलत्रादिक अपने करि
मोती विडानै लोग ज्यों है, इन्हि लोगनिसें तेरौ कह
नाहीं । अरु इन्हि लोगनिसें तो सों कछु नातौ

येजु पुत्र कलत्रादिक लोग है सो ता अपने स्मारधके सरतें तो,सौ रमि रहे है । अहो चेतन ! तू तौ अपने चेतना रूप परमारथ रस में साच रहौ है । एजु लोग है सोतौ तन सौ तन्मय हो रहे है । इतनै तेरे शरीर सौ मोहित हैं । अरु शरीर ज्यों जड है अरु तू तौ चेतन है । ताँत तिन्ह जटतें तेरे सदा हांतौ रहतै भिन्न है । याही तँ अपनी पल फोरिकै सखी होउ । राग अरु द्वेष मोह कर्म कौ ताँतौ तोरिकै ॥ ६ ॥

सोरठा ।

जे दुरबुद्धी जीव, ते उत्तम पदवी चहैं ।

जे समरसीसदीव, तिन्हको कछून चाहिये ॥१०॥

अर्थ—जे जीव रागतें दुष्ट-बुद्धि है रहे हैं तेतौ इन्द्रादिक की ऊँची पदवी चाहैं हैं अरु जेसदाही समरस भावमें रहे है तिन्हको कछु ऊँच पदवीकी चाह होत नहीं ॥१०॥

सवैया ३१ सा ।

हांसीमें विपाद वसे विद्यामें विवाद वसे
गामें मरन गुरु-वर्तन में हीनता ।

शुचिमें गिलानि वसे प्रापति में हानि वसे,
 जयमें हारि सुन्दरदशामें छविछीनता ॥
 रोग वसे भोगमें स योग में वियोग वसे,
 प्रीतिमें अप्रीति वसे सेवा माहि दीनता ।
 और जग रीति जेती गर्भित असाता सेती,
 साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ११

अर्थ—हासी को भली सी जानिये है पै यामें विपाद वसे है । विद्याको भली सी जानिये है पै यामें विवाद भगड़ा है । काया भली सी जानिये है, पै यामें परन दोष है । गुरवाई बड़ाई भली सी जानिये है पै यामें कन्द हीनता है । पतिव्रताई भली सी जानिये है पै यामें आदिकें अत दुगुञ्जा (ग्लानि) उपजै है । प्राप्ति भली सी जानिये है पै याकें संग हानि लगी रहै है । जीतवो भली है पै संग हारिवो हू लाग्यो है । ज्वानी की सुन्दर दशा भली है पै अन्तमें छवि काति छवि छीन हो जाइ है, भोगको सुख भली है प यामें रोगकी उत्पत्ति है । इष्टको सयोग भली सी है पै याकें संग वियोग तैयार है, प्रेम प्रीति भली सी है पै

याके सग अहित हू उपजै है, राज सेवा भली सी जानिये है पै यामें दीनपना बस है । और हू जगत रीति भली सी जानिये है सो तो सब अन्तर भूत असाता सहित है, तातें अकेली उदासीनता माना की महेली है । यातें समस्त भाव श्रेष्ठ हैं ॥ ११ ॥

दोहरा ।

जिहि उ तग चढि फिर पतन, सो उतग नहिं कूप ।
जिहि सुखमें फिर दुखवसे, सो सुख ही दुखरूप १२

अर्थ—जिहि उतग ठौर चढिके फेरि नीचो परिगौ होइ तौ सो उतग ठौर न कहावै, वह ठौर कुआ ज्यो कहावै । जिहि सुखमें फेरि दुख आनि वसे सो तौ सुख ही दुख रूप कहावै ॥ १२ ॥

दोहरा ।

जो विलसै सुख सम्पदा गए ताहि दुख होइ
जो धरती बहु तृणवती, जरे अगनि सों सोइ १३

अर्थ—जा सुख सम्पदा विलसै है तौ वाकै गये तोहि दुख होइ है दृष्टात जो तृणवत धरती है सो तौ अग्नि सों

जरै अर तृण विना काको जालै ॥ १३ ॥

। दोहरा ।

सवद माहि सदगुरु कहैं प्रगटरूप जिन धर्म ।
सुनत विचच्छन, सरदहै मूढ न जाने मर्म १४

अर्थ—सद् गुरु कहै सो जिन धर्म । वद
कहै । इतने वचन सों बखानै, जेवा जिन धर्मको सुनत विच
च्छन होइ सो तौ सरदहै अर मूर्ख होइ, सो तौ याको
मर्म न जाने ॥ १४ ॥

अव — उपदेश रचि क्यन । सर्वेया ३१ सा ।

जैसे काहू नगरकेवासी द्वै पुरुष भूले,
तामें एक नर सुष्ट एक दुष्टउरको ।

दोउ फिरैं पुरके समीप परे दोनु बट,

काहू और पथिक सो पूछैं पथ पुरको ॥

सो तौ कहै तुम्हारी नगरहै तुम्हारे ढिग,

मारग दिखावै समुभावै खोज पुरको ॥

एते पर सुष्ट पहिचानैं पै न मानैं दुष्ट,

॥ हिरदै प्रवान तैसे उपदेश गुरुकौ ॥१५॥

‘अर्थ—अथ किन्हीं कों उपदेश की रचि है अरु किन्हींको रचि नाही याकी स्वरूप कहै है । जैसे काहु नगर के वासी दोय पुरुष नगरसों निकलके दिशा भूलगए तिन्हि दोनों पुरुषन में एक तो सुष्ट कहतैं हियकौ सरलसुभाव अरु एक हिए कौ दुष्ट होतो, वे दोनु पुरके समीप फिरने लगे । दोनों मारगके परे रहें थके, काहु और बटाऊ सों नगरकी मारग पूछने लागे । तत्र सो तौ कहने लागौ अहो लोगो ! तुम्हारी नगर तौ तुम्हारे ढिग ही है वा दोनु कों मारग दिखावै । अरु पशून के खोजते समुझावै । एतेपरि सरल हीयेको है सो तौ साचि पहिचानें, पै दुष्ट हियेको है सो न मानें । तैसे गुरु उपदेश है सो तौ पुरुष के हृदय प्रमाणतैं होइ ॥ १५ ॥

सवैया ३१ सा ।

जैसे काहु जगलमें पावसकौ समै पाय,

अपने सुभाव महामेघ वरपतु है ।

आमल कपाय कटुतीखन मधुर स्वार

डू घा अगम अगाध है, वचन अगोचर सोइ १६

अर्थ—जाकी उत्कृष्ट दशा बन रही है, तामें कोऊ कलकरूप कर्म न पाइयै । ऐसैं कोऊ अगम अगाध पद, इतने सिद्धि पद । अरु जाकौ सरूप वचन योगते कह्यो न जाय, ताते वचनअगोचर है सोई डू घा कहिये ॥१६॥

अथ—चू घा कथन । दोहरा ।

जो उदास हो जगत सों, गहै परम-रस प्रेम ।

सो चू घा गुरुके वचन, चू घे वालक जेम २०

अर्थ—अब चू घाकौ लक्षण कहै है- जाईजीम जगत सों उदास हूरह्यौ है अरु जो परम दशा को जो रस है ताकौ प्रेम सवाद कों ग्रहै है, इतने उत्कृष्ट दशा भावे है, सो तौ गुरुके वचनकों ज्यों चू घे है अरु पुष्ट होय है सोई चू घा कहियै ॥ २० ॥

अथ सू घा यथा । दोहरा ।

जो सुवचन रुचिसौ सुने, हिये दुष्टता नाहि ।

परमारथ समुझै नहीं, सो सू घा जगमाहि २१

अर्थ—अब सू घाकौ लक्षण, कहै हैं— जो रुचि

करिके आगम के अ गके सुवचन का सुनै है, अर हिये में
दुष्टता नाहीं, पै वह सूक्ष्मतत्व को न समुझै सोई जगतमें
सू घा कहिये ॥ २१ ॥

अथ ऊघा । दोहरा ।

जाको विकथा हित लगे, आगम अ ग अनिष्ट
सो ऊ घा विषयी विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥२२॥

अर्थ—अब ऊघाकौ लक्षण कहै हैं—जाको विकथा
वचन हितकारी लगे, आगम अनिष्ट लाग है । सो तौ
विकल विषयी जीव ऊ घा कहिये, वह दोषवत, रोषवत
पापकर्म ही रहै ॥ २२ ॥

अथ घूघा दोहरा

जाके वचन श्रवण नहि,

नहिं मन सुरति विराम ।

जडतासों जडवत भयौ

घूघा ताको नाम ॥ २३ ॥

अर्थ—अब घूघाकौ लक्षण कहै है—जाके वचन
नाहीं शतनै एकेन्द्रिय है अरु जाके श्रवण नाहीं,

दायक है, पापके मूल है दुर्गति के भाई हैं इतने नरक
तिर्यच गतिके सहाई है ॥ २७ ॥

अथ । दोहरा ।

दरवित ये सातौ विसन, दुराचार दुखधाम ।
भावित अतर कल्पना, मृषा मोह परिणाम २८

अर्थ—एजु क्रियारूप सातौ व्यसन कहे सोतौ दरवित
कहते द्रव्यरूप हैं । ए दुष्ट आचाररूप दुखकी धाम कहते
घर हैं । अरु हायेके अ तर मृषा कहते भ्रूठी मोह परिणाम
की जो कल्पना कहते विचार, ध्यावना होतु है सो भावै,
भाष व्यसन कहियै ॥ २८ ॥

अथ भावित व्यसथा कवन । सर्वैया ।

अशुभ हारि शुभ जीति यह दूत कर्म ,
देहमें भगनताई यहै मास भखनौ ।
मोहकी गहलसों अजान यहै सुरापान,
कुमतिकी रीति गनिकाकौ रस चखिवौ ॥
निरदइ हो प्रानघात करिवौ यहै सिकार,
परनारीसग परबुद्धिकौ परखिवौ ।

प्यारसों पराई मौज गहवेकी चाह चोरी,

“ एई सातों विमन विडोरें ब्रह्म लखिवोर २६

अर्थ—अथ भावित मात व्यमनकी व्यवस्था रुई है—
 अशुभ कर्मके उदयमें द्वार मानिये है अथ शुभ कर्मके उदय
 में जीत मानिये है सो ती घूत कर्म रुदते जूया खेलियो है १।
 देह परिमानता हीर है सो ताँ मासमचण जानियो २। मोह
 कर्ममाँ मूछित है रहो नाँ अज्ञान है रहो सोई सुरापान
 व्यसन है ३। कुतुझिकी रीति चालियो सो तो गनिका कहिये
 मरपा ताके रसरो चखयो है ४। निर्दय परिणाम राखिके
 प्राण-घात करियो सो ही सिंकार खेलयो है ५। पररूपबो
 पुद्गलादिक ताके बुद्धकोपरिखयो सोतो परनारीसेना व्यसन
 है ६। पराई साँज कहतें सामग्री ताँ पर प्यार प्रीति
 राखिके गहिवेकी चाह, राखै सोई चोरी ७ मई। एई भावित
 सात व्यसन विडारे ने ब्रह्म लखयो जाय ॥ २६ ॥

अथ—साधक व्यवस्था। दोहरा।

त्रिसन भाव जागै नहीं, पौरस यगम अपार।

। किए प्रगट घट सिंधु मथि, चौदह रतन

अर्थ—अत्र मोक्ष साधक की व्यवस्था कही है—
जाक चित्त में व्यसन भाव पाइये नहीं अरु अगम अपार
पुरुषार्थ पाइयै, घट पिंड रूप सिंध कहते समुद्र मथिकै
उदार कहते अमोलिक ए चौदह रतन प्रगट कीने ॥ ३० ॥

अर्थ—चौदह रतन कौ वर्नन । सर्वैया ३१ ।

लक्ष्मी सुबुद्धि अनुभूति कौस्तुभ मणि,
वैराग्य कल्पवृक्ष श ख सुवचन है ।
ऐरावत उद्यम प्रतीति रभा उदै त्रिप,
कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है ॥
ध्याम चाप प्रेम रीत मदिरा विवेक वैद्य,
शुद्ध भाव चन्द्रमा तुरगरूप मन है ।
चौदह रतन ये प्रगट होइ जहा तहा,
ज्ञानके उद्यात घट सिंधु को मथन है ३

अर्थ—अत्र भावित चौदह रतन को वर्नन करै है—
सुबुद्धि उपजी सो लक्ष्मी उपजी १ । आत्माकौ अनुभव
उपज्यौ सो तौ कौस्तुभ मणि उपजी २। वैराग्य उपज्यौ सो

कल्पवृक्ष उभयो ३ । भाषा समिति उपजी सो शख रत्न
 उपज्यो ४ । उद्यम उपज्यो सौ ऐरावत हाथी उपज्यो ५ ।
 प्रतीति उपजी सो रभा उपजी ६ । कर्मकौ उदयसौ तौ पिप
 उपज्यो ७ । कर्म निर्जरा होइसो कामधेनु उपजी ८ । आनद
 उपज्यो सो मुधा कहतै अमृत धन उपज्यो ९ । ग्यान उपज्यो
 सो चाप कहतै सार ग धनुष उपज्यो १० । प्रेम रीति कहतै
 लप उपजी सौ मदिरा उपजी ११ । निपेक उपज्यो मो धन्य-
 न्तरि वैद्य उपज्यो १२ । शुद्धभाष उपज्यो सो चन्द्रमा उपज्यो
 १३ । मनशुद्ध भयो सो सप्तमुखी घोड़ा उपज्यो १४ । ए
 चौदह रतन तहां प्रगट होतु हैं जहां ज्ञान के उद्योत भए ते
 अपने घट रूप समुद्र को मथन होतु है ॥ ३१ ॥

अर्थ—दोहरा ।

किंए अवस्था में प्रगट, चौदह रतन, रसाल ।
 कछु त्यागे कछु सग्रहे, विधि, निपेधकी चाल ॥

अर्थ—साधक की अवस्था में ए चौदह रतन रसाल
 प्रगट कीने, ए चौदह रतन में विधि निपेधकी चालि लगे,
 इतने हेय उपादेयकी चालिमें कछु त्याग है, कछु सग्रहे ३२

रुक्मवृक्ष ऊर्ज्यौ ३ । भाषा समिति उपजी सो शख रत्न
 उपज्यौ ४ । उद्यम उपज्यौ सौ ऐरावत हाथी उपज्यौ ५ ।
 प्रतीति उपजी सो रभा उपजी ६ । कर्मकौ उदयसौ तौ निप
 उपज्यौ ७ । कर्म निर्जरा होइमो कामधेनु उपजी ८ । आनद
 उपज्यौ सो मुधा रुहत अमृत धन उपज्यौ ९ । ग्यान उपज्यौ
 सो चाप कहतै सार ग धनुष उपज्यौ १० । प्रेम रीति कहतै
 लय उपजी सौ मदिरा उपजी ११ । प्रियेक उपज्यौमो धन्व-
 न्तरि बंध उपज्यौ १२ । शुद्धमात्र उपज्यौ सो चन्द्रमा उपज्यौ
 १३ । मनशुद्ध भयो सो सप्तमुखी घोड़ा उपज्यौ १४ । ए
 चौदह रतन तहा प्रगट होतु हैं जहा ज्ञान के उद्योत भए त
 अपने घट रूप समुद्र को मथन होतु है ॥ ३१ ॥

अथ—दोहरा ।

किए अवस्था में प्रगट, चौदह रतन रसाल ।

कछु त्यागे कछु सग्रहे, विधि-निषेधकी चाल ॥

अर्थ—साधक की अवस्था में ए चौदह रतन रसाल
 प्रगट कीने, ए चौदह रतन में विधि-निषेधकी चालि लगे,
 इतने हेय उपादेयकी चालिमें कछु त्यागै है, कछु

अथ—आठ रत्न हेय, षट् उपादेय यहु कथन—
रमा श स विप धनु सुरा, वैद्य धेनु हय हेय ।
मणि शख गज कल्पतरु, सुधा सोम आदेय ॥

अर्थ—रमा कहतैं लक्ष्मी सो ती सुनुद्धि १, सुमचन
शख २, उदय विप ३, ध्यान धनुष ४, प्रेमप्रीति मदिरा ५
विवेक घंघ ६, निर्जरा कामधेनु ७, मन घोड़ा ८ एतौ
आठ हेय हैं अस्थिर हैं तातैं छोड़िवा योग्य हैं, अनुभव
मणि १, प्रतीतिर भा २, उद्यम हाथी ३, वैराग्य कल्पवृक्ष
आनन्द सुधा ५, शुद्ध भाव चन्द्रमा ६ ए छह रत्न
उपादेय कहतैं ग्रहिवा योग्य है ॥ ३३ ॥

दोहरा

इह विधि जो परभावविप, वमै रमे निजरूप ।
सो साधक शिव पथ कौ, चिरवेदक चिद्रूप ३४

अर्थ—इहि भांति सों पररूप जो कर्मादिक भाव हैं
सोई विप भयौ ताकौ जो वमै है इतनै त्यागे है अरु अपने
स्वरूप में रमै है, सोई पुरुष शिव पथ को साधक जानिये
ज्ञान भाव को जाननहार और ज्ञान स्वरूपी साधक ॥३४

अथ—साधक व्यवस्था कथन कृपित्त छन्द ।
 ज्ञान दृष्टि जिन्ह के घट अन्तर,
 निरखे द्रव्य सुगुण परजाय ।
 जिन्ह के सहज रूप दिन दिन प्रति,
 स्याद्वाद साधन अधिकाय ॥
 जे केवलि-प्रणीत मार्ग मुख,
 चित्त चरण राखे ठहराय ।
 ते प्रवीण करि क्षीण मोहमल,
 अविचल होइ परम पद पाय ॥३५॥

अर्थ—मोक्ष पद साधक की अवस्था कहै है—जिन्हि
 के घट भीतरि ज्ञान की दृष्टि जागी ताते द्रव्य को देखे
 जानै, ता परि गुण जाने, अरु गुणपर्याय जानै, अरु जिन्हि
 के सहज रूप ही इतने भव्यस्व परिपाक तैं महजें ही दिन
 दिनके निरै स्याद्वाद की साधन अधिक होइ रह्यो है । अरु
 जो केवली के कहे मार्ग के सन्मुख हुइ रहे, याही चित्त
 राखै अरु याही मार्ग निरै चरन ठहराय राखै । तेई
 उन को क्षीण करियै तब परमपद

पद सो पाइके अचिचल होहि ॥ ३५ ॥

अथ -सम्यग्दृष्टि व्यवस्था । सर्वैया ३१ सा ।

चाकसौ फिरत जाको ससार निकट आयो,
 पायो जिन्हें सम्यक मिथ्यात्व नाश करिकैं ।
 निरद्वंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिन्हें,
 कीनी मोक्ष कारण अवस्था ध्यान धरिकैं ॥
 सोही शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयौ,
 गयो ताकौ करम भरम रोग गरिकैं ।
 मिथ्यामति अपनो स्वरूप न पिछाने तातें
 डोले जग जालमें अनंत काल मरिके ॥३६॥

अर्थ—अथ सम्यक् दृष्टि की व्यवस्था अरु मिथ्या-
 दृष्टि की व्यवस्था कहै है—जैसे रात्रिसमय चक्रों फिर-
 तहा रहै तमे फिरते जाको ससारको अत निकटही आयो ।
 अरु जिन्हें सम्यक्त्व पायो मिथ्यात्वको नाश करिकैं निरद्वंद
 कहतै रागद्वेषादिक रहित ऐसी मनसा रूप भली भूमिका
 जिन्हें साधि लीन्ही अरु ध्यान धरिकैं अपनी अवस्था मोक्ष

पद क कारण रूप कीन्ही सोई मम्यगृष्टी शुद्ध अनुभव कौ
 अभ्यासी भयौ । जेमे कर्मरोग गलिके अग्निनाशी कहतें
 पिनाश रहित भयौ जन्म मरण ते टर्यौ सिद्ध भयो । ऐमे
 मम्यगृष्टि पाये बिना मिथ्यामती अपनौस्वरूप पिछानेनाहीं
 ताते अनतफाल लो जगत जानमें डोले ॥ ३६ ॥

अथ—अनुभवी प्रिलास । सर्वथा ३१ सा ।

जे जीव दरव रूप तथा परयाय रूप,
 दोउ नै प्रमाण वस्तु शुद्धता गहत है ।
 जे अशुद्ध भावनिके त्यागी भये सरवथा,
 विपैसों विमुख व्हे विरागता वहत है ॥
 जे जे ग्राह्य भाव त्याज्य भावदोउ भावनिकों,
 अनुभौ अभ्यासविपे एकता करत है ।
 तेई ज्ञान क्रिया के आराधक सहज मोक्ष
 मारग के साधक अवाधक महत है ३७

अर्थ—अब जिन्हि आत्माकौ अनुभव पायौ हे
 निन्दास कहै है, जे केई जीव दरवरूप कहतें

परजाय रूप कहतै पर्यायार्थिक नय ए दोनौ नय प्रमान करिकै वस्तुकी शुद्धताको ग्रहै ई जे रागद्वेष मोह सों आत्मा म अशुद्ध भाव हुते ताके सर्वथा त्यागी भये याही तै ५ च इन्द्रीनिके विषय ते विमुख हू के विरागता बहने लागै । अरु जे जे चौदह रतन में ६ भाग ग्राह्य कहतै ग्राहिवायोग्य हैं । अरु ८ भाग त्याग योग्य हैं—इतनै ८ हेय हैं, ६ उपादेय ई सो अनुभव के अम्यामरिषे दुहों भागिन की एकता जो द्रव्य ही में दृष्टि रही, पे पर्यायदृष्टि न रही ऐसे एकता कहति है । तेई जीव ज्ञान क्रिया मोक्षकौकारन कह्यो है । ताके आराधक भये अरु महन रूप में मोक्ष मार्ग के साधक भये । फेरि याके कर्म बाधा न होइ तात अवाधक भये, महित भए पूजित भए ॥ ३७ ॥

अथ—ज्ञान क्रिया एकता कथन । दोहरा ।

विनसि अनादि अशुद्धता, होय शुद्धता पोख ।
ता परिणतिकों बुध कहैं, ज्ञानक्रिया सो मोख ।

अथ—अब कोऊ ज्ञान क्रिया को भिन्न भाव मानै ई सो याकी एकता कहि दिखावे है—अनादि कालकी जो अशुद्धता है सो विनाश पाइके तदा शुद्धता को पोख होइ है । य

कछु आत्माही परनति है मोई ज्ञानक्रिया कहानी ताको
 पुथ कहते पडित ऐसे रुई 'ज्ञान क्रिया सों मोच होइ' ।
 इहा शब्द नयते ज्ञानक्रिया की दुनिधा लखावै है ।

दोहरा ।

जगी शुद्ध सम्यक कला, वगी मोक्षमग जोय ।
 वहे कर्म चूरण करे, क्रम क्रम पूरण होय ॥३६॥

अर्थ—जाके शुद्ध सम्यक की कला जागी अरु जाई
 कला मोक्ष के मुख कौ जाइ वागी, वह पूरा कर्म को
 चूर्ण करिकै क्रम क्रम पूर्ण होय ॥ ३६ ॥

अर्थ—ज्ञान द्रव्य व्यवस्थापना । दोहरा ।

जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम ।
 जैसे जो दीपक धरे, सो उजियारोधाम ॥४०॥

अर्थ—अत्र गुण गुणीतौ अभेदकरिके ज्ञान गुण को
 द्रव्य थापै है—जाके घट में असी दशा हुई रही है तिहि
 पुरुष कौ साधक नाम होइ । जैसे दीपक कौ उजियारो
 भए धाम कहते घर हू उजियारो होइ, तैसे ज्ञान क्रिया तौ
 मोक्ष साधक है पै ज्ञानक्रिया धरत, पुरुष हू साधक होइ ४०

अथ ज्ञान फल वर्णन । मवैया ३१ सा ।

जाके घट अंतर मिथ्यात अन्धकार गयो,
 भयो परगास शुद्ध समकित भान कौ ।
 जाकी माह निद्रा घटी ममता पलक फटी,
 जान्यो जिनि मरम अवाची भगवानकौ ॥
 जाको ज्ञान तेज वग्यो उद्दिम उदार जग्या,
 लग्यो सुख पोख समरस सुधा पान कौ ।
 ताही सुविचच्छन कौ ससार निकट आयौ,
 पायो तिनि मारग सुगम निरवानकौ ४१

अर्थ— अथ ज्ञानकौ फल कहै है—जाके घट भीतरि अनादि कालकौ मिथ्यात अन्धकार हुतो सो गयो । अरु शुद्ध समकित रूप सूर्यकौ प्रकाश भयो । रागद्वेष रूप मोह निद्रा जाकी घट गई । ममता रूप पलक लगी थी मोऊ फटि गई, ताते जिनि अवाची भगवान कौ इतने मिद्ध स्वरूप कौ मर्म पायो । जाकौ ज्ञान कौ तेज वग्यो सो प्रकाश भयो, प्रधान उद्यम जाग्यो । अरु उपशम रूप अमृत पान कौ सुख पोख लग्यो तिन्हि सुविचच्छन ।

पुरुष की ससार निरुद्ध आयौ तिन्दि तो सुगम रात में
निर्वाण कहत मुक्ति कौ मारग पायौ ॥ ४१ ॥

मवैया ३१ मा

जाके हिरदे में स्यादवाद साधना करत,
'शुद्ध आत्मा कौ अनुभो प्रगट भयो है ।
जाकौ सकल्प विकल्प कौ विकार मिटि,
सदा काल एकीभाव रस परिनयौ है ॥
जातैं बध विधि परिहार मोस अ गीकार,
ऐमो सुविचार पक्ष सोऊ छांडि दयो है ।
जाकी ज्ञान महिमा उद्योत दिन दिन प्रति,
सोई भवसागर उलघि पार गयो है ॥४२॥

अर्थ—जाके हिये में स्याद्वाद स्वरूप साधना होते
शुद्ध आत्मा कौ अनुभव प्रगट भयो है । अरु जाके सरूप
विरूप कौ विकार बहुभातिको हूतौ सो मिटिक सदा काल
विषे एक चेतना रसरूप जो एकीभाव रस तिनपनै
परिनयौ तिन्दि परिमनित्त बध विधि कौ परिहार औ

अथ ज्ञान फल वर्णन । सर्वैया ३१ सा ।

जाके घट अतर मिथ्यात अन्धकार गयो,
 भयो परगासं शुद्ध समकित भान कौ ।
 जाकी मोह निद्रा घटी ममता पलक फटी,
 जान्यो जिनि मरम अवाची भगवानकौ॥
 जाको ज्ञान तेज वग्यो उद्दिम उदार जग्या,
 लग्यो सुख पोख समरस सुधा पान कौ ।
 ताही सुविचच्छन कौ ससार निकट आयो,
 पायो तिनि मारग सुगम निरवानकौ ४१

अर्थ— अथ ज्ञानकौ फल कहै है—जाके घट भीतरि अनादि कालकौ मिथ्यात अधकार हुतौ सो गयो । अरु शुद्ध समकित रूप सूर्य कौ प्रकाश भयो । रागद्वेष रूप मोह निद्रा जाकी घट गई । ममता रूप पलक लगी धो मोरु फटि गई, तातें जिनि अवाची भगवान कौ इतने मिद्व स्वरूप कौ मर्म पायो । जाकौ ज्ञान कौ तेज वग्यौ सो प्रकाश भयो, प्रधान उद्यम जाग्यो । अरु उपशम रूप अमृत पान कौ सुख पोख लग्यो तिन्हि सुविचच्छन

पुरुष कौ समार निकट आयौ तिन्हि तौ सुगम वात में
निर्वाण रहतै मुक्ति की मारग पायौ ॥ ४१ ॥

सवैया ३१ सा

जाके हिरदे में स्याद्वाद साधना करत,
'शुद्ध आत्मा कौ अनुभौ प्रगट भयो है ।
जाकौ सकल्प विकल्प कौ विकार मिटि,
सदा काल एकीभाव रस परिनयौ है ॥
जातैं वध विधि परिहार मोस अ गीकार,
ऐसो सुविचार पक्ष सोऊ छांडि दयो है ।
जाकी ज्ञान महिमा उद्योत दिन दिन प्रति,
सोई भवसागर उलघि पार गयो है ॥४२॥

अर्थ—जाके हिये में स्याद्वाद स्वरूप साधना होते
शुद्ध आत्मा कौ अनुभव प्रगट भयो है । अरु जाके सकल्प
विकल्प कौ विकार बहुभातिको हुतो सो मिटिक मदा काल
विषे एऊ चेतना रसरूप जो एकीभाव रस तिनपनै
परिनयौ जिन्हि परिमनित्त वधु विधि कौ परिहार औ

सवर धरती अरु निस्पृह दशांत मोच का ज्यों श्रंगीकार
 ताके विचार को पच धारी है सोऊ पच छांदि दीन्हों ।
 जाके ज्ञानकी महिमा दिन दिन प्रति उद्योत भई । सोई जीव
 भव समुद्र उतरिके पार पहुचौ ॥ ४२ ॥

अर्थ—अनुभव व्यवस्था कवन । सर्वैया ३१ सा ।

अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप,
 अधिर इत्यादि नाना रूप जीव कहिये ।
 दीसे एक नय की प्रतिपत्तिनी अपर दूजी,
 नैको न, दिसाय वाद विवाद में रहिये ॥
 थिरता न होय विकल्प की तर गनि में,
 चचलता बढे अनुभौ दशा न लहिये ।
 ताते जीव अचल अवाधित अखड एक,
 ऐसो पद साधिके समाधिसुर गहिये ४३

अर्थ—अब अनुभव की व्यवस्था सोई साध्य व्यवस्था
 सोई उपादेय यह कहै है—किन ही नयतें अस्ति-रूप है
 किन ही नयतें नास्तिरूप है, किन ही नयत अनेक, किन

ही तँ एक, किनही नयतँ थिर रूप, किनहीनयत अथिर रूप
 इत्यादिक नाना प्रकारके स्वरूप सी जीव कहिये । इहा
 जो कोई एक नय स्वरूप साभे है, तहाँ वा नय की प्रति-
 पक्षिणी पक्षिणी कहतँ उलटी और दूसरी नय दीसै है सो
 तो वा नय ते निपरीतपनी साभे-ताँतँ जो एकान्त नयरूप
 ग्रहिये तो तापरि दूसरी नय नौ न दिखायै, बाद विवाद
 हुए जाइ, ताँतँ नय के भङ्गोरनितँ निरूप के तरंगनितँ
 थिरता न होइ अरु च चल ताई पढै, ताँतँ अनुभव दशा
 प्रदी न जाइ ताँतँ नय-पव छीदिके अनुभव अभ्यास के
 कारण जीवद्रव्य अचल है, अनाधित है, अखड है, एक है
 ऐसे स्वरूपको स्थानक साधिके समाधि मुख गहनी ।४३।

अथ—द्रव्य क्षेत्र कालमात्र कथन । सर्वथा ३१ सा ।

जैसे एक पाको अम्रफल ताके चार अ श,
 रस जाली गुठिली छीलक जब भानिये ।
 सोतो न वने पै एसो वने जैसे वहे फल,
 रूप रस गंध फास अखड प्रवानिये ॥
 तैसे एक जीव का दरव क्षेत्र काल भाव,

अ श भेद करि भिन्न भिन्न न वखानिये ।

द्रव्यरूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप,

चारो रूप अखड अखड सत्ता मानिये ४४

अर्थ—अत्र द्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकै आत्मा कौ अखडपनौ कहै है—शिष्य कहै है स्वामी द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप, पै वस्तु के चार अ श तुम्ह कहौ हौ तहां ऐसौ दृष्टात दीजिये । जैसे एक आम फल है ताके ४ अ श जैसे रस जाली गुठली अरु छीलरु ए ४ अ श है । तैसे वस्तुके द्रव्य क्षेत्र काल भाव ए अ श होंकै नाही ? अब गुरु कहै है अहो शिष्य ! इहा तू अ श कहते खड समुभयो तात ए दृष्टात दीनो सो यो तो न बर्न । जो इहां अखडपनै ४ अ श न्यावणै ताको दृष्टात ए है जाउ फल है तामे रूप अखडपनै, रस अखडपनै, गंध अखडपनै, स्पर्श अखडपनै प्रमान कीनिए । ४ अ श होंइ । तैमे एरु जीव कौ द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप अ श भेद करिकै रस जाली गुठली छीलरु ज्यो भिन्न २ खड २ वखानिये नहीं । यहा जो साध्यरूप आत्म सत्ता है सो द्रव्य अखडपनै आत्म-द्रव्यरूप है, क्षेत्र अखडपनै अस्तरयात । प्रदेशावगाहपनै,

कालें अखडपनै-त्रिकालवर्तीपनै, भावें अखड पनै, ज्ञायक-
भावपनै, ऐमे जीमै ४ अ श अखड मानिये ॥ ४४ ॥

अथ—ज्ञान ज्ञेय विशेष ऋचन । सर्वैया ३१ सा ।

कोऊ ज्ञानवत् कहै ज्ञान तो हमारो रूप,

ज्ञेय पट द्रव्य सो हमारो रूप नाही है ।

एक ने प्रमान ऐसे दूजी अब कहों जैसे ,

सरस्वती अक्षर अर्थ एक ठही है ॥

तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम,

ज्ञेय रूप सकति अनत मुक्त माही है ।

ता कारन वचन के भेद भेद कहौ कोऊ,

ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता माही है ॥

अर्थ—अब साध्य पद में ज्ञान ज्ञेय को विशेषपनो
अरु अविशेषपनो सो कहै है कोऊ ज्ञान त प्राणी अपने

अनुभव प्रमान तँ अँ सो कहै जो ज्ञान है सो तो हमारो

रूप है अरु जो पट-द्रव्य ज्ञेय है सो तो हमारो रूप नाही

याँ ज्ञान अरु ज्ञेय विशेषपना में है । गुरु कहै है—एक

याही नय प्रमान है अब दूरी नय तँ जैसे अविशेषपनो-

अ श भेद करि भिन्न भिन्न न वसानिये ।

द्रव्यरूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप,

चारों रूप अखण्ड सत्ता मानिये ४४

अर्थ—अत्र द्रव्य क्षेत्र काल भाव करिकै आत्मा को अखण्डपनो कहै है—शिष्य कहै है स्वामी द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप, पै वस्तु के चार अ श तुम्ह कहौ हो तहां ऐसी दृष्टात दीजिये । जैसे एक आम फल है ताको ४ अ श जैसे रम जाली गुठली अरु छीलक ए ४ अ ग है । तैसे वस्तुके द्रव्य क्षेत्र काल भाव ए अ श होइ कै नांही? अब गुरु कहै है अहो शिष्य ! इहा तू अ श कहते खड समुभयो तात ए दृष्टात दीनो सो यो तौ न ननै । जो इहां अखण्डपनै ४ अ श न्यायण ताको दृष्टात ए है जोउ फल है तामें रूप अखण्डपनै, रस अखण्डपनै, गंध अखण्डपनै, स्पर्श अखण्डपनै प्रमात कीनिए । ४ अ श होइ । तैने एरु जीव को द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप अ श भेद करिकै रस जाली गुठली छीलक ज्यो भिन्न २ खड २ नवानिये नहीं । यहा जो साध्यरूप आत्म सत्ता है सो द्रव्य अखण्डपनै आत्म-द्रव्यरूप है, क्षेत्र अखण्डपनै असख्यात, प्रदेशावगाहपनै,

झालें अखडपनै—प्रिकालवर्तीपने, भावें अखड पनै, ज्ञायक-
भावपनै, ऐसे जीपनै ४ अ श अखड मानिये ॥ ४४ ॥

अथ—ज्ञान ज्ञेय विशेष कथन । सर्वथा ३१ सा ।

कोऊ ज्ञानगत कहै ज्ञान तौ हमारो रूप,

ज्ञेय पट द्रव्य सो हमारो रूप नाही हे ।

एक ने प्रमान ऐसे दूजी अब कहों जैसे ,

सरस्वती अक्षर अरथ एक ठाही हे ॥

तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम,

ज्ञेय रूप सकति अनत मुक्त माही हे ।

ता कारन वचन के भेद भेद कहौ कोऊ,

ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयकौ पिलास सत्ता माही हे ॥

अर्थ—अब साध्य पद में ज्ञान ज्ञेय कौ विशेषपनौं
अरु अविशेषपनौं सो कहै हे कोऊ ज्ञान त प्राणी अपने
अनुभव प्रमान तें अ सो कहै जो ज्ञान हे सो तौ हमारो
रूप हे अरु जो पट-द्रव्य ज्ञेय हे सो तौ हमारो रूप नाही
यातें ज्ञान अरु ज्ञेय विशेषपना में हे । गुरु कहै हे—एक
याही नय प्रमान हे अब दूही नय तें जैसे

ठहरै है सो कही हौ । जैसे सरस्वती कहतैं विद्यारूप अर्थ है तैसे अक्षर कहते ही विद्या रूप अर्थ एक ठार है । तैसे ज्ञाता सो तो मेरो नाम भया अर जो ज्ञान है सो चेतना को विराम कहते प्रसर है । अर जो ज्ञान ज्ञेय नै परिनिमें है सो ता ज्ञेय रूप शक्ति है ऐसी अनत शक्ति मेरे ही पासि है, ता कारन त वचनभेद करिकें ज्ञान अर ज्ञेय को भेद कोऊ कही ? पै दूसरो नय देखते ज्ञान को विलास अर ज्ञेय को विलास आत्मसत्ता माहि है । यातें अविशेषणौ है ॥ ४५ ॥

अथ चौपाई ।

स्व पर प्रकाश सकति हमारी,
तातैं वचन-भेद भ्रम भारी ।
ज्ञेय दशा दुविधा परिगासी,

निज रूपा पररूपा भासी ॥४६॥

अर्थ—जातैं हमारी शक्ति ऐना है जो अपनौ हू प्रकाश करै अरु परको हू प्रकाश करै । याही तैं स्वपर-प्रकाशक है, तातैं ज्ञान अरु ज्ञेय ए वचन भेद है सो भारी-

भ्रम उपजावे है पै वस्तु एक है, सो ज्ञेय कहतें तौ जानिवीयोग्य सो तौ दशा होई, दोई भांति करिकै कही एक तौ निज रूपा, दूसरी पररूपा भाखी कहतें कही ॥४६॥

अथ दोहरा ।

॥ निजरूपा आत्म सकति,

पररूपा पर-वस्तु ।

जिन लखि लीन्हों पेचु यहु,

तिन्हि लखि लियो समस्त ॥४७॥

अर्थ-यहा जो निज रूपा ज्ञेय दशा कहिये सो तौ स्वपर प्रकाशक आत्मशक्ति है अरु जो दूसरी पर-रूप ज्ञेय दशा सो तौ परवस्तु ही है, जिन्हि यह पेचु लखि लीन्हो है तिन्हि तौ समस्त ही लखि लीयो ॥४७॥

अथ स्याद्वाद रूप वर्णन । संख्या ३१ सा ।

करम अवस्था में अशुद्ध सो विलोकियतु,

करम कलक सों रहित शुद्ध अ ग है ।

उभैने प्रमाण समकाल शुद्धाशुद्ध रूप-

।सो पर्यायधारी जीव नाना

एक ही समै में त्रिधा रूप पै तथापि याकि,
 अखण्डित चेतना शक्ति सरवग है ॥
 यहै स्याद्वाद याको भेद स्याद्वादी जाने,
 मूरख न माने जाको हियो दृग भग है ॥

अर्थ—अब यहु पेचु स्याद्वाद ही में पाइये ताँतें
 स्याद्वाद रूप वस्तु की वर्णन करेई—सामान्य शरीर
 आत्मा के कर्म अस्थान में दृष्टि दीजें तो आत्मा अशुद्ध
 सौ देखिये है अरु क्लृप्त रहित, क्लृप्त आत्मा ही में दृष्टि
 दीजें तो शुद्ध अग है, अरु जो पूर्व कही ये दोनु नय
 समकाल ही प्रमान कीजें तो शुद्धाशुद्ध रूप कसौ जाइ
 ऐसो पर्याय धारा करिकें जीव नाना रगमें है शुद्ध, अशुद्ध,
 शुद्धाशुद्ध तीन रूप आत्माके एक ही समै में पाइयै जा पै
 ऐसे है तथापि कहतै तोहू आत्मा की तीना रूप में
 अखण्डित चेतना शक्ति सर्व अग में भर रही है । यो ही
 स्याद्वाद कहियै, याको भेद स्याद्वादी होइ सोई जानै पै
 जाको हियो दृग भग है कहतै सम्पददृष्टि रहित है सो
 मूर्ख याको भेद न जानै ॥४८॥

अथ सर्वैया ३१ सा

निहचे द्रव दृष्टि दीजे तत्र एक रूप,
 गुण परजाय भेदभाव सों बहुत हे ।
 असरय प्रदेश सयुगत सत्ता परमाण,
 ज्ञान की प्रभासो लोकाऽलोक मानजुत है।
 परजे तरगनी के अग छिनभगुर हे,
 चेतना शक्ति सों अखडित अचुत हे ।
 सा है जीव जगत विनायक जगत सार,
 जाकि मौज महिमा अपार अदभुत हे ४६

अर्थ—श्रीरो हू स्याद्वाद डिढावै हे—

निश्चयनयतं द्रव्य पर दृष्टि दीजे तौ आत्मा द्रव्य एक रूप है अरु या आत्मद्रव्यके गुण परिणतिरूप भेदभावतें देखिये तौ आत्मा गुरूप है अरु आत्माकी सत्ता असरयाव आकाश प्रदेश सयुक्त है । अरु तिन्दि सत्ताके प्रमान आत्मा कहा जाय है अरु ज्ञान की प्रभा विचारिये तौ लोकालोक मान जे सों गुरु ब्रह्मण्य ज्यौ जाय । जग जग में पारंग

रूप तरंगनिके अग विचारियै तो जीव क्षणभंग
 अरु याकों चेतनाशक्ति सौ विचारियै तो अखण्डि
 अरु अच्युत रुहावै, सोई जीव जगत को वि
 धनी अरु जगत में सारभूत पदार्थ है, अरु
 अरु महिमा अपार है, अद्भुत है ॥ ४६ ॥

अथ सवैया ३१ सा

विभाव शक्ति परणति सौ विकल
 शुद्ध चेतना विचारते सहज स
 क्रम स योग सौ कहावै गति जो
 निहचै स्वरूप सदा मुक्त मह
 ज्ञायक स्वभाव धरे लोकाऽलोक-प
 सत्ता परमाण सत्ता परमाशवंत
 सो हे जीव जानत जहांन कौतुक
 जाकी कीरति-कहान अनादि

अर्थ— श्रीरुद्र का उपासनाद्वारा ज्ञान प्राप्त है—

दीमे है । अरु याकी शुद्ध चेतना ही विचारिये तो इमि विचारें तैं सहज मतरूपी दीसैं है । कर्म सयोग सहित आत्मा विचारिये तो चारौ ही गति को रामी अरु चौरासी लारस योनि को रामी कहावै । अरु निश्चय नय त याकाँ स्वरूप ही विचारियें तो मचदा मुक्त रूप है, महन है अरु पाकी नायक स्वभाव धारी विचारिये तो लोकालोक को प्रकाशक अमेय कहावै । अरु आत्मा की प्रकाशवत् मत्ता ही विचारिये तो अपनी सत्ता प्रमान आत्मा हाइ मोई जोर वस्तु साध्य है जा यों बडौ मौ कीतुकी पौरुष है, जाकी कीरति ए कया अनादि अनत काल ला जैसी ही चली आवे ह ॥ ५ ॥

अथ -केवल दशा वर्नन

पच परकार ज्ञानावरण को नाश करि

प्रगटि प्रसिद्धि जग माहिजगमगी है ।

ज्ञायक प्रभा में नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि,

अनेक भई पै एकता के रस पगी है ॥

याहि भांति रहेगी अन त काल परयत,

अनंत शक्ति फेरि अनंतसों लगी है ।
 नरदेह देवल में केवल स्वरूप शुद्ध,
 ऐसी ज्ञानज्योति की सिखा समाधि जगी है ॥

अर्थ—अब साध्य केवल-दशाकी वर्णन करे है—
 मतिज्ञानावरण प्रमुख पाच प्रकार जो ज्ञानाप्ररणीय कर्म
 ताकी नाश करिके प्रमिद्धि कहता प्रत्यक्षपने प्रगटी ऐसी
 ज्ञानज्योति की शिखा जगत माहि जगमगा रही है अरु
 जो ऐसी ज्ञान ज्योति की शिखा है ताके ज्ञायकपना
 रूप प्रभा में नाना ज्ञेय की अस्थाय धरि के अनेकरूप भई
 है तौ ह ज्ञायकपना की तो एकता है, रस सो मिलि
 रही है । याही भाति अनंत काललों अन्त पर्यन्त रहेगी
 अरु अनन्त बल फोरिके अनंत पदमों लगी रही मनुष्यके
 देहरूप देवल में शुद्ध केवल ज्ञान स्वरूप ऐसी ज्ञान
 ज्योति की शिखा सी समाधि है सो जागी इतने सब
 विषमता भाव मिटि गयो ॥ ५१ ॥

अथ—अमृतचंद्र कलाके तीन अर्थ कथन—

अक्षर अर्थमें मगन रहे सदा काल,

महासुख देवा जैसी सेवा काम गविकी ।
 अमल अवाधित अलख गुण गावना है,
 पावना परम शुद्ध भावना है भविकी ॥
 मिथ्यात तिमिर अपहार वर्धमान धारा,
 जैसे उभै जामलों किरण दिपे रविकी ।
 ऐसी है अमृतचन्द्र कला त्रिधा रूप धरे,
 अनुभव दशा ग्रथ टीका बुद्धि कविकी ॥५२॥

अर्थ—अप अमृतचन्द्र आचार्य है सो चद्रमा है,
 ताहा ते कनाधारी है अरु याकी कला हू तीन रूप धारे है
 ताके न्यारे २ अर्थ मों वर्नन करे है, अमृतचंद्र की अनुभव
 दशारूप कला है सो तौ अक्षर अर्थ में कहते मोक्ष पदार्थ
 में मदकाल भगन रहै है अरु जैसी कामधेनु की सेवा
 सुखदायक होइ तमी सुखदायक है अरु अमृतचंद्र की ग्रन्थ
 टीका रूप कला है सोई पीछले वर्नन करि युक्त है अरु
 अमृतचंद्र रवि की बुद्धि है मा तो अक्षर अर्थ कहते शब्द
 अर्थ तामें भगन रहै आगे और वर्नन
 अमृतचंद्र की अनुभव दशा कला अरु ग्रथ

अरु त्रि कला ये तीनों ही कला अमल हैं, अनाधिन है, अलख
 पुरस्के गुण की गावनहार हैं, पावन है, भव्यत्वाना ही परम
 शुद्ध भावना है अरु तीनों ही कला सिध्यात्व रूप अ धकार
 की अपहरणहार है अरु बढ़ते परिणाम सी हैं । जैसे उठते दो
 पुरलों सूर्यकी किरण बढ़ती २ दीप तैसे ए उठती २ दीपे है
 ऐसी अमृतचद्र आचार्य की कला है सो तीन प्रकार की
 रूप धारे है सो तीनों रूपी है, एकतौ अनुभर दशा, दूसरी
 जो प्रथटीका कीन्ही, तीसरे काव्य ग्रथ करते कवि कला
 कीन्ही ॥ ५२ ॥

दोहरा

नाम साधि साधिक कह्यौ द्वार द्वादशम ठीक ।

समयसार नाटक कलश पूरण भयो सटीक ॥

अर्थ—नाटक निषे साध्य साधक द्वार की माल घोष
 रूप अर्थ सम्पूर्ण भयो इतने मूल ग्रथ सम्पूर्ण भयो ॥५३॥

इति श्री नाटकसमयसार की साध्य साधक द्वार सम्पूर्ण

अथ कवि आलोचना कथन । दोहरा ।

अव कविनिज पूरवदशा कहे आप सो आप।
सहज हरख मनमें धरे करे न पच्छाताप ॥५४॥

अर्थ—अत्र ग्रथके अन्तमें अमृतचन्द्र आलोचना करे
है अत्र कलशा का करनहार कवि है सो आपसां आप
आपनी पूर दशा कहै है, अपन मर्म पाये का सहज हर्ष
उपज्यौ है सोई आलाचनामें धारे है पे पछतापो न करे है ।

संख्या ३१ मा ।

जो मैं आपा छाडि दीनो पररूप गहि लीनो,
कीनों न वसेरौ तहा जहां मेरौ थल है ।
भोगनि को भोगि ह्वै करमको करता भयो,
हिरदे हमारे राग द्वेष माह मल है ॥
ऐसे विपरीत चाल भई सो अतीत काल,
सोतो मेरे क्रिया की ममता को फल है ।
ज्ञान दृष्टि भासी भयो क्रिया सौं उदासी वह,
मिथ्या मोह निद्रा मे सपन को सो छल है

अर्थ—जा आत्मा स्वभाव ही सो तो में छाडि दीनी है । अरु जा कर्मादिक पररूप हुतौ सो तो मैं गहि लीनो हे अरु जहा समाधि विषे मैरो थल कहते निवास हो तहा मै वसेरौ न कीयौ । पच इन्द्रियनि के विषय भोगनिकी भोगी हूँ के कर्म को करतार भयौ । हमारे हिये में राग द्वेष रूप महामल हौ, ऐसी उन्टी चाल चान्यौ सो अतीत कालमें जात वीती । इहा जो ऐसा काय भयो सो तो म मेरी क्रिया म ममता राखी ही यहु ताकौ फल हौ । अरु तौ ज्ञान दृष्टि भासी ताते क्रिया सौ उदासी भये अरु जो अतीत काल में अरुस्था भई ही वह तो मोह मिथ्यात्व निद्रा में सुपन को सौ छल भयौ ॥ ५४ ॥

अथ—दोहरा

अमृतचन्द्र मुनिराज कृत, पूरण भया गरथ ।

समय सार नाटक प्रगट, पचम गतिकौ पथ ५५

अर्थ—अमृतचन्द्र आचार्य को कीन्हौ समयसार ग्रंथ सम्पूर्ण भयौ ए समय सार नाटक ग्रंथ है सौ प्रगट पचम गति कौ पथ है ॥ ५५ ॥

इति श्रीअमृतचन्द्र आचार्यकौ कोन्हौ

समयसार ग्रंथ संपूर्ण भयौ

कविपर पं० बनारसीदास विरचित

चतुर्दश गुणरूपानाधिकार

—*—

अथ—दोहरा

जाके भगति प्रभाव सों, कीन्हो ग्रथ निवाहि ।
जिनप्रतिमा जिनसारिखी नमै बनारसि ताहि १

अर्थ—जिनिकी भक्तिके प्रभाव करिके ग्रहनार्थे ग्रथ
हुतौ ताहू ग्रथ को निवाहि कीन्हों इहि काल रिपे तात जिन
प्रतिमा श्री जिनेश्वर सरीखी ही है तिन्हि जिन प्रतिमा को
बनारसीदास नमै है ॥ १ ॥

अथ—प्रतिमा माहात्म्य कथन । सर्वथा ३१ सा ।

जाके मुख दरश सो भगत के नैनिकौ,
थिरता की वानि चढी चञ्चलता पिनसी ।
मुद्रा देखें केवलीकी मुद्रा याद आवे जहां,
जाके आगें इन्द्रकी विभूति दीसेतिनसी ॥

जाको जस जपत प्रकाश जगे हिरदे में,
 सोइ शुद्ध मति होइ हुती जो मलिन सी ।
 कहत वनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
 सोहै जिनकी छविसु विद्यमान जिनसी २

अर्थ—जैसे श्री जिनेश्वर देव माहात्म्यवत है । तैसे श्री जिन की प्रतिमा हू माहात्म्यवत है । जिन श्रीजिनप्रतिमा क मुख दर्शन भए तें जो याके भक्त जन ह ताके नननि मो कछु आगे सम्यक दशा पाई ही ताके धिरता की वानि बढी अरु जो इहि भाव में चचलता ही मो जिनशि गई । अरु या पद्यासनस्थित मुद्रा आकार जहा देखे है तहा केवली की मुद्रा याद आयै है । अरु केवली मुद्रा ऐसी सभारन म आयै है जाके आगे इद्र की सपदा है सो तृण समान दीसै है इतने ६४ इद्र-महित है अरु उह दशा सभारन में आयै जो केवली की जस कहै है तर तिनके गुनकी प्रकाश हीये में जागे है अरु तहां जो पहिली मति सम्यक दशा में भेली हुती सोई शुद्ध भई वनारसीदास कहै है कि जा जिनप्रतिमा की ऐसी २ प्रगट महिमा है सो या जिनकी छवि है सो विद्यमान जिनेश्वर समान ही जानिये ॥ २ ॥

अथ—प्रतिमा मानताफा बनेन । मदेना ३१ ना ।

जाके उर अन्तर मुद्वष्टिकी लहर लुगो,

विनसी मिध्यात मोह निद्रा श्री ममारस्त्री
 'सैलि जिन शासन की फैंनि जाके घट भयो,
 गरव का त्यागि पट्टाव को पारस्त्री ॥

आगम के अक्षर परे हे श्रवण जाके,

हिरदे भटारमें समानो वाषी आरस्त्री ।
 कहत बनारसी अलाभव प्रिति जानी,
 सोइ जिनप्रतिमा प्रमाणे जिनमारस्त्री ३

अर्थ—अथ वा प्रतिमा अ मन्त्रिर्वत हे ताको बन्न
 करे हे जाके-हिये में सम्यग्दर्शन की लहरि निराजमात्र
 हुइ रही हे अरु मिध्यान मदनाय रूप निद्रा की ममारस्त्री
 कहते मूर्छा सो जाके तिनगि गई । अरु जाके घटके घट
 शासन की मैली दहन तन्व समुद्धो यो सो फलके फल
 तन्व समुद्धन म अहंत्व न्य धामिमान को स्वामी
 को परतनदार, अरु ताके

ज्ञान में आगम के अक्षर परे है इतने सिद्धांत सुने है अर
जाके हिरदै रूपी भडार में आरखी गानी कहते ऋषिवाणी
इतने चिनवाणी सो समानी है-भरी है। बनारसीदास कहे है
जाकी भव स्थिति'अल्प आइ रही है, सोई पुरुष जिन प्रतिमा
का जिन सरीखी प्रमान करें ॥ ३ ॥

अर्थ-बनारसी कथन । चौपाई ।

जिन प्रतिमा जन दोष निकदे,
सीस नमाइ बनारसी वदे ।

फिर मन माहि विचारै ऐसा,
नाटक ग्रथ परम पद जैसा ॥४॥

अर्थ—अर पं० बनारसीदास अपनी कहे है-जिन
प्रतिमा है सोई जन मनुष्य के दोष-रागदोष मिथ्यात्व की
निरदै है ताते बनारसीदास सीस नमाइ है याकी वदे है ।
फिर बनारसीदास ऐसी मन में विचारै है यहु नाटक
ग्रथ जैसा परम पद है तैसी यहु कहे है ॥ ४ ॥

अर्थ चौपाई

परम तत्व परिचै इस माही,

गुणस्थानक की रचना नाही ।

यामे गुणस्थानक रस आवे,

तो गरन्थ अति शोभा पावे ॥

अर्थ—इस ग्रंथ माहि उपादेय रूप परम तत्व हे ताको परिचय है, पै गुणस्थान की रचना या ग्रंथमें नाही है । अर जो या ग्रंथ में गुणस्थानक कौ रस आवे तो ग्रंथ मली सी शोभा पावे ॥ ५ ॥

अथ-दोहरा

यहु विचारसत्तेपसौ, गुणस्थानक रस चाज ।

वर्णन करै बनारसी, कारण शिवपथ खोज ६

अर्थ—यहु विचार विचारके सत्तेप मात्र गुणस्थानाके रसक चोन का बनारसीदास वर्णन करे है यहु वर्णन शिव पथ कौ कारण है अर शिवपथ को खोज है ॥ ६ ॥

अथ गुणस्थानक स्वरूप कथन । दोहरा ।

नियत एक व्यवहार सौ, जीव चतुर्दश भेद ।

गोग बहुविधि भयो, ज्यौ पट सहज

—अथ गुणस्थाना कौ जसा ९

है—नियत कर्तव्य निरच जीव एकरूप है अरु व्यवहार नय
ते जीव के चौदह भेद ह इहां दृष्टान्त दिखावै है जैसे पट
कढ़ते वस्तु, सहज रगमें सफेद पै रगके जाग ते नाना भाति
में होइ । तैसे गुणस्थानरू सा भेद है ॥ ७ ॥

अथ—चतुर्दश गुणस्थानरू नाम कथन । सदैया ३१ सा
प्रथम मिथ्यात दूजा सासादन तीजो मिश्र,
चतुरथ अन्नत पचमो व्रत रच है ।

छट्टा परमत्त सातमो अपरमत्त नाम,
आठमो अपूरवकरण मुख सच है ॥

नौमो अनिवृत्तिभाव दशम सूक्ष्मलोभ,
एकादशमो सु उपशात मोह वच है ।

द्वादशमो क्षीणमोह तेरहो सयोगी जिन,
चौदमो अयोगी जाकी थिति अक पच है ॥

अथ—अब चौदह गुणस्थाना के नाम कहे है—
पहिला मिथ्यात्व १, दूसरो सस्वादन २, अमश्र ३, अन्नत ४
पाचमो र चन्नत इतन देशव्रत ५, छट्टा प्रमत्त ६, सातमा
अप्रमत्त ७. ऐसे नाम अपरर्व करण ८. अथवा अनिवृत्ति

वाटर ए दोऊ नाम हँ इहा सुख कौ संचय कहतें मिलाप
 है, नवमौ अनिष्टति वाटर ६, दशमो मूत्रम—लोभ १०,
 द्वादशमो उपशात मोह ११, इहां मोह की वचना है, वारमो
 घीण मोह १२, तेरमा सजोगी जिन १३ सो जेवली भयो,
 चौदमो अजोगी १४ जाकी धिति अ, इ, उ, ऋ, लृ, ह्रस्व
 पच अक्षर प्रमाण है ॥ = ॥

अथ दाहरा

वरने सब गुणस्थानके, नाम चतुर्दश सार ।

अथ ऋनो मिथ्यात के, भेद पच प्रकार ॥

अर्थ—सब गुणस्थाना के १४ नाम सार कहतें
 सत्यार्थ ऋने यो रहे । अथ य ऋक्रमें पहिले मिथ्यात्व गुण
 स्थान के पच प्रकार ते पच भेद भये हैं सो कहै है ॥ ६ ॥

अथ— पच मिथ्यात्व के नाम । सर्वथा ३१ सा ।

प्रथम एकांत नाम मिथ्यात अभिग्रहिक,

दूजो विपरीत अभिनिवेशिक गोत है ।

तीजौ विनै मिथ्यात्व अनाविग्रह नाम जाको,

चौथो सशय जहा चित्त भोरको सो पोत है ॥

पाचमो अज्ञान अनाभोगिक गहल रूप,
जाके उदै चेतन अचेतसी होत हे ।

येई पाचों मिथ्यात्व भ्रमावै जीव जगत में,
इसको विनाश समकित को उद्योत है १०

अर्थ—अब पहलै मिथ्यात्व नाम कहै है, पांच मिथ्या-
त्वनिमें पहिलौ मिथ्यात्व एकांत पक्ष कौ ग्राही आभिप्राहिक
नामै मिथ्यात हैइ, दुजो मिथ्यात पहिला मिथ्यात ते
विपरीत है । यागौ अभिनिशिक एसे गौत कहैंत नाम
है २ तीसरो विनय मिथ्यात सवनि को पूननहार, जागौ
नाम अनाभिग्रह है ३, चौथा सशय मिथ्यात, जहा चित्त
है सो भमतो रहै जेमे भमर को पोत कहैतै दृच्यौ ४
पाचमो अज्ञान मिथ्यात ५, ए अनाभोगिकपनै सो
अज्ञान एकेद्रियादिक विषै गहलरूपी है, निद्रामी छारु क
सो स्वरूपी है । जाके उदय चेतन है सो अचेतन सो हु
रह्यो है । जाके नाम ली है सो एई पाचों मिथ्यात जी
कों जगत में भ्रमावै ह । ईइ पाचौ मिथ्यात के विनाश
भये मभक्त को उद्योत होतु है ॥ १० ॥

अथ—एकांत यथा दोहरा

जो एकांत नय पक्ष गृह्ये कर्हावै दक्ष ।

सो एकतवादी पुरुष मृपावत परतक्ष ॥ ११ ॥

अर्थ—यव एकांत वादी अभिग्रहिक मिथ्याती नौ लक्षण रुहै है—मातों नयमें हर कोऊ एक ही नय को पक्ष ग्रहिकै अपने जानपना में छकि जाय अरु दक्ष कहतै तत्व-वेचा रुहावै । सो ही एकांत मत कौ आपनहार मीमांसक नैयायिक प्रमुख पुरुष है या प्रत्यक्षपनै मृपावत कहते मिथ्याती है ॥ ११ ॥

अथ—विपरीत यथा । दोहरा ।

गद्यउक्ति पथ उथपि जो आपे कुमत स्वकीय ।

सुजस हेतु गुरुता गहे, सो विहरीती जीय ॥

अर्थ—रुहु जान में तो अनेकांत पनै है पै दृठते विपरीत वई ताकाँ लक्षण रुहै है—ग्रन्थ में जो उक्त कहते कस्यो त्रैसो मार्ग तासों उधापिनै ७ चिन्ह वज्यो स्वकीय रुद्धत आपनो कुमत धापै अपनी प्रसिद्धिके कारन गुरुता आधायपनो सो गहै है ।

विपरीत भयो प्रभिनिप्रसिद्ध मिथ्याती कहिये ॥ १२ ॥

अर्थ—विनय मिथ्यात यथा । दोहरा ।

देव सुदेव सुगुरु, कुगुरु गनें समान जु कोय ।
नमै भगतिसौं सवनको, विनै मिथ्यात्वी सोया ॥

अर्थ—जाके विनय मिथ्यात है ऐसो अनाभिप्रदिक मिथ्याती में लक्षण कहे है—सुदेव को अरु सुदेव को सुगुरु को अरु कुगुरु को जो कोऊ समान ही गने है । अरु ता मिलाप सा ज्यौ प्रणाम प्रवृत्त्या लैके भगतितैं सा सनिकों नमै पै गुण दोष भी खबरि नाहीं सो विनय मिथ्याती कहिये । १३ ॥

अवसणय यथा । दोहरा ।

जो नाना विकल्प गहै, रहै हिये हैरान ।

धिर न्है तत्त्व न सहहे, सो जियस शयवान १४

अर्थ—जाके जानपनामें सदेह है सो सणय मिथ्याती है ताको लक्षण कहे है अपार नय जाल देखिके सणय गखिकें नाना प्रकार के विकल्प ग्रहै है अरु हैरान हुइ रहै है, धिरता राखिकें तत्त्व को सहहे नहीं मोई जीव

सशयवंत मिथ्यासी कहियै ॥

अथ—अज्ञान यथा । दोहरा ।

जाको तन दुख दहलसों, सुरति होतु नहि रच
गहल रूप वरते सदा, सो अज्ञान तिरजच १५

अर्थ—अत्र पाचवा अज्ञान मिथ्याती की लक्षण कहै
: शरीर में दुख के दहल सों जाको हेय उपोदय की रच
न सुरति नाही होतु है, मूर्च्छित रूपी ही सदा वर्ते सो
के त्रियादिक तिरयच अज्ञान मिथ्याती कहियै ॥ १५ ॥

दोहरा ।

अचभेद मिथ्यात के, कहे जिनागम जोय ।

सादि अनादि स्वरूप अच, कहीं अवस्था दोया ॥

अर्थ—श्री विनेश्वर के आगम सिद्धात देखि कै
मिथ्यात के पांचभेद कहे । जाकी आदि पाइयै सा ती
आदि कहिये, जाकी आदि न पाइयै सो अनादि कहिये
ऐसी मिथ्यातकी दो अवस्था है ताको अच कही हों । १६

अथ—सादि, यथा । दोहरा ।

अच मिथ्या दल उपशम, अथि भेद बुध

फिर आवे मिथ्यातमें, मादि मिथ्याती मोइ ॥

अर्थ—अब सादि मिथ्याती मैं लक्षण रुहै है—
ना मिथ्यात मोह के दल को उपशमाय रु, मिथ्यात नी
ग्रधिको भेद के बुध कहनै ज्ञाता ममकृती दृइरै फेरि मिथ्यात
में आवै सा सादि मिथ्याती कहियै यात्र मिथ्यात्व में अब
आदि भई तार्ते सादि रुहिये ॥ १७ ॥

अर्थ—अनादि यथा । दोहरा ।

जिन गिर यि भेदी नहीं, ममतामगन मदीव ।
सो अनादि मिथ्यामती, विकल वहिमुख जीव ॥

अर्थ—अब अनादि मिथ्यात मैं लक्षण रुहै है—
निन्हि जीव मिथ्यात अघि भेदी नाहो अरु मदा काल
को ममता ही में मगन रहै है सो जो अनादि मिथ्याती
रुहिये अरु या विकल यथौ वहिमुख ही रहै है । जाके
परमात्मद्रव्य की नष्टि नहीं, सो वहिमुख रुहिये ॥ १८ ॥

इति श्री पं० बनारसीदास एव नाटकसमयसार विषे
प्रथम गुणस्थानक अधिकार सम्पूर्ण

दोहग ।

कह्यो प्रथम गुणस्थान यह, मिथ्यामत अभिधान
अल्प रूप अथ वरनऊ, सासादन गुणस्थान १६

अर्थ—मिथ्यामत ऐसी जाकी अभिधान कहतें नाम
है ना पहिला गुण वाना सूचना मात्र कही । अथ अल्परूप
कहते मत्तेपमात्र नामादन गुणस्थानकी स्वरूप कहीं हों ।

मवेया ३१ सा

जैसे मोउ क्षुधित पुरुष खाई खीरखाड,
बोन करे पीछे के लगार स्वाद पावे है ।
तैसे चटि चौथे पांचे छट्टे एक गुणस्थान,
काहू उपगमी कू कपाय उटै आवै है ॥
ताही समय तहा मों गिरे प्रधानदशा त्यागि,
मिथ्यात्व अस्थायीको अधोमुख्य बहे धावै है ।
बीच एक समै, वा, छ आवली प्रमाण रहे,
सोइ, नामादन गुणस्थानक कहावै है ॥२०॥

जैसे मोउ क्षुधित पुरुष है सो

को खायें पीछे ताको वमन करै, ता वमन को पीछै तिन
 स्वीर खाड मोजन को लगार एरु स्वाद पावे है तैमे फोऊ
 जीव उपशम सम्यक्त पाइकै चौथे अविरत गुनधाने रखौ
 है, अथवा पांचमे, छठे गुनधाने ही चढौ तथा ममकित की
 उद्वेलना भई अर अन्तानुवधी कपाय उदय आये, ताही
 समै के विषै तिन गुनधाना सौं या उपशम सम्यक्ती प्रधान
 दशा जो श्रेष्ठ दशा ताको त्यागिक फेरि मिथ्यात दशा को
 अधोमुख कहतै उधे मुह उन्टौ दौरै है, इतने में मिथ्यात
 पावता में सम्यक्त छूटतामें बीचि एक समय काल प्रमानै
 अथवा उत्कृष्ट ६ आवली काल प्रमाणे सम्यक्त अंश रहै है,
 सोई सासादन गुनधानौ कहिये ॥२०॥

इति श्री समयसार नाटक विषै दूसरा सासादन
 गुनधाना को अधिकार समाप्त ।

अथ दोहरा

सासादन गुणस्थान यह, भयो समापति वीय ।
 मिश्रनाम गुणस्थान अव, वर्नन करू तृतीयर १

अर्थ—वीय कहत दूसरो यह सासादन नामे गुनधानौ

समाप्त भयो अब तीसरा मिश्र नाम गुणस्थाना को वरनन करा हो ॥ २१ ॥

मंत्रया ३१ सा

उपशमी समकिति कै ता सादि मिथ्यामति ,
दुहोनि को मिश्रित मिथ्यात आड गहे है ।

अनतानुबधी चौकरी को उदै नाहि जामें,
मिथ्यातममै प्रकृति मिथ्यात न रहै है ॥

जहा सहहन सत्यासत्य रूप सम काल,
ज्ञानभाव मिथ्याभाव मिश्रधारा वहे है ।

याकी धिति अतरमुहूरत उभयरूप,
ऐसा मिश्र गुणस्थान आचारज कहे है ॥२२॥

अर्थ—कैतो उपशम समकृती मिथ्यात मिश्र सम्यक्त रूप तीन पु ज करिकें जन मिश्र पु ज में जीव बत्तें अथवा सम्यक्तसौ गिरिवै फेरि मिथ्यात आइकें ऐसा सादि दृइकें मिश्रपु ज उदै आइत एसे दुहों को मिश्र गुणस्थाना मिथ्यात मिश्र को बत है । जातै ससार अनती बड़ तात अनतानुबधी कहियै एमे क्रोध, मान, माया

अनतानुवर्धी की चौररी रुदिये, ताकी नामे उदै नाहीं है
 अरु मिथ्यात समै कहते उपगम है, तथा मिथ्यात की
 प्रकृति उदै नाहीं रहै है । जहा समकाल ही मत्या सत्य
 रूप श्रद्धा है इतने श्रद्धा में साचि भूठ होतु है तथा ज्ञान
 भाव है सो अज्ञान भाव तै मिथ्यधारा में वहै है । जाकी
 उत्कृष्ट धिती अतर मुहते फाल की है अरु ना कहते अध्या
 जघन्य एक समय की धिति असो तीसरो मिश्र गुणस्थाना
 आचार्य जी कहै है ॥ २२ ॥

इति श्री समयसार नाटक विषे तीसरा मिश्र गुणस्थाना
 को सक्षेप मात्र अधिकार सम्पूर्ण भयो ।

दोहरा

मिश्र दशा पूरण भई, कही जथामति भाखि ।
 अब चतुर्थ गुणस्थान विधि, कहू जिनागम साखि ।

अर्थ — मिश्र गुणस्थाना की जैसी दशा है तैसी जथा-
 मति रहते जैसी अपनी बुद्धि है तैसी रूप भाषा कही सो
 सम्पूर्ण भई । अब श्री जिनागम की साखि लै के चौथा
 मध्यक्त गुणस्थाना की विधि कहीं हों ॥ २३ ॥

अथ सम्यक्त वर्णन । नन्देन ३१ च ॥ -

केई जीव समकित पाइ अर्ध पृथगत्र
 परावर्त काल ताई चोन्ने केइ निक्के ।
 केई एक अतरमुहूरत में गडि नन्दे,
 मारग उलधि सुख वेदें मंत्र तिन के ॥
 ताते अतरमुहूरतमा अर्धपृथगत्रो,
 जेते समै होहि तेते नन्दे मन्त्रि के ।
 जाहि समै जाफो जव मन्त्रि हाइ मांड,
 तवहि सौं गुण गहें गुन द्दुष्टकं ॥ २४ ॥

अर्थ—अथ पहिले मन्त्र के वर्णन करे है ॥

केई जीव समकित पाइ, तिन के चोन्ने गुड के अर्ध
 पृथगत्र परावर्तन काल में रह है, अन्तों अर्ध
 सर्पिणी उत्सर्पिणी अन्त में एक पृथगत्र परावर्तन काल
 होइ तां आधा रहे, अर्ध अर्ध जीव एक ही काल में
 काल में मिथ्यात अर्ध नन्दे के सम्यक्त पाइ अर्ध अर्ध
 कौ मारग उलधि सुख वेदें मन्त्र के सुख रहे तनत रहे
 नहीं । ताते सम्यक्त वर्णन है मन्त्र के वर्णन

अ तरमुहूर्तकी उत्कृष्ट ससारास्थिति अद्भुतपुद्गल परावतन
 की है अब इतने बीच ससार स्थिति में एक एक समय
 को बढाउ करिये, ऐसे जेते स्थिति के भेद भये ते समकित
 के भेद पाइये जाही समय जाकेँ जय समकित को उदय
 हाय ताही समय सोई जीव तब ही सो अपने गुन ग्रहे अरु
 इतके सो ससार अवस्था के दाप दहे ॥ २४ ॥

दोहरा ।

अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करण करे जो कोय
 मिथ्या गठि विदारि गुण, प्रगटे समकित सोय ॥

अर्थ—अध. कहते हैं यथा प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण
 अनिवृत्तिकरण ए तीनों करण जो कोई भव्य जीव करे है
 तहा अब कब हा आयु कर्म विना सात कर्म की स्थिति
 अत कोटाकोटी सागरूपमान रहै । तब यथावृत्ति करण
 होइ, पीछे मिथ्यात्व ग्रथि भेद ते अपूर्वकरण होइ अरु
 सम्यक्त्व प्रगटते अनिवृत्तिकरण होइ जो कोऊ ए तीनोंकरण
 मिथ्यात्व ग्रथि विदारकेँ सम्यक स्वरूप
 कहियै ॥२५॥

अथ—अष्टरूप कथन । दोहरा ।

समकित्त उत्पत्ति चिन्ह गुण, भूषण दोष विनाश ।

अतीचार जुत अष्टविधि, वरणो विवरण तास २६

अर्थ—अब आठ प्रकार के सम्यक्त विवरण करे हे—
सम्यक्त का स्वरूप १, सम्यक्त की उत्पत्ति २, सम्यक्त के
चिन्ह ३ स यक्त गुण ४, सम्यक्तके भूषण ५, सम्यक्त के
दोष ६, विनाश ७, सम्यक्त के अतीचार ८ ए सब इकट्ठे
कीने ८ प्रकारके भये ताके विवरणका वर्णन करो हो । २६।

अथ—सम्यक्त यथा । चौपाई ।

सत्य प्रतीति अवस्था जाकी,

दिन दिन रीति गहे समता को ।

द्विन द्विन करे सत्यको साको,

समकित्त नाम कहावे ताको ॥

अर्थ—अब सम्यक्त का स्वरूप कहै हे—सत्य में
जाकी प्रतीति है, इतने साचु ही का सरदहे है जैसी जाकी
अवस्था है । अरु दिन दिन बढ़ती चमा, निर्लोभता प्रमुख
ममता की रीति गहै है, ऐसी सत्य कार्य पहिले

क्रियाँ तैना अत्र चण चणमें सत्य की माफो माँ कार्य कर
है तिहिभाय का नाम सम्यक्त कहितो ॥ २७ ॥

अर्थ—उत्पत्ति यथा । दोहरा ।

कै तो सहज स्वभाव कै, उपदेशे गुरु कोय ।
चिहु गति सैनी जीव को, सम्यक्दर्शन होय २८

अर्थ—अत्र सम्यक्तकी उत्पत्ति कहै है । के ता सरिल
दुपल धोलना न्याय ते सहज सुभाय ही तें समकित उपन,
के कोउ गुरु के उपदेश सो सम्यक्त उपजै, चिहोगति सैनी
कहते जा जीव चिहोगति म समयन निद्रा करि रखा है ताका
समकित उपजै सो ऐसे प्रकार तें उपजै ॥ २८ ॥

अर्थ—लक्षण यथा । दोहरा ।

आपापर परचैं विखें, उपजै नहि सदेह ।

सहज प्रपचरहित दशा, समकितलक्षण एह २९

अर्थ—अत्र जात सम्यक्त उपज्यौ जानिये सो सम्यक्त
लक्षण कहै है । आत्मा अरु आत्मा तें भिन्न कर्म, नोरुर्म
पुद्गल आदि पांचोंहीद्रव्य ताके परिचय प्रतीति विषै सन्देह
उपने नही अरु सहज सुभाय ही में आत्म दगा, माया

प्रपञ्च तं रदित होइ ए, सम्यक्त लक्षण कहिये ॥ २६ ॥

अथ—गुण यथा । दोहरा ।

करुणा वत्सल सुजनता, आत्म निदा पाठ ।

ममता भगति विरागता, धर्म राग गुण आठ ।

अर्थ—अत्र सम्यक्त के गुण कहै है । करुणा कहत दया १, सत्का हित वाञ्छरु २, सत्सौ मैत्री भावना ३, आत्म निन्दा की पाठ कहतै पडिवा ४, इष्ट अनिष्टपरि समभाव रहिवा ५, देव गुरु की भक्ति ६, वैराग्य रसमें रहना ७, धर्म सौ राग राखना ८ ए सम्यक्त के आठ गुण कहिये ॥३०॥

अथ—पञ्च भूषण यथा । दोहरा ।

चित्त प्रभावना भाग्युत्त, हेय उपादे वाणि ।

धीरज हर्ष प्रीणता, भूषण पञ्च वखाणि ३१

अर्थ—अत्र सम्यक्त के भूषण कहै है । चित्त कहिये ज्ञान-इतने जिनगामन की प्रभावना बढै तैमे भाव रहना १, हेय उपादेय ज्ञानवत् हाइ २, धैर्य में रहना ३, सम्यक्त पायै हर्ष राखना ४, तत्परिचार में प्रवीनताई ५, ए सम्यक्त

अथ—पचसीस दोष । दोहरा

अष्ट महामद अष्ट मल, षट् आयतन विशेष ।

तीन मूढता सयुक्त, दोष पचीसी एव ॥३२॥

अर्थ—अत्र समकृत के २५ दोष कहे हैं । महामद है ८, अर ८ मल, ६ आयतन विशेष है, मूढता ए सब एकठी करिये तत्र दोष पचीसी निपजै ॥ ३२ ॥

अर्थ—अष्ट मद । दोहरा

जाति लाभ कुल रूपतप, बल विद्या अधिकार
इनको गर्व जु कोजिये, यह मद अष्ट प्रकार ३३

अर्थ—अत्र आठ मद रुहे है । जातिमद १, लाभ मद २, कुलमद ३, रूप मद ४, बल मद ५, तप मद ६, विद्या मद ७ अधिकार मद ८ इन्हि आठ वस्तु को गर्व कीनिये सो या मद ८ प्रकार की है ॥ ३३ ॥

अथ—अष्ट मल यथा । चौपाहे

आशका अस्थिरता बद्धा,

ममता दृष्टि दशा दुरगच्छा ।

वत्सलरहित दोष पर भासे,

चित प्रभावना माहि न राखे ॥३४॥

अर्थ--अब मल कहै है--धर्मपरि-जिनपचनपर
 रंसा का राखे १, धर्ममें स्थिरता नाहो २, स्वर्गादिक की
 इच्छा धरनी ३, तन कुटम्बादिक मी ममता दृष्टि राखनी ४,
 यहू धर्म मलीन है सा इगद्धा ५, उत्तमल न करै ६, पर
 के दोष प्रकाश ७, धर्म प्रभावना में चित न राखे ८ ॥३४॥

अब—छह अनायतन

कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म ।

इनकी करै सराहना, इह पट आयतन कर्म ३५

अर्थ—अब छह अनायतन दोष कहै है

कुगुरु के माननहार अर १, कुदेव के माननहार २, व
 कुधर्म के माननहार ३, कुगुरु ४, कुधर्म ५, कुदेव ६ इन्ही
 छहों की मराहना प्रशसा करै ए छह अनायतन कर्म
 दोष कहियै है ॥ ३५ ॥

अब—अब मटत्रय यथा, दोहरा—

देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोप ।

आठ आठ पट तीन मिलि, ये पचीस सब दोष ३६

अर्थ—अब त्रिमूढता दोष कहै है सुदेव

अथ—पचसीस दोष । दोहरा ।

अष्ट महामद अष्ट मल, षट् आयतन विशेष
तीन मूढता सयुक्त, दोष पचीसी एव ॥३॥

अर्थ—अथ समकृत के २५ दोष कहे हैं । महामद ८, अष्ट ८ मल, ६ आयतन विशेष है, मूढता ए सब एव करिये तब दोष पचीसी निपज ॥ ३२ ॥

अर्थ—अष्ट मद । दोहरा

जाति लाभ कुल रूपतप, बल विद्या अधिकार
इनको गर्व जु कोजिये, यह मद अष्ट प्रकार ३३

अर्थ—अथ आठ मद कहे हैं । जातिमद १, लाभ मद २, कुलमद ३, रूप मद ४, बल मद ५, तप मद ६, विद्या मद ७ अधिकार मद ८ इन्हि आठ वस्तु को गर्व कीजिये सो या मद ८ प्रकार की है ॥ ३३ ॥

अथ—अष्ट मल यथा । चौपाई

आशका अस्थिरता बद्धा,

ममता दृष्टि दशा दुरगद्धा ।

वत्सलरहित दोष पर भाखे,

चित प्रभावना माहि न राखे ॥३४॥

अर्थ—अब मल रुद्ध है—धर्मपरि-जिनरचनपर शंका का राखे १, धर्ममें स्थिरता नहीं २, स्वर्गादिक की इच्छा धरनी ३, तन वृट्म्बादिक में ममता दृष्टि राखनी ४, यह धर्म मलीन है सा दुगच्छा ५, उत्मल न करे ६, पर के दोष प्रकाश ७, धर्म प्रभावना में चित्त न राखे ॥३४॥

अथ—छह अनायतन

कुगुरु कुदेव कुधर्मधर, कुगुरु कुदेव कुधर्म ।

इनकी करै सराहना, उह पट आयतन कर्म ३५

अर्थ—अब छह अनायतन दोष कहै है

कुगुरु के माननहार अर १, कुदेव के माननहार २, व कुधर्म के माननहार ३, कुगुरु ४, कुधर्म ५, कुदेव ६ इन्ही छहों की सराहना प्रशंसा करै ए छह अनायतन कर्म दोष कहियै है ॥ ३५ ॥

अथ—अब मूटप्रप यथा, दोहरा—

देव मूट गुरु मूटता, धर्म मूटता पोष ।

आठ आठ पट तीन मिलि, ये पचीस सब दोष ३६

अर्थ—अब त्रिमूटता दोष कहै है सदेव को

ए देव मूढ़ता १, सुगुरु समुक्तै नाही ए गुरु मूढ़ता २,
सुधर्म समुक्तै नाही ए धर्म की मूढ़ता ३, अविद्या, जो पोषि
आठ मद, आठ मल, छे अनायतन, ३ मूढ़ता ए मिलके
सब २५ दोष मये ॥३६॥

अथ—सम्यक्त नाश पचरू यथा, । दोहरा ।

ज्ञान गर्व मतिम दता, निष्टुर वचन उदगार ।

रुद्रभाव आलसदशा, नाश पच प्रकार ॥३७॥

अर्थ अब पाच प्रकार सम्यक्तको नाश कह है—

ज्ञानके गर्वते सम्यक्त को नाश होइ १, मति बुद्धि की
मदता ते नाश होइ २, कठोर वचन उदगार कहते कहवै ते
नाश होइ ३, रौद्रभाव धारिये त नाश होइ ४, आलसीपनाते
नाश होइ ५, ऐसे पाच प्रकारते सम्यक्तको नाश होइ ३७

अथ प्रतीचार पच यथा । दोहरा ।

लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्रसोच धिति मेव ।

मिथ्या आगमकी भगति, भ्रूखा दर्शनी सेव ३=

अर्थ—अब दिगम्बरमप्रदाय ते सम्यक्त के ५ अतीचार
रहे है, सम्यक्त क्रिया त मोहि लोग हमेंगे, एमो मन में

भय न्यायै१, पच इन्द्रियः क विषयभोग की रचि राखै २,
 आगै मेरा रुहा होयेगो । ऐमे अपनी थिति को सोच मों
 रेचैन३, मिथ्यादर्शनमें जा आगम सिद्धान्त है ताकी भक्ति
 कर ४, मिथ्यादर्शन की मेरा करे ५ ॥३८॥

चौपाई

अतीचार ए पच प्रकारा,

समल करहि समकित की धारा ।

दूषण भूपण गति अनुसरनी,

दशा आठ समकित की वरनी ॥३९॥

अर्थ ए पच अतीचार कहिये सम्यक्त की उज्वल
 धारा कों मल रहते मल महित करै है, ऐसे दूषण गति
 के अनुसरनी रहतै पीछे लगी अरु भूपण गतिके अनुसरनी
 रहते पीछे लगी सम्यक्त की ए = दशा वरनी ॥ ३९ ॥

अथ-सप्त प्रकृति यथा, दाहरा ।

प्रकृति सात अब मोह की, कहूँ जिनागम जोय ।

जिन्ह को उदै निवारकै, मय्यकदर्शन होय ४०

अर्थ-अब जिन्हि ७ प्रकृति के छय अथवा

सम्यक्त उपजै है सौ करै है । अब मोहनीय की ७ प्रकृति
श्री निनेश्वर आगम जोइके कहों हैं जिन्हि ७ प्रकृति की
निवारैतै सम्यग्दर्शन प्रगट होतु है । ॥४०॥

सवैया, ३१ मा

चारित्र माहकी चार मिथ्यात की तीन तामें,
प्रथम प्रकृति अनु तानुबधी मोहनी ।
बीजी महा मान रस बीजी महामाया तजि,
चौधे महा लोभ दशा परिग्रह पोहनी ॥
पांचवीं मिथ्यामति छठी मिश्र परिणति,
सातवी समय प्रकृति समकित्त मोहनी ।
येह पट विग वनितासी एक कुतियासी
सातों माह प्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ४१

अर्थ मोहनीय रुम के दो भेद है एक चारित्र मोहनीय
अरु दूसरी मिथ्यादर्शनमाहनीय, तामें चारित्र मोहनीय की
च्यारि प्रकृति, दशन माहनीय की तीन प्रकृति तामें प्रथम
मोहनीय प्रकृति अनुतानुबधी क्रोध १, दूसरी प्रकृति महा-

अभिमान के रस म अनतानुबधी मान २, तीसरी प्रकृति
महा माया मई अनुतानवधी माया ३, चौथी प्रकृति महा-
लोभ दशा म परिग्रह की पोषनहार अनतानुबधी लोभ ४,
पचमी प्रकृति मध्यात मति लिए मिथ्यात्वमोहनीय ५,
छठी प्रकृति मिथ्र परिणाम लिये मिथ्र माहनीय ६, सातमी
सम्यक्प्रकृति ए जु है मो पूंली छहों प्रकृतिजो शम भयो,
दमि गई सो सम्यक्त मोहनी यामें करली, ६ प्रकृति तौ विग
वनिता सी कहतें नाहरी सी गैल लगी कहां छूटत नाही
धरु सातमी प्रकृति कुतिया है याकौ भरोमा हु नाही । एई
सातौ मोह की प्रकृति मत्ता रोहनी कहतें जीव के मद्भाव
की रोधनहार ॥ ४१ ॥

अथ—सम्यक्त के भेद रवन । छप्पय छंद ।

सात प्रकृति उपशमहि जासु सो उपशमभटित,
सात प्रकृति क्षय करनहार, चायिकी अखडित ।
सात माहि कछु क्षपै, कछु उपशम करि रसखै,
सा क्षयउपशमवत, मिथ्र समकित रस चखै ॥
पटप्रकृति उपशमेवाक्षपे, अथवा क्षयउपशम करै

सातई प्रकृति जाके उदै, सो वेदक समकित धरै ॥

अर्थ—अथ सातौ प्रकृति तै सम्यक्त के भेद उपजै है सो कहै हे—नारे सात प्रकृति उपशमि जाइ सो उपशमा पडित कहते ज्ञाता होइ यामो उपशम सम्यक्त रहिए । अरु एई सात प्रकृति को चय करनहार के चायिक कहिये तामो अ खडित चायिक सम्यक्त होइ ए सातौ प्रकृतिमें ६ प्रकृति उपशमे अरु सातभी सम्यक्त माहनी प्रकृति उदै आई यदे है अथवा प्रकृति चय गई हे अरु सातमी देहे है सो तो वेदक समकितधारी रहिये ।

अथ—नवविधि सम्यक्त वर्नन । दोहरा ।

चायापशम वर्ते त्रिविध, वेदक चार प्रकार ।

चायक उपशम जुगल युत, नोधा समकितधार ॥

अर्थ—अथ समकित के भेद कहै हैं—चायोपशमसम्यक्त तीन प्रकार की वर्ते है ३, वेदक समाप्त क चारि प्रकार है ४, चायिक समाकृत एक प्रकार १ अरु उपशम सम्यक्त १ प्रकार ए दाउ मिले ता तीनि च्यारि दोइ मिले नोधा कहतै ६ प्रकारे सम्यक्तधारा होइ ॥ ४३ ॥

चार क्षपे त्रय उपशमे, षण क्षय उपशम दोय ।

क्षौ षट् उपशम एक यो, क्षयोपशम त्रिकहोय ४४

अर्थ—अब तीन प्रकार क्षयोपशम मन्त्रित को ज्योरी कहे हैं—मातां प्रकृति में अनन्तानुबन्धी ४ खपि गये हैं अरु दर्शन माहनी उपशमी है तौह क्षयोपशम रहिये । अथवा ४ अनन्तानुबन्धी अरु मिथ्यातमहनी १ एव ५ क्षय गई अरु २ उपशमी ताह क्षयोपशम है । अथवा मिथ्र लों ६ क्षय गई अरु १ सातों उपशमी है तौह क्षयोपशम, ऐसी तीन भाति क्षयोपशम मन्त्रित होइ ॥ ४४ ॥

अब क्षयोपशममहित मन्त्रित मोहनीवेद तें तो क्षयोपशम वेदक निपजे है, ताके दो प्रकार रुहे है—

दोहरा

जहा चार प्रकृति क्षपे, द्वै उपशम डक वेद ।

क्षयोपशम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद ४५

अर्थ—जहा अनन्तानुबन्धी ४ प्रकृति क्षय होत है, अरु मिथ्यात, मिथ्र ए दोउ प्रकृति उपशम है, अरु एरु मन्त्रित मोहनी उपशम है । अरु अन्ति दशा में जो

सातई प्रकृति जाके उदै, सो वेदक समकित धरै ॥

अर्थ—अब सातौ प्रकृति तें सम्यक्त के भेद उपजै है सा कहै है—नाके सात प्रकृति उपशमि जाइ सो उपशमा पडित कहतें ज्ञाता होइ याको उपशम सम्यक्त कहिए । अरु एई सात प्रकृति कौ चय करनहार के चायिक कहिये ताको अ खडित चायिक सम्यक्त होइ ए मातों प्रकृतिमें ६ प्रकृति उपशमे अरु सातभी सम्यक्त मोहनी प्रकृति उदै आई पेदे है अथवा प्रकृति चय गई है अरु सातमी देटे है सो तौ वेदक समकितधारी कहिय ।

अथ—नयविधि सम्यक्त वर्नन । दोहरा ।

क्षयापशम वर्ते त्रिविध, वेदक चार प्रकार ।

क्षयापशम जुगल युत, नोधा समकितधार ॥

अर्थ—अब समकित के भेद कहै है—क्षयापशमसम्यक्त तीन प्रकार कौ वर्तै है ३, वेदक समाकृत क चारि प्रकार है ४, चायिक समाकृत एक प्रकार १ अरु उपशम सम्यक्त १ प्रकार ए दाउ मिले ता तीनि च्यारि दोइ मिले नोधा कहतें ६ प्रकार सम्यक्तधारा हाइ ॥ ४३ ॥

चार क्षेपे त्रय उपशमे, पण क्षय उपशम दोय ।

क्षै पट उपशम एक यो, क्षयोपशम त्रिकहोय ४४

अर्थ—अत्र तीन प्रकार क्षयोपशम ममस्मित को व्यौरी कहे हैं—सातां प्रकृति में अनन्तानुबन्धी ४ खपि गये हैं अरु दर्शन माहनी उपशमी है तौहू क्षयोपशम कहिये । अथवा ४ अनन्तानुबन्धी अरु मिथ्यातमहनी १ एव ५ क्षय गई अरु २ उपशमी ताहू क्षयोपशम है । अथवा मिश्र लों ६ क्षय गई अरु १ मातर्गो उपशमी है तौहू क्षयोपशम, ऐसी तीन भाति क्षयोपशम सम्यक्त होइ ॥ ४४ ॥

अत्र क्षयोपशमसहित सम्यक्त मोहनीपद तें तो क्षयोपशम उदक निपज है, ताके दो प्रकार रहै हैं—

दाहरा

जहा चार प्रकृति क्षेपे, द्वै उपशम डक वेद ।

क्षयोपशम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद ४५

अर्थ—जहा अनन्तानुबन्धी ४ प्रकृति क्षेपे हात है, अरु मिथ्यात, मिश्र ए दोउ प्रकृति उपशम है, अरु एरु ममस्मित मोहनी उद है । तब इहि दशा में जो क्षयोपशम

सहित ऋदक सम्यक्त भयी है तार्की यह प्रथमभेद है ४५
दोहरा

पच क्षपे इक उपशमे, इक वेदे जिहि ठौर ।
सो क्षयोपशम वेदकी, दशा दुतिय यह और ॥

अर्थ—जहा ४ अनतानु०, १ मिथ्यात मोहिनी एव ५ प्रकृति खपी है अरु एक मिश्रमाहनी उपशमी है अरु १ सम्यक्त मोहिनी वेदे है, तत्र क्षयोपशम सहित ऋदक सम्यक्त की यह दूसरी दशा भई ॥ ४६ ॥

अथ—क्षायिक वेदक यथा । दोहरा ।

क्षय पट वेदे एक जो, क्षायिक वेदक सोय ।
पट उपशम इक प्रकृति विद, उपशम वेदक हाय ॥

अर्थ—अब जो क्षायिक सहित वेदक है अरु उपशम सहित ऋदक है तार्की प्रभार है । ४ अनतानुबन्धी अरु मिथ्यात मोहिनी ५, मिश्रमोहिनी एव ६ प्रकृति खपी है अरु एक सम्यक्त मोहिनी वेदे है तो क्षायिक वेद कहिये, अरु एजु पूर्व ६ प्रकृति कही मो जाके उपशमी है अरु सम्यक्त माहनीय वेदे है तो उपशम ऋदक सम्यक्त कहिये ।

दाहरा

उपशम चायिककी दशा, पूरव पट् पद माहि ।
कही प्रकट अत्र पुनरुक्ति, कारण वरणी नाहि ॥

अर्थ—चयोपशम नामें जो सम्यक्त कही है ताकी दशा तो पूरव पट पद माहि कहतें पिछलै छप्पय छन्द म ही कही है सा ऐसे सातमा माह कछु खपे कछु उपशम करि राखे एमे प्रकट रही है तार्त इहा फेरि रहता में पुनरुक्त दोष लागे ता कारनतें औरों परनी नहीं ॥ ४८ ॥

अथ—भेद वर्णन—

चयापशम वेदक खिपक, उपशम समकित चार ।
तीन चार इक इक मिलत, सब नवभेद विचार ४६

अर्थ—अत्र सम्यक्त के मूल भेद ४ अरु उत्तर ६ सो रहै है । चयोपशम सम्यक्त १, वेदक सम्यक्त २, चायिक सम्यक्त ३, उपशम सम्यक्त ४, ऐसे मूलमें च्यारि समकित भए तामें चयापशमके ३ भेद वेदकके ४ भेद, चायिक की १ भेद, उपशमकी १ भेद, सब मिलि सम्यक्त्वके ६ भेद भये ।

अथ—निश्चय व्यवहार कथन । सारठा ।

पूवे व्यवहार, अरु सामान्यविशेष वि

कहूँ चार प्रकार, रचना समकितभूमि की ५०

अर्थ—अब निश्चयादिक तें सम्पत्तकी अवस्था कहै है—अब मैं निश्चय करिऊँ, व्यवहार करिऊँ अरु सामान्य धर्म तें, विशेष धर्म त सम्पत्त क भूमि की चार प्रकार रचना ह सो कहा हौ ॥ ५० ॥

सवेया ३१ सा

मिव्यामति गठि भेदि, जगी निरमल ज्याति,
जोग सो अतीत सो ता निहचै प्रमानियै ।
वहे दुद दशासों कहावे जोग मुद्रा धरै,
मति श्रुति ज्ञान भेद व्यवहार मानिये ॥
चेतना चिह्न पहिचानि आपापर वेदे,
पौरुष अल्प तात सामान्य वखानियै ।
करे भेदाभेद को विचार विसताररूप,
हेय ज्ञेय उपादेय सो विशेष जानिये ॥ ५१ ॥

अर्थ—मिव्यात्व ग्राह्य भेदि कै जो आत्मा की निर्मल ज्योति जगी है अरु जा ज्याति मन वचन काय योग सों

अतीत रहते रहित है, मो तो सम्यक्त निश्चय नय त प्रमान करिये, अरु सम्यक्त्व दशासों वर्तमान हूँ है इतने बहु विरूप त धूम धाम दशासों रते है तन तो एमे कहावे जा ए जागमुद्राधारी है, इहु मतिज्ञानी है, इहु श्रुतज्ञानी है ऐसे भद व्यवहार नय है । आत्मा को चेतना रूप चन्ह रहते लक्षण पहिचान के आत्मद्रव्य का अरु परद्रव्य की देहे है पर अन्तराय के उदय ने पारप पराक्रम अल्प है, इतने अविरती है तात एक मामान्यपणे सम्यक्त कहिये । गुण अरु गुणी का भेद नो विचार विस्ताररूप कर जैसे आत्मा गुणी है ज्ञानादिक गुण हैं, तारुं भेद अभेद को विचार करना एमे हेय ज्ञेय उपादेय का विचारि राखियो । ऐसे विशेषण सम्यक्त जानिये ॥ ५१ ॥

सारठा

तिथि सागर तेतीस, अ तमुहूरंत एक वा ।

अविरतिसमफित रीति, यह चतुर्थगुणस्थान इति

अर्थ—अविरत सम्यक्त की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर होइ । वा कहते अथवा जघन्य १ अन्तमुहूर्त्त

अविरतिसम्यक्त की रीति कहते

भाति हाय । यह चोया गुणथानौ इति रुहता ममाप्त
भर्या ॥ ५२ ॥

अथ—पचम गुणस्थान आरभ । दोहरा ।

अथ वरनू डक्वीस गुण, अर वावीस अभक्ष ।
जिन्हके सग्रह त्यागसो, शाभे श्रावक पक्ष ५३

अथ—अथ पाचमा गुणस्थानके निवरनको आरम्भ करे
हे—अथ पचम गुणस्थान लायक के २१ गुण कहौ हौ ।
अरु इन्हि के २२ अभक्ष्य हे मा रुहौ हौ जिन गुण के
सग्रह सों, जिन्हि अभक्ष्यक त्यागसौ श्रावकको पक्ष शाभे
भागमान होइ ॥ ५३ ॥

अथ—अथ श्रावक इन्हिस गुण कथन । सर्वेया ३१ सा ।

लज्जावत दयावत प्रसंत प्रतीतवत,

परदोषका ढकैया पर-उपकारी है ।

सौम्यदृष्टी गुणग्राही गरिष्ट सबको इष्ट,

सिष्टपक्षी मिष्टवादी दीरघ-विचारी है ॥

विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ,

न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी है ।

सहज विनीत पाप क्रिया सों अतीत ऐसा,

श्रावक पुनीत इक्कीस गुण धारी है ५४

अथ—अथ श्रावक के २१ गुण के नाम कहे हैं—

लज्जावन्त होइ १, दयावन्त होइ २, शक्तिमूति होइ ३, प्रतीति
वन्त होइ ४, पराय दापका ठाकरुनहार होइ ५, परउपकारी होइ
६, मौम्यदृष्टि होइ ७, गुणग्राही होइ ८, गुरुग होइ ९, सयको
बल्लभ होइ १०, शिष्टाचारकौपक्षी होइ ११, मिष्टवचन धोल
१२, ऊँ डौ विचारै १३, विशपज्ञान कौ जाननहार १४,
शास्त्ररमकौ जाननहार १५, कौनों उपगार जानै १६, तिन्हि
उपगारी का जानै १७ धर्म कौ जाननहार होइ १८ न ता
दीनपना ग्रहै न अभिमानी रहै असे व्यसहार में मध्यस्थ
रहै १९ सहन स्वभावै विनयगत होइ २०, अरु पाप की
क्रिया सा अतीत कहत रहित होइ २१ ऐसों श्रावक पुनीत
कहतें पत्रि २१ गुण कौ धरनहार होइ ॥ ५४ ॥

अथ—बावीस अभिन्य वर्नन । कबित छद् ।

ओरा घोर वरा निशि भोजन,

यह बीजा वैगण सधान ।

पीपर वर उ वर कठु वर,

पाकर जो फल होय अजान ॥

कदमूल माटो विप आमिप,

मधु माखन अरु मदिरा पान ।

फल अतितुच्छ तुपार च लितरस,

जिनमत ये वावीस अखान ॥५५॥

अर्थ—अत्र जघ य श्रायक को ही २२ उस्तु अभक्ष्य
 सो कहै है, गडा १, काचै धोलि बड़ा २, रात्रिभोजन
 बहु बीजा फल दाडम प्रमुख ४, बैंगन ५, अवाणो ६,
 मी पीपी ७ बड़ वृक्ष के फल ८ गून्हर कः फल ९ कठु
 के फल १० पाकर के फल ११ अरु जासा जान पि
 नहीं सो अजान फल १२ कदमूल जाति सर्व १३
 १४ अफीम प्रमुख १५ माम १६ शहद १७ माखन
 मद मी पीपी १८ अति छोटी काचौ फल २० हिम
 जासौ वण रघ रस स्पर्श फिर गर्यो २२ श्री विनेश
 मत धारी का ए २२ उस्तु अभक्ष्य है खाद्य नहीं ।

दाहरा ।

अथ पचम गुणस्थानकी, रचना वरण अल्प ।

जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ५६

अथ—अथ देशविरत नाम पाचमा गुणस्थान की रचना अन्य मात्र वर्ना हों जिन्हि गुनयानाम ११ प्रतिमा धारियै है प्रतिमा ऐसा नाम चारित्रिकल्प सौ है ॥५६॥

अथ-एकादश प्रतिमा नाम कथन । सर्वया ३१ मा ।

दशन विशुद्धकारी वारह विरतधारी,

सामाङ्कचारी पर्व प्रापथ विधि वहे ।

सचित्त का परिहारो दिवा अपरस-नारी,

आठों जाम ब्रह्मचारी निरारभी व्हे रहे ॥

पाप परिग्रह छडे पाप की न शिक्षा मडे,

कोउ याके निमित्त करे मो वस्तु न गहे ।

एते देश व्रत के धरैया ममकिती जीन,

ग्यारह प्रतिमा तिन्हे भगवतजी कहे ५७ ।

—६— ग्यारह प्रतिमा के यथाये नाम रुहै है —

जहा स्थूल प्राणातिपात विरमण १, स्थूल मृपावाद विरमण २, स्थूल अदत्तादान विरमण ३, स्थूल मृपावाद विरमण ४, स्थूल परिग्रह विरमण ५ ए पाचो अणुव्रत । दिसि परिमाण १, भागोपभोग परिमाण २, अनेध दड त्याग ३, ए तीन गुणव्रत । सामायिक धारे १, पोमह धारे २, देशावगासिक धारे, ३ अतिथिसर्वभाग ४, ए चारि शचाव्रत यांत व्रत प्रतिमा भई । ॥ ६० ॥

अथ—तृतीय प्रतिमा अथा । दोहरा ।

दर्व भाव विधि सजुगत, हियै प्रतिज्ञा टेक ।
तज ममता समता गहै, अत मुहरत एक । ६१ ॥

अर्थ—अब तीसरी सामायिक प्रतिमा की व्यौरो रहे है । १० दाप उचन रु, १२ दोष जाया के टालखें ए द्रव्य विधि १० दाप मनके टालखें ता फिर सयुक्त । अरु हिये में १०८ पच परमष्ठी मत्र के स्मरण लो ऐसे ओर काऊ प्रतिज्ञा टेक राखिके ममता तजिये ममता ग्रहनी, ए भाव विधि एक अंतरमुहूर्त्त काल पर्यन्त सामायिक चारित हाइ ॥ ६१ ॥

चौपाई ।

जो अरि मित्र समान विचारै,

आरत रौद्र कुध्यान निवारै ।

संयम सहित भावना भावे,

सो सामाजकवत् कहावै ॥ ६२ ॥

अर्थ—जो कोउ शत्रु मित्र का समान विचारै, आरत-रौद्र ध्यान जो बुरे ध्यान है तामै निवारै ५ स्वर सहित होइ, १२ भाव नाभावै, सोई सामायिकधारी आरक कहियै है ॥ ६२ ॥

अथ—चतुर्थी प्रतिमा यथा । दोहरा ।

सामायिक की दशा, चार पहरलों होइ ॥

अथवा आठ पहरलों, पोसह प्रतिमा सोइ ६३

अर्थ—अब चौथी पोसह प्रतिमा कौ व्योरो रहै है—पूवे जो सामायिककी दशा रही है, तैसी दशा चार पहरलों होइ अथवा तैसी दशा आठ पहर रहै, सोई पोसह प्रतिमा धारी आरक कहियै ए प्रतिमा धारी चौदसि, आठसि अमावसि, पूनसि पोसह करै ॥ ६३ ॥

अथ—पचमी प्रतिमा यथा । दोहरा ।

जो सचित्त भोजन तजै, पीवै प्रासुक नीर ।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पच प्रतिज्ञा गीर ॥

अर्थ—अरु पचमी सचित्त परिहार प्रतिमा कौ व्यौरौ कहै है । जो सचित्त भोजन का त्याग करै अरु फामू जल पीये, इहि भाति जो पुरुष सचित्त वस्तु कौ करै पूर्वली प्रतिमा तै इहा एती बढतो मा तौ पच प्रतिज्ञाधारी कहवै पचमी प्रतिमा कौ धरनहार । ॥ ६४ ॥

अथ—पष्ठी प्रतिमा यथा । चौपाई ।

जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले,
तिथि आये निशि दिवस सभाले ।
गहि नव वाडि करे व्रतरूपा,
सो पट्ट प्रतिमा श्रावक अख्या ।

अथ—अरु छठी दिनब्रह्मचर्य प्रतिमा कौ व्यौरौ कहै है सचित्त परिहारिक पूर्वली भाति है, अरु दिन म ब्रह्मचर्य बढतो पाले अरु पचपमी आयें दिन रात में इतनै आठा पहर ब्रह्मचर्य राखै तहा ६ वाडि करिके व्रत की रक्षा करे

सो अच्छा पुरुष छठी प्रतिमाका माधनहार होइ ॥६४॥

अथ—सप्तमप्रतिमा, यथा । चौपाई ।

जा नव वाडि सहित विधि साधे,
निशि दिनि ब्रह्मचर्य आराधे ।

मोसप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता,
शील गिरोमणि जगत विख्याता ॥

अर्थ—अब सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमा कौ ब्यारो कहै है । जा कोऊ श्रावक ८ वाडि महित नो ब्रह्मचर्य की विधि है, तिहि विधि नौ धारत रात दिन ब्रह्मचर्य ही आराधतौ रहै अरु जा पीछ प्रतिमा की क्रिया रुही है, सो तौ लियै ही रहै है, ऐसा जा श्रावक है सो तौ सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमा कौ धरनहार ज्ञाता पुरुष शीलशिरामणि छेमे जगत में विख्यात कहतें प्रसिद्ध होइ ॥ ६४ ॥

अथ—नौ वाडि यथा । कवित्त ।

तिय थल वाम प्रेम रुचि निरसन,

दे परीत्र भारसे मधुवैन ।

पूरव भोग केलि रस चितन,



गरुड आहार लेत चित चैन ॥

करि सुचि तन सिंगार बनावत,

तिय परजक मध्य सुख सैन ॥

मनमथ कथा उदर भरि भोजन,

ये नव वाडि कहे जिन वैन ॥६६॥

अर्थ—अथ प्रसंग तैं नौ वाडि कहै है—जहा स्त्री
 कौ वास तहां वास न करनो १, प्रमरु चि राखिकै अङ्गो-
 पांग देखने नहीं २, दृष्टि दोष निवारन कौ आडी परीछि दे
 कैं मधुर वचन सोलिवो सुने नहीं ३, पूर्वकाल में जो भोग
 केलि करी हाइ ताकौ रस चितवै नहीं ४, चित्तके चैन कौ
 घृतादिक सहित गरिष्ठ अरइष्ट आहार लगे नहीं ५ स्नान
 मनन तैं शरीर कौ परित्र करिकै श्रंगार शोभा वनावै नहीं
 ६, स्त्री के सोइय कौ जा पर्यक कहत पलग ताकै मध्य
 सुख शयन करै नहीं ७, मनमथ कहतें कदर्प कथा सो न
 कहै ८, उदर भरि भोजन न करै ९, ए नव वाडि जैन

अथ—अष्टमी प्रतिमा यथा । दोहरा ।

जो विवेकविधि आदरे, करे न पापारभ ।

सो अष्टमप्रतिमा धनी, कुगतिविजै रणधमा ६७।

अर्थ—अष्ट आठमी निरारभ प्रतिमा कौ व्योरो रहै है—जो कोऊ श्रावक पाछली मर्वाकिया नो तौ विवेक की विधि विशेष आदरे अरु पापार भ हात हातते न करै सोतो आठमी निरार भ प्रतिमा कौ धरणहार कुगति के विजय कौ रणधम रूप हुइ रह्यो है ॥ ६७ ॥

अथ—नवमी प्रतिमा यथा । चौपाई ।

जो दशधा परिग्रह को त्यागी,

सुख सतोष सहित वैरागी ।

सम रस सचित किंचित आही,

सो श्रावक नौ प्रतिमावाही ॥ ६८ ॥

अर्थ—अथ नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा कौ व्योरो कह है—धन १, धान्य २, चेत्र ३, वास्तु ४, रूपा ५, सोना ६, कासा ७, भाषा गृहोपकरण ८ द्विपद ९,

भाति परिग्रह की त्यागी होइ, सुख

वरागी होइ, उपशम रस सों सिंचित कहुँत भीग्यौ रहे अरु
 किंचित ग्राही कहुँत कछु इक अशन बसन ग्रह, अरु और
 क्रिया सब आठमी प्रतिमा ज्यों होइ सो तौ थावरु नौमी
 प्रतिमा कौ धरनहार है ॥ ६८ ॥

अथ—दशमी प्रतिमा यथा । दोहरा ।

पर कौ पापारभ कौ, जो न देइ उपदेश ।
 सो दशमी प्रतिमासहित, श्रावक विगतक्लेश ॥

अर्थ—अब दशमी पापोपदेश त्याग प्रतिमाकी ब्योरी
 कहै है—नौमी प्रतिमा लीं गृह कुटुम्ब परिवार कौ पाप
 उपदेश दे पै इहा पापार भकौ उपदेश त्याग सों तौ श्रावक
 दशमी प्रतिमा सहित जानियै सोई श्रावक विगत क्लेश
 कहते क्लेशरहित भयौ ॥ ६९ ॥

अथ—ग्यारमी प्रतिमा यथा । चाँपाई ।

जो स्वच्छ द वरते तजि डेरा,
 मठ मडप में करे बसेरा ।

उचित आहार उदड विहारी,
 सो एकादश प्रतिमा-धारी ॥ ७० ॥

अर्थ—अब ग्यारमी उरिष्ट त्यागी प्रतिमा कौ व्यौरो कहेँ है—नो थावरु अपना घर वार में डेरा छाँडि कै स्वछद वरते अरु मठ म डप में वास करै, आधा कर्मो आहार कौ त्यागै, योग्य आहार लेय अरु उदड-विहारी हाइ, साधु ज्यौं होइ, सो तौ ग्यारमी प्रतिमा कौ धरन-हार हाइ ॥ ७० ॥

दोहा ।

एकादश प्रतिमा दशा, कही देशत्रत माहि ।
वही अनुक्रम मूलसों, गही सु छूटै नाहि ॥७१॥

अर्थ—ए ग्यारमी प्रतिमा की दशा पाँचवा गुनथाना देशविस्त माहि कही । वही अनुक्रम मूल सों गही ही रहै, प छूटी नाहीं अरु बढ़ती बढ़ती क्रिया हाइ ॥ ७१ ॥

अथ जघन्य मध्यम उत्कृष्ट कथन । दोहरा ।

पट प्रातिमाताई जघन, मध्यम नव पर्यन्त ।
उत्कृष्ट दशमी ग्यारमी, इति प्रतिमा विरतत ७२

अर्थ—अब ग्यारह प्रतिमा धारिनके विषेँ जघन्य-

उत्कृष्ट दशा कहेँ—छठी दिन ब्रह्मचर्य

लों जघन्य श्रावण होइ, इहा तँ आगे नामी परिग्रहत्या
 प्रतिमा लों मध्यम श्रावण होइ, अरु दशमी ग्यारमी प्रतिमा
 की धनी उत्तम श्रावण होइ । इतनै प्रतिमा को घृता
 कर्षो ॥ ७३ ॥ इतनै प्रतिमा का अधिकार पूर्ण भयो ।

अथ—पंचम गुणस्थान स्थिति कथन । चौशई ।

एक कोटि पूरव गणि लीजे,
 तामें आठ वर्ष घटिदीजे ।

यह उत्कृष्ट काल धिति जाकी,

अतमुहूर्त जघन्य दशाकी ॥ ७३ ॥

अर्थ—अब पंचम गुणस्थानक जेतो काल लों रहै
 मो या गुणस्थाना की स्थिति कहै है—एक कोटि पूरव
 वर्ष सख्या कीजे तिन्हि वर्षनही सख्यामें आठ वर्ष कम
 करिये पीछे जो वर्ष रहै सो दशवत्त गुणस्थान की उत्कृष्ट
 काल स्थिति है । अरु या देशवत्त की जघन्य दशा की
 स्थिति एक अतमुहूर्त काल होइ ॥ ७३ ॥

अथ पूषसख्या कथन । दोहरा ।

सत्तर लाख किरोर मित्त, छप्पन सहस किरोड ।

येते वर्ष मिलाय के पूरव स ख्या जोड ॥७४॥

अर्थ—पूर्वकाल में जेती वर्ष सख्या होइ सी कहै है ।
७० लाख कोडि वर्ष एती मिति रहते परिणाम तापरि
५६ हजार कोडि ओरो भेलिये । एते वर्ष मिलाइ कै पूर्व
कालके वर्षकी जोडि हाइ ७०५६००००००००००००००
एते आरु होइ । लौकिक व्यवहारमें ७ नील, ५ खर्ब, ६०
अर्ब एते वर्ष होइ ॥ ७४ ॥

अथ—अन्तरमुहूर्त्त प्रमाण कथन । दोहरा ।

अत मुहूर्त्त द्वै घडी, कछुक घाटि उत्कृष्ट ।

एक समय एकावली, अतर मुहूर्त्त कनिष्ट ७५

अर्थ—अथ अन्तरमुहूर्त्त काल की जघन्य व उत्कृष्ट
प्रमाण कहै है—दा घटी में एक समय जब रुम हाय तब
तो उत्कृष्ट अन्तरमुहूर्त्त काल होइ अरु जा एक आवली परि
१ समय सो कनिष्ट कहतै जघन्य मुहूर्त्त होइ ॥ ७५ ॥

। दोहरा ।

यह पचम गुणथान की, रचना कही विचित्र ।

कृष्णम गुणथानकी, दशा कहै सुन नि

अर्थ—ऐसे देशजत -पचम गुणधाना की विचित्र रचना
रुही अब ह मित्र तू सुनि, छट्ठम गुणस्थान की दशा को
रुही हा ॥ ७६ ॥

अथ—प्रमत्त गुणस्थानक यथा । दोहरा ।

पच प्रमाद दशा धरे, अट्टाइस गुणवान ।
थविरकल्प जिनकल्पजुत, हे प्रमत्तगुणवान ७७

अर्थ—अब प्रमत्त नाम छठा गुणस्थान की अवस्था
कहे है-धर्म-रागादिक पाच प्रमाद की दशा धारै है,
अरु साधु के २८ मूल गुण कहे सा दिगजर सम्प्रदाय
तै हैं स्थविर कल्प सो स्थविरको आचार जिन्ह को आचार
तिन्हतै युक्त है एमे प्रमत्त गुणधान होइ ॥ ७७ ॥

अथ—पच प्रमाद यथा । दोहरा ।

धम राग विकथा वचन, निद्रा विषय कपाय ।
पच प्रमाद दशा सहित, परमादी मुनिराय ७८

अथ—अब पाच प्रसाद की नाम गिनती कहे है-
धर्म राग राखें १, विकथा वचन बोले २, निद्रा सोत्र ३, रस-
नन्द्रिय प्रमुख के विषय सेवें ४, कपाय सेवें ५, इन्हि दशा

सहित जा मुनिराज होइ सा प्रमादी प्रमत्त रुहियै ॥ ७८ ॥

अथ—अठईस मूल गुणरुथन । सबैया ।

पच महाव्रत पाले पच समिति सभाले,
 पच इंद्रि जीति भयो, त्यागी चित चैन को ।
 पट आवश्यक क्रिया दर्वित भावित साधे ,
 प्रासुक धरा में एक आसन है सैन कौ ॥
 मजन न करे केश लु चे तन-वस्त्र मु चे,
 त्यागे दत्तधावन सुगधश्वास वैन कौ ।
 ठाडो कर से आहार लघु भु जि एक वार,
 अठइस मूलगुण धारी जती जैन कौ ॥७९॥

अर्थ—अब धी मुनिराज के २८ मूलगुण कहै ह,
 सन्माऊ पाणाइ-नायाऊ-रेमण इत्यादिक ५ महाव्रत
 पाले, ईर्या समिति प्रमुख ५ समिति सभालिबो करै, ५
 इन्द्रिय कौ जीतनहार होइ अरु जो विषय सेवन तै चित्त
 चैन होइ ताका त्यागी होइ १५ । गुण सामायिक प्रमुख ६
 आवश्यक क्रियाहै द्रव्य तै ही साधै अरु भाव
 साधै ११ गुण भए ।

अरु प्रासुक पृथ्वी प्रमुख सज्या विधे प्रमाणापेत एव
 शयन आसन नै राखै एव २२, स्नान न करे एव २३,
 केश लॉच करे २४, शरीर वर्ण वस्त्र को त्याग करे एव
 २५, दातन न करे, एव रवास वदन को सुगन्ध मुह छन
 प्रमुख न चन्ये २६, ऊभौ ही आहार को करतें कहतें
 हाय तै प्रसै एव २७, लघु भु जे अ त प्रात आहार भु जे
 सोई एकटक एव २८ ऐसे २८ मूल गुण को धरनहार जैन
 दर्शनी जती होइ ॥ ७६ ॥

अथ—महाव्रत यथा । दोहरा ।

हिसा मृपा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज ।
 किञ्चित्त्यागी अणुव्रती सवत्यागी मु निराज ८०

अर्थ—अब महाव्रत कई है—जीवघात १, असत्य
 २, चोरी करनी ३, मैथुन ४, परिग्रह सामग्री ए ५ आसत्र
 है या को किञ्चित्त्यागी—सो कह्ये इक त्यागी सो तौ
 अणुव्रती अरु इन्हि को जो सगथा त्यागी सो तौ मुनिराज
 कहियै ॥ ८० ॥

अथ—पच समिति यथा । दोहरा ।

चलै निरखि भासे उचित, भखे अदोष ग्रहार ।

लेइ निरखि डारे निरखि, समिति पचपरकार

अर्थ—समिति कहियै सावधानाई, सा पाच कहै है । निरखि करि चालै सो ईर्याममिति १, योग्य वचन बोले सा भाषा समिति २, दूषणरहित आहार ले सो एषणा समिति ३, वस्त्र पात्र निरखि कै ले सो आदान निक्षेपण समिति ४, और मल मूत्रादिक निरखिकै डारै सा पारट्टावणी समिति होइ है ॥ ८१ ॥

अथ—पट आवश्यक यथा । दाहरा ।

समता वदन स्तुति करन, पडकोना सज्जाय ।
काउसग मुद्राधरन, ए पडावश्यक भाय ॥८२॥

अर्थ—अश्य करिये ताते ए ६ आवश्यक कहिये ताते नाम कह-सामायिक धरनी १, गुरुवन्दना २, २४ जिनेश्वर की स्तुति करनी ३, अतीचार तें निवर्तना सा पडिकोना प्रतिक्रमण ४, स्वाध्याय करनी ५, काउसग मुद्रा धरनी ६, ए आवश्यक भाव कहिये ॥ ८२ ॥

अथ—स्थनिरकल्प जिनकल्प कवन । सर्वेया ३१ सा धरिक्कल्पि जिनकल्पि दुविध मुनि,
दोउ वनवासी दोउ नगन रहत है ।

दाउ अठावीस मूलगुण के धरैया दोउ,
 मरुस्य त्यागि व्है विरागता गहत हे ॥
 थविरकल्पि ते जिन्ह के शिष्य शाखा होय,
 वेठि के सभामें धर्मदेशना कहत हे ।
 एकाकी सहज जिनकल्पि तपस्वी घोर,
 उदैकी मरोर सों परिसह सहतु हैं ॥ ८३ ॥

अथ—अथ स्थविरकल्पी अरु जिनकल्पी कौ भेद
 कहै है—स्थविरकल्पी अरु जिनकल्पी ऐसे दो भाति के
 मुनीश्वर होइ ए दोऊ बनवास में रहें, दोऊ नगे रह, ए
 दोऊ अठावीस मूल गुण के धरनहार होइ, ए दोऊ सव्वे-
 त्यागी हुइ के विरागभाव ग्रहैं हैं, ए दोऊ ऐसे कहै पै
 या दोऊ में स्थविरकल्पी सो कहियै जिन्हि क शिष्य साखा
 होइ अरु सभा म वेठ के धर्मदेशना कहै है, अरु जो जिन-
 कल्पी होइ सो एकाकी हाइ घोर तपस्वी होइ, अरु कर्म उदय
 की मरारि सों जे परिसह उपजै है सो सहै है ॥ ८३ ॥

अथ—वागीस परिसह यथा, सबैया ३१ सा ।
 गीष्प में धूप थित, सीत मे अकप चिन्ना

भूखे धरे धीर प्यासे नीर न चहत है ।
 डंसमसकादिसों न डरे भूमिसैन करे,
 वध वध विधामें अडाल व्है रहत है ॥
 चर्या दुख भरे तिण फास सो न थरहरे,
 मल दुरगध की गिलानि न गहतु है ।
 रोगनि को करे न इलाज ऐसो मुनिराज,
 वेदनी के उदै ए परिसह सहतु है ॥ ८४ ॥

अर्थ—अब प्रसंगतै २२ परीसह रुहै है—साधु की सहिवा योग्य सो परीमह रुहीयै । उष्ण काल विषै धूप में आतपता ग्रहै १, शीतकाल विषै शीत सहेँ, चित्त में कर्षे नहीं २, भूखे थके धैय धारै अनखणी ग्रहै नहीं ३, प्यासवत थके सदोष जल चाह नहीं ४, नगे शरीर को डस ममका दिरू चूटै तौह डरै नहीं ५, भूमि शैग्या करे ६, वध कहते मरणात कष्ट, वध विधा कहते भाति भाति वधनादि कष्ट तात अडाल रहे ७, चर्या कहिये विहार ताकौ दुख भरै उदीरिलै ८, विहार में अधवा शयनासन विषै कठोर तृण स्पर्श मो थरके नहीं ९, मल की जा दुर्गंध है तासों गिलानि-

कहत छग दुगध्या सौ ग्रहै नहीं १०, रागनि को
करै नहीं, रोग वेदना महुँ ११, असो मुनिराज
वेदनीय कर्मके उदयते ए ११ परीसह उपने है सो स

अथ—कुडलिया छद ।

येते सकट मुनि सहे, चारित्र मोह उदोत
लज्जा सकुच दुख धरे नगन दिगम्बर हो
नगन दिगम्बर होत श्रोत्र रति स्वाद न से
त्रिय मनमुख दृग रोक, मान अपमान न
धिर व्हे निर्भय रहे, सहे न कुवचन जग
भिक्षुक पद सग्रहे, लहे मुनि सकट येते ।

अर्थ—चारित्र मोहनीय कर्म के उदोत कहत
हाते मुनि पैं एते सकट आनि परै है, सा सहे
सकट की गिनती करै है, नगन दिगम्बर हो
लज्जा त सकोच दुख उपजै है ताका धारै—इ
सकट तै न भाजै १, औरो ही नगन दिगम्बर
श्रोत कहते इन्द्रिय ताके रतिस्वाद को न सेवै इतने

हैं इतने स्त्री के हाव भाव सों भूके नहा ३, काहू सत्कार
 न्हो, भरु काहू असत्कार कीन्दों या परि विपमता न
 ॥ ४, काहू मय सों भागै नहीं धिर रहै निर्भय रहे ५,
 गत में जेतैरु कु वचन है, आक्रोश वचन हे सो सन ही
 है ६, मिचा ग्रहण त भिक्षु पद सग्रहै यं याचा संकट
 न भाजै ७ । चारित्रमोह को उदय तें मुनि लोक एतें ७
 सिट लहै है सो महै ॥ ८५ ॥

दोहरा ।

अल्पज्ञान लघुता लसे, मति उत्कर्ष विलोय ।
 ज्ञानावरण उदात मुनि, सहे परीमह दोय ८६

अर्थ—निना पढ़िय अल्प ज्ञान त सबनि में अपनी
 लघुता हूँ है सोऊ लखि कै सहे, अपनी मति की उत्कृष्ट
 कहतें उत्कृष्टपनी विलोय कहतें देखिक गुरुता सहे, जैसे
 ज्ञानावरणी कर्म के हाते अज्ञान परीसह अरु प्रज्ञा परीमह
 ए दाह परीसह उपजै है सो सहे है ॥ ८६ ॥

दोहरा ।

रोके उमंग जु लाभ की, अतराय के होत ॥७॥

अर्थ—दर्शन मोहनीय के उदात्त कहतैं उदय हातैं
जा अदर्शन कहतैं सम्यग्दर्शन की मलिनता उपजै है,
ताकी दुष्टता दशा है पै सम्यग्दर्शन ते न भाजै १,
अतराय कर्म के उदय होते जो लाभ की उमंग रोकी रहै
है, तातैं अनाभ को सहै १ । एते २२ परीसह रुहे ॥८७॥

अर्थ—वासीस परीसह वर्नन । सबैया ३१ सा ।

एकादश वेदनी की चारित माहकी सात ,

ज्ञानावरणी की दोय, एक अतराय की ।

दशन मोहनी एक द्वाविशति वाधा सब ,

केई मनसाकि केई वाकी केई कायकी ॥

काहु को अल्प काहु सौ बहु उनीसताइ ,

एकहि समयमे उदै आवै असहायकी ।

चर्या धिति सज्या मांहि एक शीत उष्ण मांहि

एक दोय हाहि तीन नाहि समुदाय की ॥८८॥

अर्थ—अजिन २ कर्म के जेते परीसह उपजै

वासीस परीसह वर्नन । सबैया ३१ सा ।

कान्हा उपजै है, चारित्र माहनी क्रम की कीन्ही ७ वाधा उपजै है, ज्ञानावरनीकी कीन्ही दो वाधा उपजै है, अन्तराय की १ वाधा उपजै है, दर्शन माहनीयकी कीन्ही १ वाधा उपजै है। ए मर ही वाधा मिलकर २२ होइ। एई २२ परीमह रहिये। या २२ वाधा में एई मनमा की है। केंद्र रचन की है ओर एई कायकी हैं या २२ वाधा मादिली काहकों अन्व एक दोइ उपजै काहकौ बहुत उपजै ताँ एक ही समै में १६ वाधा उदै आवे। तामें जो अमहाय की कहतै जो वाधा साथ २ ही गोलै है पै साथ ही बने नाहीं तर तामें एक ही वाधा एरु समै होइ सो असहायकी कहिये जेमे चर्या परीमह चालिवैतै उपजै है। धिात कहतै निपत्रा तामें परीमह रहिये ते उपजै है शयाकी वाधा रहिवा तै उपजै है अरु शीत वाधा उष्ण वाधा में एक सम एक ही वाधा उपजै ताते या ५ परीमह में १ अथवा २ अथवा ३ एक समय होहि पै समुदाय रूप न हाइ ॥ ८ ॥

इतनै परीमह अधिकार सपूर्ण भयो ।

दाहरा ।

ज्ञाना विधि सकट दशा, सहि साधे ।

थविरकल्प जिनकल्प धर, दोऊ सम निर्ग्रथ ८६

अर्थ—ऐसे नानाप्रकार संकट है । ताकी दशा सहिकै
मक्ति मार्ग माधै तातें थविरकल्प के धरनहार अरु जिन
कल्पके धरनहार ए दोनु निर्ग्रथ मम परोपरि है ॥ ८६ ॥

अथ—स्थविर कल्पा तार-तम्य कवन । दोहरा ।

जो मुनि स गतिमें रहे, थविरकल्प सो जान ।

एकाकी ज्याकी दशा, जो जिनकल्प वखान ६०

अर्थ—अब स्थविर कल्प में अरु जिन कल्प में कछु
तफावत है सो कहै है । जो मुनीश्वरगणकी सगति में रहे
सा तो थविरकल्प जानिये । जाई गणकी निष्ठा नाहीं ताते
एकाकी जाकी दशा है, सो जिनकल्पी वखानिये ॥ ६० ॥

चौपाई ।

थविरकल्प-धर कछुक सरागी,

जिनकल्पी महान वैरागी ।

इति प्रमत्त गुणस्थानक धरनी,

पूरण भई जयार्थ वरनी ॥ ६१

अर्थ—एदोना निर्ग्रथ में थविरकल्प की धरनहार

कल्लुक सराग दशामें है । अरु जो जिनरूपी है सो महा-
वैरागी है, इतने प्रमत्त धानक की जो भूमिका बाधी अरु
यथार्थ कहैं साचिपन वरनी सा पूर्ण भई ॥ ६१ ॥

अर्थ—सप्तम गुण धानक वर्णन । चौपाई ।

अथ वरणो सप्तम विमरामा,

अपरमत्त गुणस्थानक नामा ।

जहा प्रमाद दशा विधि नासे,

धरम ध्यान धिरता परकासे ॥ ६२ ॥

अर्थ—अथ सातमा गुणधानक कौ वरनन करै है ।
मुक्ति मंदिर कौ चढ़त जो सातमौ विग्राम है अरु अप्रमत्त
गुणस्थानक जाका नाम है सा अथ कहै जिहि गुणधाना
विषे धर्म रागादिक प्रमाद की विधि नाश हो जा पूर्व
गुणस्थान विषे धर्म-ध्यान चंचल हौ सो इहा विरपनै त
प्रकाश करै है ॥ ६२ ॥

दोहरा ।

प्रथम करण चारित्र को, जासु अन्त पद होय ।

जहा आहार विहार नहि, अप्रमत्त है सोय ॥ ६३ ॥

अर्थ—जिन गुणधाना के अंत पद विषै इतने छैलै
समय चारित्र मोहनीय कर्म भेदिवै कौ यथा प्रवृत्त नामें
प्रथमकरण भयौ, इहा धर्म-ध्यानकी धिरता ऐसी है जहां
आहार विहार क्रिया है नाहीं सा अप्रमत्त गुणस्थानरु होइ,
ए कथन दिगवर सप्रदाय कौ है ॥ ६३ ॥

अथ—अष्टम गुणस्थानक वर्णन । चौपाई ।

अव वरणू अष्टम गुणस्थाना,

नाम अपूरवकरण वखाना ।

कल्लुक मोह उपशम कर राखे,

अथवा किंचित जय करि राखे ॥ ६४ ॥

अर्थ—अव आठमा गुणस्थान कौ वर्णन करै है ।
अव आठमौ गुणधानौ वरनौ हौं जाऊँ नाम अपूर्व—करन
वखानियै है । अथ यहा तै श्रेणि चढ़िवै में जो उपशम
धरौ चढ़ै है तौ इहा कल्लुक मोह कौ उपशमाइ राखे अथवा
जो अपरु धरौ चढ़ै है तौ इहां चारित्र माह का कल्लुक जय
करि नाखे ॥ ६४ ॥

चौपाई ।

जे परिणाम भये नहि कबही,

तिनको उदै देखिये जबही ।

तत्र अष्टम गुणस्थानक होई,

चारित्र करण दूसरो सोई ॥ ६५ ॥

अर्थ—जो ऐसे परिणाम पहिले कबही काल में भए
नहा तिहि परिणामनि को जब ही उद्योत कहते प्रगटपना
देखिये है तत्र आठमा गुणधानरु होइ, याके छैहले समय
चारित्र मोहनीय कर्म भेदिये को अपूर्व करण नामे दूसरो
करण हुई चुनौ, याको नाम निवृत्ति पिण्य है ॥ ६५ ॥

अर्थ—नवम गुणस्थाना को वर्नन करौ हौं । चौपाई ।

अथ अनिवृत्तिकरण सुनि भाई,

जहा भाव थिरता अधिकाई ।

पूर्व—भाव चला—चल जेतै,

सहज अडोल भये सब ते ते ॥ ६६ ॥

अर्थ—अथ नवमा गुणधाना को वर्नन करौ हौं—

अथ अनिवृत्तिकरण गुणधानाको व्यवहार कहौ हौं सो भाई

अर्थ—जिन गुणधाना के अंत पद विषे इतने छैलै समय चारित्र मोहनीय कर्म भेदिवै को यथा प्रवृत्त नाम प्रथमकरण भयौ, इहा धर्म-ध्यानकी धिरता ऐसी है जहा आहार विहार क्रिया है नाहीं सा अप्रमत्त गुणस्थानक होई, ए कथन दिगवर सप्रदाय को है ॥ ६३ ॥

अथ—अष्टम गुणस्थानक वर्णन । चौपाई ।

अन वरणू अष्टम गुणस्थाना,

नाम अपूरवकरण वखाना ।

कछुक मोह उपशम कर राखे,

अथवा किचित्त जय करि राखे ॥ ६४ ॥

अर्थ—अब आठमा गुणस्थान को वर्णन करे हैं । अन आठमा गुणधानौ वरनौ हाँ जाई नाम अपूर्वे—करन वखानिये है । अन यहा ते त्रेणि चदिवै में जो उपशम धरौ चढ़े है तो इहा कछु मोह को उपशमाइ राखे अथवा जो अपरु धरौ चढ़े है तो इहां चारित्र मोह का कछु जय करि नाख ॥ ६४ ॥

चोपाई ।

परिणाम भये नहि कवही,

तिनको उदै देखिये जवही ।

न अष्टम गुणस्थानक होई,

चारित्र करण दूसरो सोई ॥ ६५ ॥

अर्थ—जो ऐसे परिणाम पहिले कबही काल में भए
तिन्हि परिणामनि को जव ही उद्यात रहत प्रगटपर्ना
वै है तव माठमो गुणस्थानक होई, याकै छैहलें समय
रं प्र मोहनीय कर्म भेदिवे को अपूर्व करण नाम दूसरो
ण हुई चुको, याको नाम निवृत्ति किये है ॥ ६५ ॥

अथ—नवम गुणस्थाना को वर्नन को है । चोपाई ।

अव अनिवृत्तिकरण सुनि भाई,

जहा भाव थिरता अधिकाई ।

पूर्व—भाउ चला—चल जेतै,

सहज अटोल भये सप्र ते ते ॥ ६६ ॥

अर्थ—अव नवमा गुणस्थाना को वर्नन करी
अव अनिवृत्तिकरण गुणस्थानाको व्यवहार कही को

तू मुनि जिहि गुनवाना विपै विरता भाव की अधिकाई
 है अरु जा पूर्ण भाव कृपाय नोकृपाय के उदय तै, जैतैरु
 चलाचल हुता सो भाव इहा सदज ही सव अडाल भए ।
 चौपाई ।

जहा न भाव उलट अधि आरे,
 सो नवमो गुणस्थान कहावे ।

चारित्र मोह जहा बहु छीजा,
 सोहै चरण करण पद तीजा ॥६७॥

अर्थ—जहा भाव चाँदिकै अरु तहा सौं उलटिकै अधि कहतै
 नीच न आवै ऐमे अनिवृत्ति कहावै इहा अनिवृत्ति को पर-
 मार्थ सिद्धांत में और भाति है । सो तौ नवमो अनिवृत्ति
 गुनवानो कहावे जहा चारित्रमोह कर्म बहुत छीज्यौ । सा
 यहु चारित्रमोह भेदवैकी तीसरी अनिवृत्तिकरन भया ॥६७॥

अथ—दशम गुणस्थानक वर्नन । चौपाई ।

कहूँ दशम गुणस्थान दु शाखा,
 जहा सूक्ष्म शिवकी अभिलाखा ।
 सूक्ष्मलोभ दशा जहा लहिये,

सूक्ष्मसापराय सो कहिये ॥ ६८ ॥

अर्थ—अब दशमा गुणस्थान को वर्नन करै है—
अब दशमों गुणस्थान कहों हों जो दुमाखा रुहते उपशम अरु
चपकृ ऐसे दाइ साखासों वरते है जिहि गुणथाना विषे सूक्ष्म
शिव पद की अभिलाषा है । ऐसी जहा सूक्ष्म लोभ दशा
पाइयै सोई सूक्ष्मसपराय कहिय । सपराय ऐसो कपाय को
नाम है ॥ ६८ ॥

अथ—एकादश गुणस्थान वर्नन । चोपाई ।

अब उपशात मोह गुणठाना,
कहो तासु प्रभुता परमाना ।

जहां मोह उपसमे न भासे,

यथाख्यात चारित परकासे ॥ ६९ ॥

अर्थ—अब इग्यारमा गुणस्थान को वर्नन करै है—
अब ग्यारमों उपशात मोह नामें गुणठानों रुहों हों अरु ताको
प्रभुता को प्रमाण रुहों हों जिहि गुणथाना विषे भाह कर्म
सबही उपसमें, उदयमें भासै नहीं अरु यथाचारित्रकी प्रमाश
है है जैसो नि.सग आत्माका स्वरूप है तमों प्रगटै है ॥ ६९ ॥

दोहरा

जाहि परस के जीव गिर, परे करे गुण रह ।

सो एकादशमी दशा, उपशम की सरहद १००

अर्थ—जो उपशम-श्रेणि चढ़िके अरु जिन्हि गुण-
याना का परसि के अरु ही जीव गिरि परै अरु जो गुण
प्रगटे है सो सब रह करै सो यहु इग्यारमी दशा भई इतने
उपशांतमोह गुणठानो भयो एती उपशमकी सरहद रहतै
मयादा भई ॥ १०० ॥

अथ—द्वादशम गुणस्थानक वर्नन । चौपाई ।

केवल ज्ञान निकट जहा आवे,

तहा जीव सब मोह छपावे ।

प्रगटे यथाख्यात परधाना,

सा द्वादशम क्षीण गुणठाना १०१

अर्थ—अब वारमा क्षीण मोह गुणठाना की वर्नन
कर है—जिहि गुणठाने केवलज्ञान निकट आवे है अरु
तहा जीव सब मोहको खपाइके और ३ घातिया कर्म
खपावे अरु जहा प्रधान उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्रगटे

ऐसे प्रकारतें जो है वारमा क्षीणमोह गुणथाना कहिये १०१

अथ सप्त गुणस्थानक स्थिति कथन । दाहरा ।

षट् सप्तम अष्टम नवम, दशम एकादशवार ।

अतमुहूरत एक वा एकसमै थिति धार १०२

अथ—इहा लों पीछिला ७ गुणथाना विषै जो काल स्थिति है सो कहै है—छटा सातमा आठमानमा दशमा द्वादशमा, वारमा ए ७ गुणथाना है याकी स्थिति एक अंतर मुहूरत की है वा कहते अथवा सात गुणथाना जघन्य एक एक समय थिति धरे है ॥ १०२ ॥

अथ—तेरहवे गुणथाना वर्णन । दोहरा ।

क्षीणमोह पूरण भयो, करि चूरण चितचाल ।

अथ सयोगगुणस्थानकी, वरण दशा रसाल ॥

अर्थ—मोहमयी चित्त की चाल हुती ताकी चूरन करि कै क्षीणमोह गुणथाना पूरण भयो अथ सयोगी गुणथाना की जो रसाल दशा है ताकी वरना हों ॥ १०३ ॥

अथ—अथ त्रयोदश गुणस्थानको स्वरूप वर्णन । सर्वथा ३१ सा जाकी दुःखदाता घाती चोकरि विनशुगई,

चौकरी अघाती जरी जेवरी समान है ।
 प्रगटि भयो अनत दर्शन अनत ज्ञान,
 वीरज अनत सुख सत्ता समाधान है ॥
 जामे आयु नाम गोत्र वेदनी प्रकृति अस्सी,
 इक्यासी चौप्यासि वा पच्यासि परमान है ।
 सो है जिनकेवली जगतवासी भगवान,
 ताकिज्यो अवस्था सोसयोगी गुणधान है १०

अर्थ—अथ तेरमा सजागी गुनठानाका वर्नन करे है-
 आत्म गुण के घात नी करनहारी ऐसी ज्ञानावरनी
 दर्शनावरनी २, मोहनी ३, अन्तराय ४, ए घाति कर्म
 चौकरी दुखदाता हुती सो जाके विनशि गई अरु या
 आत्म गुणको घात न करे ऐसी वेदनीय १, आयु २, नाम
 गोत्र ४ ए च्यारि अघाति कर्म चौकरी रही सो जरी जे
 समान रही, दर्शनावरणी कर्म चय गये त, जहां अ
 दर्शन कहतै केवलदर्शन प्रकट भयो अरु ज्ञानावरनी,
 पायेतै अनत ज्ञान प्रगट भयो । अन्तराय को चय भ
 अनन्तगीये प्रगट भयो. मोहनी चय भयतै अनतसुख स

अरु समाधि प्रगटी अरु जामें आयुर्कर्म^१, नामर्कर्म^२, गोत्र-
 कर्म^३, उदनीयर्कर्म^४ की ४ प्रकृति रहै है, तामें काहुकै, आहाररु
 शरीर १, आहाररु अगोपाग २, आहाररु सघात ३, आहा-
 ररु बन्धन ४, जिन नाम ५ विना ८० रहै है, काहुकै ८०
 जिन नाम सहित है तत्र ८१ है, काहुकै आहार चतु
 रुहै अरु जिननाम नाही तत्र ८४ है काहुकै ए ८४ जिन
 नाम सहित है ८५ प्रकृति प्रमान है ऐसी दशा को धरन-
 दार जो है सो जिन होई, केवली होइ जगतवामी भगवान
 होइ ताकी जो अस्थायी है सोई सयोगी गुणस्थान कहियै।
 अथ—केवलज्ञानी की स्थिति वर्णन । सर्वथा ३१ सा ।

जो थडोल परजक मुद्राधारी सरवथा,

अथवा सु काउसर्ग मुद्रा धिर पाल है ।

क्षेत्र सपरस कर्म प्रकृती के उदै आयै,

विना डग भरे अतरिक्त जाकी चाल है ॥

जाकी धिति पूरव करोड आठ वर्ष घाटि,

अतरमुहूरत जघन्य जग-जाल है ।

सो है देव, ५६ दूषण रहित ताको,

वनारसि कहे मेरी वदना त्रिकाल है ॥१०५॥

अर्थ—अब सयोगी गुणस्थान वालों की मुद्रा दिखावै है, जो अडोलपनै सर्वथा प्रकारै पर्यं क मुद्राधारी होइ इतनै पद्मासन वालिकुं सदा सर्वदा बैठे रहै अथवा काउ-संगा मुद्रा धिरपनै पालै ए कथन दिग्बर सम्प्रदाय की है, अरु क्षेत्र स्पर्शरूप जा कर्म प्रकृति है, ताकें उदय आवे तें केवली विहार करे है, पै और पुरुष ज्यों चल नहीं, तडा कवली डग भरे विना अन्तरिक्ष कहते आकाश विषे अधर रूप चालै । याही प्रभुपना दिगजर सम्प्रदायकी है, जिन सयोगी गुणस्थान की धिति आठ वर्षे कम पूर्यं कोडि वर्षे की होइ, इतने जन्म तें आठ वर्षे लों केवल ज्ञान उपजै नहीं अरु या गुणस्थानाकी जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त की होइ । जगत जाल में इतनो ही रहियौ होइ । इहा लो ऐसी अयस्था का धरनहार होइ सो ताँ अठारह रूप्य रहित देवाधिदेव होइ, बनारसीशाम कहे है ताकों मेरी त्रिकाल वन्दना है ॥ १०५ ॥

अथ—अठारह दोष कवन । कुण्डलिया छन्द ।

दोष अठारह रहित सो केवली सयोग,

जनम मरण जाके नहीं, नहि निद्रा भय रोग ।
 नहि निद्रा भय रोग, शोक विस्मय मोहमति,
 जरा स्नेह पर स्वेद, नाह मद वैर विपै रति ।
 चिंता नाह सनेह नाहि, जहा प्यास न भूख न,
 स्थिर समाधि सुख सहित, रहित अठारह दूषण ॥

अर्थ—अब अठारह दूषणके नाम कहे हैं । जो अठारह दूषण रहित होइ सो सयोगी केशरी कहिये । जाके जन्म नहीं १, मरण नहीं २, निद्रा नहीं ३, भय नहीं ४, रोग नहीं ५, शोक ५ दोष निर्मल भये, मोग नहीं ६, विस्मय नहीं ७, मोहमति नहीं ८, जराके स्नेह नहीं ९, प्रस्वेद नहीं १०, मद नहीं ११, वैर नहीं १२, चिंता नहीं १३, रतिभाव नहीं १४, स्नेह नहीं १५, जाके प्यास लगे नहीं १६, भूख लगे नहीं १७, अस्थिरपनो नहीं १८, याते समाधि सुख सहित स्थिर रूप ह ऐसे १८ दूषित रहित है ये १८ दूषण दिगंबर सप्रदायके हैं अन्यमप्रदायमें १८ दोष न्यारे कहे हैं ॥१०६॥

पुन. बुएडलिया ।

नहा निरक्षरी सप्त धातु मल नाहि ।

केश रोम नख नहि बढे, परमश्रौदारिक माहि ॥
 परम श्रौदारिक मांहि, जहां इन्द्रिय विकार नसि,
 यथाख्यात चारित्रप्रधान, थिर शुक्लध्यान मसि ।
 लोकाऽलोक प्रकाश, करन केवल रजधानी,
 सो तेरम गुणस्थान, जहा अतिशयमय वानी ॥

अर्थ—जिहि गुणधाना की अवस्था में निरच्छरी वानी
 मस्तक विषे ॐ कार ध्वनि रूप होइ, अरु शरीर में ७ धातु
 अरु धातु के मल होतु नाहीं ए दिग्गज सम्प्रदाय में कही
 है अरु जाके शरीर में केश रोम नख ए नाहीं बढे है तोह
 श्रौदारिक शरीर माहि पै एते दोष नहीं याई ए देवाधिदेव
 परम श्रौदारिक शरीर माहि कहिगै, जहा जाके इन्द्रिय विकार
 नशि गये जहा प्रधान उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्रगट्या
 अरु जहा शुक्लध्यान रूप गशि रहते चन्द्रमा सो थिर
 रूप है अरु जहां लोकालोक क प्रकाश की करनहारी
 केवल ज्ञान रूप राजधानी विराज रही है सो तरमौ सयोगी
 गुणधानी कहिगै तहा ३४ अतिशयमय वानी दोह ॥१०१॥

दोहा ।

यह सयोग गुणस्थान की, रचना कही अनूप ।

अथ अयोग केवल दशा, कहूँ यथार्थ रूप १०८

अर्थ—यह मजोगी गुणगाथाकी सबसे अधिक अनुपम रचना कही अथ अयोगी केमली की दशा यथार्थ रूप कहते जैसी भाति की है तैसी भाति की कही हों ॥ १०८ ॥

अथ—चतुर्दशम गुणस्थान वर्णन । संख्या ३१ सा ।

जहा काहू जीवको असाता उदै साता नाहि,

काहूको असाता नाहि साता उदै पाईये ।

मनवच काया सों अतीत भयो जहा जीव,

जाको जसगीत जगजीत रूप गाइये ॥

जामें कर्मप्रकृतिकि सत्ता जोग जिनकी,

अतकाल द्वै समै मे सकल सपाइये ।

जाकी यिति पच लघु अक्षर प्रमाण सोइ,

चौदहा अयोगि गुणठाना ठहरायेइ ॥ १०६ ॥

विहि गुणस्थाना विषे काहू जीव की असाता-

वेदनीय सा उर्द्वे है अरु माता वेदनीयकी उदय नाही है ।
 इती माता वेदनीय उच्चारूप है । अरु काहूँ साता वेदनी
 यही उर्द्वे है अरु अमाता उदय में नाही इतने सत्तामे है अरु
 शैलीशी फरन करके मनोयोग उचनपाग राययोग सा जहां
 जीव अतीत भयो इतने योग रहित भयो अरु ताकरे जनमी
 वनन जो है सो उगतनेता रूप गारी है, अरु जामे जागी
 चिनकी सो रहते —सयोगी फेरली की भाति कर्म प्रकृति
 की मत्ता रही है अन्तकाल विष अन्त के दाइ समय माहि
 ममस्त खपाइये अरु चिन्हि गुनधाना का स्थिति पच लघु
 अक्षर अ इ उ ऋ लृ ए अक्षर कहते जो काल प्रमान दाइ
 इतने काल प्रमान यिति है मोई चौदमी अयोगी गुनठानी
 टहराड्यै ॥ १०६ ॥

। दोहा ।

चौदह गुणस्थानक दशा, जगवासी जिय मूल ।

आस्रव सवर भाव द्वे, पथ मोक्ष को मूल ११०

अर्थ—जगतवासी जीव अशुभ यकी भूल में परी है
 ताकी ए चौदही गुणस्थानसौ चौदहदशा होती है, इहां तत्व
 दृष्टि तें देखत आस्रव सवर भाव जो है सोई पथ मोक्ष की

मूल हैं इतने आस्रव रोधमूल है, सवर मोक्षमूल है ॥११०॥

अथ—आस्रव सवर व्यवस्था कथन । चौपाई ।

आस्रव सवर परणति जालो,
जगतनिवामी चेतन तालो ।

आस्रव सवर विधि व्यवहारा,
दोउ भवपथ शिवपथ धारा ॥१११॥

अर्थ—अब आस्रव सवर की न्यायी २ व्यवस्था कह
हे । जब ताई आस्रव सवर के परिनाम परिर्नम तब ताई
चेतन इश्वर जगत निवासी हुइ रह्यो है, इस आस्रव की
विधि है, साँऊ व्यवहारमें है, अरु सवरकी विधि है, साँऊ
व्यवहार में है । ए दोऊ व्यवहार भव पथ धारा इहत समाप्त
मार्ग की धारा अरु मोक्ष मार्ग की धारा है ॥ १११ ॥

अथ—सवरको नमस्कार । चौपाई ।

आस्रव रूप बध उत्पत्ता,
सवर ज्ञान मोक्ष पददाता ।

जा सवर मों आस्रव बीजे,
ताकों नमस्कार अब कीजे ॥ ११

अथसमस्तित् और अन्तिमप्रशस्ति

चोपाई ।

भयौ ग्रथ संपूरन भाषा,

वरनी गुनधानककी साखा ।

वरनन और कहालो कहिये,

यथासकति कहि चुप है रहिये ॥१॥

अर्थ—भाषा समयसार ग्रथ समाप्त हुआ । और गुन
स्थान अधिकारवर्नन क्रिया । इसका और कहा तरु वर्नन
करिय । शक्तिअनुसार कहकर चुप हो रहना उचित है ॥१॥

चोपाई ।

लहिये पार न ग्रथ उदधिका,

ज्यों ज्यों कहिये त्यो त्यो अधिका ।

तार्ते नाटक अगम अपारा,

अल्प कवीसुरकी मति धारा ॥ २ ॥

अर्थ—ग्रन्थरूप समुद्रका पार नहा पा सकते, ज्यों ज्यों कथन किया जाव, त्यों त्यों गूढता ही जाता है, क्यों कि नाटक अपरम्पार है और कविकी बुद्धि तुच्छ है ।

भावार्थ—यहा ग्रन्थको समुद्रभी उपमा दी है और कविकी बुद्धिको छोटी नदी की उपमा है ॥२॥

दाहा ।

समयसारनाटक अथ, कविकी मति लघु होड ताते कहत बनारसी, पूरन कथे न कोइ ॥३॥

अर्थ—समयसार नाटक का वर्णन महान है, और कविकी बुद्धि थोड़ी है, इससे पंडित बनारसीदाम जी कहते हैं कि उसे काइ पूरा पूरा नहीं कह सकता ॥ ३ ॥

अथ—ग्रन्थ महिमा । सर्वेया ३१ सा ।

जैसे कोऊ एकाकी सुभट पराक्रम करि,

जीते किहि भाति चक्री कटकमो लरनो।

जैसे कोऊ परवीन तारू भुज भारू नर,

तिरे कैसें स्वयभूरमण सिधु तरनौ ॥

ऊ उद्यमी उद्राह मनमाहि धरे

करै कैसे कारिज विधाताको सौ करनो।

तैसे तुच्छ मति मेरी तामे कविकला थोरी,

नाटक अपार मैं कहालो याहि वरनो ४

अर्थ—यदि अकला योद्धा अपने गह्वर के द्वारा चक्रवर्ती के दल से लडे, तो वह कैसे जीत सकता है ? अथवा कोई जल तारिणी विद्यामें कुशल मनुष्य स्वयम्भूरमण समुद्र को तरना चाहे, तो कैसे पार हो सकता है ? अथवा कोई उद्योगी मनुष्य मनमें उत्साहित होकर विधाता' जैसा काम करना चाहै, तो कैसे कर सकता है ? उसी प्रकार मेरी बुद्धि अल्प है वा मध्य कौशल कम है और नाटक महान है इसका मैं क्या तरु वर्णन करू ॥ ४ ॥

जीम नरकी महिमा । सर्वैया ३१ सा ।

जैसे वटवृक्ष एक, तामें फल है अनेक,

फल फल बहु बीज, बीज बीज वट है ।

वटमाहि फल, फल माहि बीज तामे वट,

कीजै जो विचार तौ अन तता अघट है

तैसे एक सत्तामें अनन्त गुण परजाय,
 पजेमें अनन्त नृत्य तामें अनन्त ठट्ट है।
 ठट्टमें अनन्त कला, कलामें अनन्त रूप,
 रूपमें अनन्त सत्ता एसी जीव नट है ५

अर्थ—जिस प्रकार एक गटकके घृक्षमें अनेक फल हाने
 ह, प्रत्येक फलमें बहुतमें बीज तथा प्रत्येक बीजमें फिर
 गटक घृक्ष अस्तित्व रहता है और बुद्धिसे काम लिया जाये
 तो फिर उस गटकघृक्षमें बहुतमें फल और प्रत्येक फलमें
 बहुतमें बीज और प्रत्येक बीजमें गटक घृक्ष ही सत्ता प्रतीत
 होती है, इस प्रकार जीव रूपों नटकी एक सत्तामें
 अनन्त गुण हैं, प्रत्येक गुणमें अनन्त पर्याय हैं, प्रत्येक
 पर्यायमें अनन्त नृत्य है, प्रत्येक नृत्यमें अनन्त खेल है,
 प्रत्येक खेलमें अनन्त कलाएँ हैं, और प्रत्येक कलाकी अनन्त
 आकृति है। इस प्रकार जीव बहुत ही विलक्षण नाटक
 करने वाला है ॥५॥

। दाहा ।

ब्रह्मज्ञान आकाश में, उडै सुमति रग

यथामकृति उद्यम करै, पार न पावै कोठ ६

अर्थ—ब्रह्मज्ञानरूपो आकाश में यदि श्रुतज्ञानरूपी पक्षी शक्ति अनुसार उड़ने का प्रयत्न करे, तो कभी अनन्तता पा सकता ॥ ६ ॥

चाँपाई ।

ब्रह्मज्ञान-नभ अत न पावै,

सुमति परोक्ष रुहालो धावै ।

जिहि विधि समयसार जिन्हि कीन्हो,

तिन्हिके नाम कहौ अत्र तीनों ॥७॥

अर्थ—ब्रह्मज्ञानरूप आकाश अनन्त है और श्रुतज्ञान परोक्ष है, कहा तक दौड़ लगायगा ? अत्र जिन्होंने समयसार की जसी रचना की है उन तीनों के नाम कहता हूँ ।

अथ—रियो के नाम । मध्या ३१ सा ।

कुन्दकुन्दाचारिज प्रथम गाथा बद्ध करि,

समयसार नाटक विचारि नाम दयो है ।

ताहिकी परपरा अमृतचढ भये तिन्हि,

संस्कृत कलश सम्हारि सुख लयो है ॥

प्रगटो वनारसी गृहस्थ सिरोमाल अब,
 किए हैं कवित्त हिये बोधि बीज वयो है
 सपद अनादि तामे अरथ अनादि जीव,
 नाटक अनादि यो अनादिको भयो है—

अर्थ—इसे पहिले उन्दकुन्दाचार्य ने प्राकृत गाया
 छन्द में रचा और समयनार नाम रखा । उन्हींकी कृतिपर
 उन्हींके आग्नायी स्वामी अमृतचन्द्रमूरिन सस्कृतमें कलशा
 रचकर प्रसन्न हुए । पश्चात् श्रीमाल जाति में पण्डित
 वनारसीदास जी श्रावक धर्म प्रतिपालक हुये उन्होंने स्वित्त
 रचना करके हृदय में ज्ञान का बीज बोया । यों ता शब्द
 अनादि है, उसका पदार्थ अनादि है, जीव अनादि है,
 नाटक अनादि है, इमलिये नाटक समयसार अनादिफल
 स ही है ॥ ८ ॥

अर्थ—कवि व्यवस्था कथन । चौपाई ।

अब कछु कहो जथारथ वानी,
 सुकवि कुकविकी कथा कहानी ।
 एकवि कहावै सोई,

परमारथ रस वरनै जोई ॥ ९ ॥

कल्पित वात हिये नहि आने,
गुरुपरपरा रीति वखानै ।

सत्यारथ सैली नहि आडै,

मृपावादसौ प्रीति न माडै ॥ १० ॥

अर्थ—अब मुकवि मुकवि की यादगीमी वास्तविक चरचा करता हूँ । जो परमारथ रस का वर्नन करत हैं, मनमें कपोल रूपना नहीं करते और श्रुति परम्परा के अनुसार कथन करत हैं । सत्यारथ मार्गको नहीं छोडते और असत्य कथन से प्रीति नहीं जोडते ॥ ९ १० ॥

अर्थ—मुकवि कथन । दाहरा ।

छद सवद अचर अरथ, कहैं सिद्धात प्रमान ।
जो यह विधि रचना रचै, सो है मुकवि मुजान

अर्थ—जा छद शब्द, अचर, अर्थकी रचना सिद्धात के अनुसार करते ह वे ज्ञानी मुकवि ह ॥ ११ ॥

अर्थ—मुकवि कथन । चौपाई ।

अब सुनु मुकवि कहौ है जैसा,

अपराधी हिय अध अनेसा ।

मृपाभाव रसवरनै हित सौ ,

नई उकति उपराजै चितसों ॥ १२ ॥

रयाति लाभ पूजा मन आने,

परमारथ पद भेद न जाने ।

वानी जीव एक करि वृभे,

जाकौ चित जड ग्रन्थ न सूभे १३

अर्थ—अब जैसा तुकवि हाता है सो उदता ह, उसे सुनो ! यह पापी हृदयका अन्धा दृष्ट ग्राही हाता है । उसके मनमें जो नई कल्पनाएँ उठती हैं उनका और मासांगिक रमका वर्णन उड प्रेमसे करता है । यह मोक्ष-मार्गका मम नदा जानता और मनमें रयाति लाभ पूजा आदिकी चाह रग्वता है, यह रचनका आत्मा जानता ह, हृदयका मूर्ख होता है, उसे शास्त्रज्ञान नहीं है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ—वानी व्ययस्था कथन । चोपाई ।

वानी लीन भयो जग डोले ,

वानी ममता त्यागि न

हे अनादि वानी जगमांहीं,

कुक्कवि ज्ञान यहु समुझै नाहीं ॥१४॥

अर्थ— वह वचन में लीन होकर ससार में भटकता है, वचन की ममता छोड़कर कथन नहीं करता । ससार में वचन अनादिकालका है यह तत्त्व कुक्कवि लोग नहीं समझते ॥ १४ ॥

अर्थ— वानी व्यवस्था कथन । सबैया ३१ सा ।

जैसे काहू देसमें सलिल-धारा कारजाकी,
नदी सौ निकसि फिरि नदीमें समानी है।

नगरमे ठौर ठौर फैलि रही चिहूँ और,
जाकै ढिग वहै सोई कहै मेरो पानी है ॥

तैसे घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म,
वदन वदन में अनादिही की वानी है ।

करम किलोल सौ उसासकी वयारि वाजै,
तासौ कहै मेरी धुनि ऐसौ मूढ प्रानी है

अर्थ— निम्न प्रकार क्रिया स्थान में पानी की धारा

शाखारूप होकर नदी से निकलती है और फिर उमी नदी में मिल जाती है सो जिसका महान के पास होकर बहती है वही कहता है कि, यह पानी मेरा है, उसी प्रकार हृदय रूप घर है और घरमें अनादि ब्रह्म है और प्रत्येकके मुख में अनादि-काल का रचन है, कि रम की लहरों से उल्लास रूप हवा रहती है इसमें मूर्ख जीव उसे अपनी धनि कहते हैं ॥ १५ ॥

दोहा ।

जैसे मूढ कुकवि कुधी गहे मृपा मग दौर ।
रहे मगन अभिमानमें, कहे औरकी और १६
वस्तु स्वरूप लखै नहीं, वाहिज दृष्टि प्रवांन ।
मृपा विलास किल्लोकिके, करै मृपा गुण गाण

अर्थ—इस प्रकार मिथ्या दृष्टि कुकवि उन्मार्ग पर चलते हैं और अभिमानसे मस्त हाकर अन्यथा कथन करते हैं, व पदार्थ का असली स्वरूप नहीं देखते, याद दृष्टिमें अमत्य परिणति देखकर झूठा उर्णन करते हैं ॥१६॥१७॥

अथ—मृपागुनगान । मय्या ३१ सा ।

की गरधि कूच कचन कलश

हे अनादि वानी जगमाही,

कुकवि ज्ञान यहु समुझै नाही ॥१४॥

अर्थ— वह वचन में लीन होकर ससार में भटकता है, वचन की ममता छोड़कर कथन नहीं करता । ससार में वचन अनादिकालका है यह तत्त्व कुरुपि लोग नहीं समझते ॥ १४ ॥

अर्थ— वानी व्यवस्था कथन । सर्वैया ३१ सा ।

जैसे काहू देसमे सलिल-धारा कारजाकी,
नदी सौ निकसि फिरि नदीमें समानी है।

नगरमे ठौर ठौर फैलि रही चिहूँ और,

जाकै डिग वहै सोई कहै मेरौ पानी है॥

तेसे घट सदन सदनमे अनादि ब्रह्म,

वदन वदन मे अनादिही की वानी है ।

करम किलोल सौ उसासकी वयारि वाजै,

तासो कहै मेरी धुनि ऐसो मूढ प्रानी है

अर्थ— निस प्रकार कर्मों स्थान में पानी की धारा

शास्त्रारूप होकर नदी से निकलती है और फिर उसी नदी में मिल जाती है सो जिसके मकान के पाम होकर बहती है वही कहता है कि, यह पानी मेरा है, उसी प्रकार हृदय रूप घर है ओर घरमें अनादि प्रज्ञ है और प्रत्येकक मुख में अनादि-काल का उचन है, कि कर्म की लहरों से उछ्वास रूप हवा बहती है इससे मूर्ख जीव उमे अपनी ध्वनि कहते हैं ॥ १५ ॥

दोहा ।

जैसे मूढ कुरुवि कुधी गहे मृपा मग दौर ।
रहै मगन अभिमानमे, कहै औरकी और १६
वस्तु स्वरूप लसै नहीं, वाहिज दृष्टि प्रवान ।
मृपा विलास किलोक्कि, करै मृपा गुण गाण

अर्थ—इस प्रकार मिथ्या दृष्टि कुरुवि उन्मार्ग पर चलते हैं और अभिमानमे मस्त हाकर अन्यथा कथन करते हैं, वे पदार्थ का असली स्वरूप नहीं देखते, सब दृष्टि अमत्य परिणति देवकर भूठा उर्णन करते हैं ॥१६॥१७॥

अथ—मृपागुनगान । मवैया ३१ सा ।

माम की गरथि कुच कचन कलश कहै,

कहै मुस चद जो सलेपमाको घर है ।
 हाडके दसन आहि हीरा मोती कहैं ताहि,
 मासके अधर ओठ कहै विवफरु है ।
 हाड दड भुजा कहैं कौलनाल काम धुजा,
 हाडही वै थभा जघा कहै रभातरु है ॥
 योही भूठी जुगति वनावै औ कहावै कवि,
 येतेपर कहै हमे सारदाको वरु है ॥१८॥

अर्थ—कुम्भि मांस के पिण्ड रूप रुचों को सुवर्णघट कहते हैं । रफ खरार आदि के घर रूप मुखको चन्द्रमा कहते हैं । हड्डीके दातो को हीरा मोती कहते हैं, हाडके दण्डों रूप भुजाओं को कमलकी दडी अथवा कामदेवकी पताका कहते हैं, हड्डी के खम्भे रूप जांघों को फेले के वृच कहते हैं वे इस प्रकार भूँठी भूँठी युक्तिया गढ़ते हैं, कि हमें मरस्वनी का वरदान है ॥ १८ ॥

चौपाई ।

मिथ्यावत्त कुकवि जे प्रानी,

मिथ्या तिनकी भाषित जाना ।

मिथ्यामती मुकवि जो होई,

वचन प्रधान करै मन काई ॥ १६ ॥

अर्थ—जा प्राणी मिथ्यादृष्टि और कर्मात्मा है,
नका कहा हुआ वचन अमत्य होता है, परंतु जा मनुष्य
ज्ञान से सम्पन्न तो नहा होत पर शास्त्राक्त चरित्रा अत्य
है, उनका वचन अद्भुत करने योग्य होता है ॥ १६ ॥

दाहरा ।

वचन प्रधान करै मुकवि, पुरुष हिये परमान ।

दोऊ अ ग प्रमान जो, मो है नदज सुजान ॥

अर्थ—त्रिनकी वानी शास्त्रोक्त ह्य है और हृदय से
तत्व अद्भुत होता है, उनजानन और वचन एते प्रामा-
णिक है और वे ही मुकवि है ॥ १७ ॥

अर्थ—समयमार नादक है मरम्या । ॥ १८ ॥

अन यह बात कहै है जे

नाटक कहती सु

कुन्दकुन्दमुनि इव अरता



अमृतचन्द्र टीकाके करता ॥ २१ ॥

अर्थ—अब यह बात कहता हूँ कि नाटक समयसार की काव्य रचना किसप्रकार हुई है । इसग्रंथके मूलकर्ता कुन्दकुन्द स्वामी और टीकाकार अमृत चन्द्रचरि ह ॥ २१ ॥

। चापाई ।

समयसार नाटक सुख ढानी,

टीकासहित सस्कृत वाणी ।

पण्डित पठे सुदिद मति बूझै,

अल्पमती को अरथ न सूझै ॥२२॥

अर्थ—समयसार नाटकी सुखदायक सस्कृत टीका पण्डित लोग पढ़ते और विशेष ज्ञानी समझते हैं, परन्तु अल्प बुद्धि जीवों की समझ में नहीं आ सकती है ॥२२॥

चापाई ।

पाडे राजमल्ल जिनधर्मी,

समयसार नाटकके मर्मी ।

तिन्हि ग्रंथकी टीका कीनी,

गालबोध सुगम कर दीनी ॥ २३ ॥

इहि विधि बोध-वचनिका फैली,

समौ पाइ अद्यात्म सैली ।

प्रगटी जगत माहि जिनवानी,

घर घर नाटक कथा वखानी ॥२४॥

अर्थ—जनधर्मो पाड़े राजमल जी नाटक समैमार के ज्ञाता ने इस ग्रंथ की बालबोध सहज टोका की । इस प्रकार समय पाकर इस आध्यात्मिक विद्या की भाषा वचनिका विस्तृत हुई । जगत में जिनवानी का प्रचार हुआ और घर घर नाटक की चर्चा होने लगी ॥ २३-२४ ॥

चौपाई ।

नगर आगरे माहि विरयाता,

कारन पाइ हुये बहु ज्ञाता ।

पच पुरुष अति निपुण प्रीने,

निशि दिन ज्ञानकथा रस भीने २५

अर्थ—प्रसिद्ध शहर आगरे में निमित्त मिलने पर इसके बहुत से जानकार हुए, उनमें पाच मनुष्य अत्यन्त कुशल रात ज्ञानवर्चा में लगती रहते थे ॥

दोहरा ।

रूपचन्द पण्डित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम ।
 तृतीय भगौतीदास नर, कौरपाल गुनधाम २६
 धर्मदास ये पच जन, मिलि वैठहिं इक ठौर ।
 परमारथ चर्चा करै, इन्हिकै कथा न और २७

अथ—पहल पण्डित रूपचन्द जी, दूसरे पण्डित
 चतुर्भुज जी, तीसरे पण्डित भगौतीदास जी, । चौथे
 पण्डित कुरारपाल जी, और पाचवें पण्डित धर्मदासजी ।
 ये पाचों सज्जन मिलकर एक स्थान में बैठते तथा मोक्ष
 मार्गकी चर्चा करते थे और दूसरी वार्ता नहीं करते थे ।

दोहरा ।

कवहो सरस कथा सुनहि, कवहो और सिद्ध त
 कवहों विंग बनाइकै, ऊहै बोध विरतंत ॥२८॥

अर्थ—ये कभी नाटक का रहस्य सुनते, कभी और
 शास्त्र सुनते और कभी तरु खड़ी करके ज्ञान चर्चा करते थे

अथ—विंग कथा । दोहरा ।

चितचकोर अर धरमधर, सुमति भगौतीदास ।

चतुरनाव थिरता भये, रूपच द परगास ॥२६॥

अर्थ—कुपरपाल जी का चित्त कारा कोमल था, वर्म-
दास जी धर्म के धारक थे, भर्गोतीदाम जी सुमतिवान थे,
चतुर्भुज जी ने भाव स्थिर थे, और रूपचन्द जी का
प्रकाश चन्द्रमा के समान था ॥ २६ ॥

दोहरा ।

इहि विधि ज्ञान प्रगट भयौ, नगर आगरे माहि,
देश देश महि विस्तरो, मृपादेश महि नाहि३०

अर्थ—इहि प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान आगरा नगरमें
प्रगट भयौ अरु बहाते देश दशमें—अन्य देशनिमें नगरनिमें
फँलो । मृपा देश धर्म शून्य, अध्यात्मिक देशनिमें नहीं फँलो।

चौपाई ।

जहा तहा जिनवानी फैली,

लसे न सो जाकी मति मैली ।

जाके सहज बोध उत्पाता,

सो ततकाल लखै यहु वाता ३१ ॥

—जहा तहा जिनवाणी का

जिसकी बुद्धि मलीन है वह नहीं समझ सका । जिसके
चित्त में स्वाभाविक ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह इसका रहस्य
तुरन्त समझ जाता है ॥ ३१ ॥

दाहरा ।

घट घट अंतर जिन वसै, घट घट अंतर जैन
मति मदराके पानसो, मतवाला समुझै न ३२

अर्थ—प्रत्येक हृदय में जिनगण और जैन धर्म का
निवास है परन्तु मतपक्ष रूपी शराब के पी लेने से मत
वाले लोग नहीं समझते ॥ ३२ ॥

चापाई ।

बहुत बढाऊ कहाँलो कीजै,

कारिजरूप बात कहि लीजै ।

नगर आगरे माहि विख्याता,

वानारसी नाम लघु ज्ञाता ॥ ३३ ॥

तामें कविता कला चतुराई,

कृपा करहि ए पाचो भाई ।

पक्ष प्रपक्ष रचित दिग सोने

ते बनारसी सो ह मि बोले ॥ ३४ ॥

अर्थ—अधिक महिमा कहा तक कहे, मुझे की बात यह कह देना उचित है। प्रसिद्ध शहर आगरे में बनारसी नामक स्वल्पज्ञानी हुए, उनमें काव्यकौशल था और ऊपर कहे हुए पाँचों भाई उन पर कृपा रखते थे, उन्होंने निष्कपट होकर सरलचित्तसे हँसकर कहा ॥ ३३ ३४ ॥

चौपाई ।

नाटक समयसार हित जीका,

सुगमरूप राजमली टीका ।

कवितवद्ध रचना जो होई ।

भाषा ग्रथ पढ़ै सब कोई ॥ ३५ ॥

अर्थ—जीरका कन्याण रुतवाला नाटक समयसार है। उसकी राजमलजी रचित सरलटीका है। भाषामें छंद-बद्ध रचा जावे तो इस ग्रथको सब पढ़ सकते हैं ॥ ३५ ॥

चौपाई ।

तव बनारसी मनमहि आनी,

कीजे तौ प्रगटै जिन वानी

पच पुरुषकी आज्ञा लीनी,

कवितवद्ध रचना तव कीनी ॥ ३६ ॥

अर्थ—तव बनारसीदासजी ने मनमें साचा, कि यदि इसकी कवितामें रचना करू । तो जिनवाणीका बड़ा प्रसार होगा । उन्होंने उन पाचो सज्जनोंकी आज्ञा ली और कविता-बद्ध रचना की ॥ ३६ ॥

चौपाई ।

सोरह सौ तिरानवा वीतैं,

आसो मास सित पच्छ वितीते ।

तिथि तेरसि रविवार प्रवीना,

ता दिन ग्रथ समापत कीना ॥ ३७ ॥

अर्थ—विक्रममन्वत् सोलहसौ तेरानवें, आश्विनमास, शुक्ल पक्ष, तेरस तिथि, रविवारके दिन यह ग्रथ समाप्त किया ॥ ३७ ॥

दाहरा ।

सुख निधान सक बध नर, साहिव साह किरान ।

सहस साह सिर-मुकुटसम, शाहजहा मलतान ।

अर्थ—उस समय हजारों बादशाहों में प्रधान शाह प्रतापी और सुखदायक मुसलमान बादशाह शाहजहाँ १/ दोहरा ।

जाके राज सुचैनसो, कीन्हों यागम तार ।
ईति भीति व्यापी नहीं, यहु उनका जगार १/

अर्थ—उनके राज्यम आनन्दसे इस अर्थसे कि कोई भी कोई भय उपद्रव नहीं हुआ, यह उनका कृत्य है ।

अर्थ—सब पद्योंकी मख्याकथन । ३५५ १/ ३५५

तीनसौ दशोत्तर सोरठा दोहा द्वादश
युगलसै पैतालीस इकतीस अने हैं ।
छियासी घोपाई, सैतीस तर्क मवेदा,
वीस छप्पै अत्यरह कति अमाने हे ॥
सात पुनही अडिल्ल चारि कु बलिर् मिलि,
सकल सातसै मज्जम रीक ठाने हे ।
बतीस अच्यर के मिलाके काने, ताके लिखे
अचरसै सात, अधिकाने हे

अर्थ—३१० सारठा और दाहे, २४५ इरुतीसे सवे
 ८६ चौपाई, ३७ तेईमा मर्घया, २० छप्पय, १८ कवि
 (घनाचरी) ७ अडिन्ल, ४ बुडलिण, ऐमे ये मव मिलन
 ७२७ सातसी सत्ताईम नाटक समयसारके पत्रोंकी संख्या
 है । ३२ अक्षरक रलोकके प्रमाणमे ग्रथ संख्या १७०
 है ॥ ४० ॥

दाहरा ।

समयमार आत्म द्रव्य, नाटक भाव अनत ।

सोहै आगम नाम में, परमारव्य विरतत ॥ ४१ ॥

अर्थ—सब द्रव्योंमें आत्मद्रव्य प्रधान है और नाटकके
 भाव अनत है, सो उसका आगममें सत्यार्थ कथन है ४१
 संख्या ३१ सा ।

पृथ्वीपति विक्रमके राज मरजाद लीन्हे,

सत्रहसौ वीतै परिवानु आंवरस मे ।

आसू मास आदि द्यौसू सम्पूरन ग्रथ कीन्हा,

वारतिक करिकें उदार वार ससिमें ॥

जो पै यहु भाषा ग्रथ मवदे सुत्रोध याको.

ताहू विनु सप्रदाय नावें तत्र वसमे ।

यातैं ज्ञानलाभ जानि स तनिको वैन मानि,

वातरूप ग्रथ लिख्या महाशात रसमे

अर्थ—विक्रम संवत् १७०० सत्रहवीं, आसौन पदी पड़िया, मोमसार के दिन यह भाषा छन्द मय गुणोध ग्रथ लिखकर पूर्ण क्रिया है । मोरों अनेक सज्जननिनें आज्ञा कगी हुती उनही आज्ञा मानि मने यह ग्रथ लिख्यो है ४२

दोहा

देशी भाषाको कहौ, अरथ विपर्यय कीन ।

ताको मिच्छा दुक्कंडू, मिद्ध साख हम दीन ४३

अर्थ—देशी भाषा मय समयमार कों करते यदि नह प्रमादतैं अर्थ की विपरीतता भई होइ तो हम मिद्ध भगवान की साखिनों तिमही शुद्धता के अर्थि मिच्छा मे दुक्कंडू प्रतिक्रमण करों हों ॥ ४३ ॥

इति श्री समयसार नाटक विद्याव समाप्त

प्रशास्ति ।

नंदवर्द्धि नागोदुत्सरे विक्रमस्य च, पापसित्तेतर
 ५चमी तिर्यो, धरणीसुवरासरे, श्री शुद्धिदतीपचने श्रीमति
 पिन्यसिद्धारूपमुराज्ये, वृहत् खरतरगणे निसिलशास्त्रीध-
 पारगामिनो महीयात्. श्रीचेमकातिशाखोद्भवा. पाठफोचम-
 पाठका; श्रीमद्रूपचन्द्रजिद्गणयस्तच्छिष्य ५० विद्याशील-
 मुनेस्तच्छिष्यो ग नसारमुनिः समयसारनाटग्रन्थं लिखितम् ।

श्रीमद्गवड़ीपुराधीश-प्रसादान्नायक भूयात् पाठकाना
 श्रोतृणा ज्ञाप्राया शशवत् । श्रीरस्तु ।

— त्रैया ३१ ।

खरतरगच्छनाथ विद्यमान भट्टारक, तिनभक्तिसूरिजूके
 धर्मराजधुरमें । खेयुणाख माभिक जिनहर्षजू वैरागी, कनि
 शिष्य सुखवद्धन शिरोमणि सुधरमें । ताके शिष्य दयासिध
 गणि गुणवत मरे, धर्म आचारज निर्यात श्रुतधरमें, ।
 ताका परसाद पाइ रूपचन्द्र आनन्द सों, पुस्तक चत्तारपी
 यहु सोनगिरिपुरमें ॥ १ ॥ ये मोदी थापि महाराज जाको
 सन्मान दीनो, फतेचन्द पृथ्वीराज पुत्र नयमलके । फतेचंद
 जूके पुत्र जसरूप जगन्नाथ, गोत गणचर में धरैया शुभ

× बालक ॥ तामें जगन्नाथ जूके वृक्षवे के हेतु हम, व्यौरिके
 सुगम कीन्हे बचर्तु दयाल के । वाचत पढ़त अथ आन्द
 सदा एकेरो सग ताराचन्द अरु रूपचन्द बालके ॥२॥





